मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

¥Ý́¨ {ǽÝ́

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

५६

सम्पादकः
विजयशीलचन्द्रसूरि

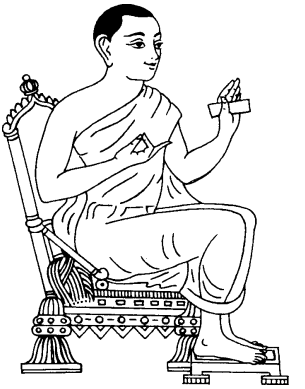

श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि
अहमदाबाद
२०११

अनुसन्धान ५६

आद्य सम्पादक: **डॉ. हरिवल्लभ भायाणी**

सम्पादक: **विजयशीलचन्द्रसूरि**

सम्पर्क: C/o. **अतुल एच. कापडिया**
A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी
महावीर टावर पाछळ, अमदावाद-३८०००७
फोन : ०७९-२६५७४९८१

प्रकाशक: **कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद**

प्राप्तिस्थान: (१) **आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर**
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड,
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां,
अमदावाद-३८०००७

(२) **सरस्वती पुस्तक भण्डार**
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अमदावाद-३८०००१

प्रति: २५०

मूल्य: Rs. 150-00

मुद्रक:
क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३
(फोन: ०७९-२७४९४३९३)

निवेदन

संशोधन एटले सम्मार्जन. संस्कृत शब्दकोश प्रमाणे, कचरो साफ करनार 'सावरणी'ने 'सम्मार्जनी' कहेवामां आवे छे. ''सम्मार्जनी शोधनी स्यात्'' (अमरकोष). अर्थात् जे शोधन करे ते सम्मार्जनी; सम्मार्जन एटले शोधन; शोधन ते ज संशोधन.

आ सम्मार्जन विविध रीते थतुं होय छे. आपणे ए रीतो विषे समजवानो प्रयत्न करीशुं.

१. क्यारेक, खरेखर तो मोटा भागे, अभण अथवा विषयथी अपरिचित एवा प्रतिलेखक-लहिया खोटा पाठो के अक्षरो लखी देता होय छे. वाचक, अध्येता अथवा सम्पादक, जे ते विषयनो जाणकार होय, अने ग्रन्थनी भाषानो पण अभ्यासी होय, तो तेने आ खोटा पाठ/अक्षर ध्यानमां आवी जाय छे, अने ते तेनुं सम्मार्जन करतो होय छे. आमां, ज्यां प्रगटपणे के स्पष्ट रीते खोटो पाठ/अक्षर लखायो होय त्यां तो तेने बदले शुद्ध-साचो पाठ/अक्षर सीधेसीधो ज लखी देवानो होय.जेमके **'वीतशग'** लखायुं होय तो त्यां **'वीतराग'** एम वांचवुं अने एम लखवुं उचित गणाय. अने ज्यां भूलभरेला पाठ/अक्षर लखाया होय त्यां, साचा जणाता पाठ ( ) आवा गोळ कौंसमां लखवा पडे. दा.त. **'प्रतिपन्थिनम्'** एवो पाठ प्रतमां देखातो होय, त्यां जरूरी के उचित पाठ **'परिपन्थिनम्'** होवानुं नक्की थाय; तो त्यां **'प्रति(परि)पन्थिनम्'** आ रीते पाठशुद्धि करवामां आवे छे. अने क्यांक जो कोई पाठ/अक्षर छूटी गयो होय, तो ते [ ] आवा कौंसमां उमेरीने

लखवानी प्रथा छे.

२. क्वचित् एवुं बने के प्रतिलेखक समक्ष जे आदर्श प्रति होय, जेना आधारे तेणे नकल करवानी छे; प्रतिमां ज पाठगत अनेक गरबड होय; दा.त. पाठ खोटा लखाया होय, पाठमां वाक्य/वाक्यो/शब्दगुच्छ लखवानां ज रही गयां होय; अथवा एक स्थाननो पाठ तेनी असल जग्याएथी खसी जईने बीजा स्थान साथे गोठवाई गयो होय; आवा संजोगोमां सम्पादक के संशोधकनी फरज बने छे के ते खोटा पाठने, मूळमां ज के पछी टिप्पणीरूपे, सुधारीने साचा स्वरूपमां दर्शावे; छूटी गयेल वाक्यादिने [ ] मां दर्शावे; अने पतित के स्थानान्तरित पाठने तेना यथास्थाने गोठवी आपे.

विगत एक-दोढ सैकामां मुद्रित थयेला तमाम महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोनुं पण आ प्रकारे सम्मार्जन, हस्तप्रतोने आधारे, खास थवुं जोईए. ते वखते अनुपलब्ध, अने पछीथी उपलब्ध, साधनोनो उपयोग करवामां आवे, तो ते सर्व ग्रन्थो तेना साचा तेमज परिपूर्ण स्वरूपे आपणने मळी शके.

३. प्रतिलेखक अथवा तो कृतिकार/विवरणकारनी समक्ष, कोई एक कुळनी प्रति होय; तेमांनो कोई पाठ, गमे ते कारणे अशुद्ध के बंधबेसतो न होय; परन्तु शास्त्रना प्रत्येक अक्षरने वफादार एवा ते लोको, पोतानी सामेना उपलब्ध पाठने ज यथार्थ मानीने प्रतिलिपि करे के विवरण लखे; अने जो ते पाठ अने तेनो सन्दर्भ जे ते प्रकरण साथे सुसङ्गत नथी एवुं तेमने प्रतीत थाय, तो पण तेओ पाठमां फेरफार न करे; परन्तु 'पोते आ वस्तु समजी शकता नथी' अथवा तो 'अमने अहीं आम लागे छे, पण साचुं शुं ते तो बहुश्रुत जाणे' एवुं कहीने विरमी जाय - आ मान्य परिपाटी छे.

हवे बने एवुं के पाछळथी, पछीना कोईक अभ्यासीने, ते ज ग्रन्थनी बीजी,बीजा कुळनी प्रति मळे; तेमां पेलो पाठ एकदम साचो-शुद्ध होय. अथवा तो बीजा कोई ग्रन्थमां ते पाठ उद्धृत थयेलो जोवामां आवे, अने ते साव शुद्ध होय. आवा संजोगोमां पेला विवरणगत-विवरणकार द्वारा स्वीकृत अने विवृत पाठनुं सम्मार्जन करवुं उचित गणाय के केम ? ए प्रश्न अवश्य जागे. आवे प्रसंगे विवेकपूर्ण मार्ग ए जणाय छे के मूळ पाठ-स्थिति जेमनी तेम रहेवा दईने, ( ) ब्रेकेटमां अथवा तो

पादटीपमां पेलो यथार्थ पाठ, सम्पादकीय नोंध साथे मूकी देवो जोईए. सम्मार्जननो आ पण एक प्रकार गणाय.

परन्तु, मूळ रचनारे के लेखके जे पाठ रच्यो के स्वीकार्यो होय, ते सम्पादकने खोटो/अयोग्य लागे, तो तेथी तेणे ते पाठ बारोबार बदली/सुधारी काढवानुं साहस न करवुं जोईए. तेमनी अपेक्षा आपणने न समजाती होय अने वास्तवमां तेओ ज साचा होय, एवी शक्यता पण होवानी ज; अने तेनी उपेक्षा करीने चालीए तो ते दुस्साहस ज बनी रहे.

सार एटलो के सम्मार्जन–संशोधन–सम्पादन करनार क्यारेय मनमानी रीते वर्ती शके नहि; पण पोतानी जागृत विवेकशीलता साथे ज ते काम करी शके, अने तो ज तेनुं संशोधन उपादेय बने.

– शी.

अनुक्रमणिका

अज्ञातकर्तृक ऋषिमण्डलस्तवः ॥	सं. विजयशीलचन्द्रसूरि	१
रत्नाकरसूरिविरचितम् रैवतकाद्रिमण्डननेमिजिन स्तोत्रम्	पं. अमृत पटेल	३४
अष्टोत्तरशतसंवर शब्दार्थगर्भितं स्वोपज्ञाऽवचूर्णि चर्चितं श्री अभिनन्दनजिनस्तोत्रम्	पं. अमृत पटेल	३९
जयानन्दसूरि कृत प्रथम जिनस्तोत्र (टीका)	सं. मुनि सुयशचन्द्र सुजसचन्द्रविजयौ	५१
सोपाराविज्ञप्तिका	सं. मुनिसुजसचन्द्र सुयशचन्द्रविजयौ	५८
उपा.श्रीगुणविजयजी गणि कृत बे अप्रगट स्तुतिटीका	सं. मुनिसुजसचन्द्र सुयशचन्द्रविजयौ	६५
श्रीभेरवचंद-कृत श्रीटंकशालमध्ये श्रीश्रेयांसजिनचैत्यसम्बन्धः ॥	सं. विजयशीलचन्द्रसूरि	७६
श्रीमतिकीर्त्युपाध्याय विरचिता स्वोपज्ञवृत्तिविभूषिता गुणकित्व-षोडशिका	म. विनयसागर	९६
श्री मुरीबाई तेरमास (हरखासुत शिवराजकृत)	संपा. रसीला कडीआ	११६
प्रकीर्ण स्तवनो	उपा. भुवनचन्द्र	१३१
टूंकनोंध (अनुपूर्ति) :		
मोटी खाखरना देरासरमांनो एक पादुकालेख	उपा. भुवनचन्द्र	१४१
दर्शन विशे विचारणा	ले. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय	१४३
विहंगावलोकन	उपा. भुवनचन्द्र	१७४
नवां प्रकाशनो		१७६
आ.श्रीसूर्योदयसूरीश्वरजीने अंजलि		१७९

अज्ञातकर्तृक ऋषिमण्डलस्तवः ।।

– सं. विजयशीलचन्द्रसूरि

'ऋषिमण्डल'ना नामे बे रचनाओ जैनोमां जाणीती छे. एक, ऋषिमण्डल-स्तोत्र : एनी ६३ अने १०० श्लोकोप्रमाण बे वाचनाओ प्रचलित छे, जेना कर्ता श्रीगौतमस्वामी होवानुं मनाय छे. आ स्तोत्र एक मन्त्रादिगर्भित प्रभावशाली स्तोत्र तरीके व्यापक रीते प्रख्यात छे. बे, ऋषिमण्डलस्तव प्रकरण : २१० गाथा-प्रमाण आ रचनाना कर्ता श्रीधर्मघोषसूरि छे; तेना पर रचायेली अनेक टीकाओ पैकी बेएक टीकाओ प्रकाशित पण छे. आमां प्राचीन महापुरुषोनां नामो तथा तेमना खास प्रसङ्गोनो निर्देश अने ते रीते तेमनी स्तवना थयेल छे. ते 'महर्षिकुलक' एवा नामे पण ओळखाय छे.

ए बेथी जुदी एवी त्रीजी रचना 'ऋषिमण्डल स्तव' अत्रे प्रगट थई रही छे. आ रचना २७१ प्राकृत गाथाओ-प्रमाण छे. तेमां विविध मुनिमहात्माओनी तथा तेमना विशिष्ट प्रसङ्गोनी गुणगाथा के स्तवना करवामां आवी छे. आ मुनिओ ते ऋषिओ, तेमना मण्डल एटले के समूहनी स्तुति ते 'ऋषिमण्डलस्तव'.

आना कर्तानो स्पष्ट उल्लेख जडतो नथी. जोके बीजी गाथामां ''**इसीसु इसिवालिणा निच्चं**'' आवो उल्लेख थयो छे, तेमां '**इसिवालिणा**' एटले '**ऋषिपालेन**' एवो अर्थ स्वीकारीए तो, ते उल्लेख कर्ताना नामनो सूचक थई शके खरो. परन्तु तेम अर्थ करवो के केम ते विषे निःशङ्कता नथी; केमके अन्य कोई प्रमाण के आधार उपलब्ध नथी. परन्तु आ रचना घणी प्राचीन छे तेवुं तो भाषा तथा तेमांनां वर्णनो उपरथी अवश्य जणाई आवे छे. आ 'ऋषिमण्डल' – वर्णनमां छेल्लुं नाम **वज्रस्वामी** किंवा **आर्यवज्र**नुं मळे छे; त्यार पछीना कोई 'ऋषि'नुं नाम के वर्णन नथी थयुं; एटले आ रचना, कदाच आर्य वज्रना (वीर नि.नो पांचमो सैको, ईस्वी सननो प्रारम्भकाल) नजीकना समयमां थयेला कोई कर्तानी रचना होय तो ते सम्भवित लागे छे.

आ रचनानी ताडपत्रीय बे वाचना, बे अलगअलग ताडपत्र-प्रतिओमां सचवाई छे; ते बन्ने प्रतिओ खम्भातना शान्तिनाथ ताडपत्र भण्डारमां छे. आ

सिवाय अन्यत्र क्यांय तेनी प्रति छे नहि, अथवा नोंधाई नथी. खम्भातनी बे पैकी एक प्रतिनो क्र० १२० छे; तेमां विविध लघु कृतिओनो संग्रह थयो छे; ते पैकी सातमा क्रमाङ्के आ रचना, पृ. ९७-११९ मां आलेखायेली छे. आमां प्रायः एक पत्र अप्राप्त छे. आ पोथीनो ले. सं. श्रीपुण्यविजयजीए, १२मी सदीनो उत्तरार्ध अनुमान्यो छे. अत्रे आपेली वाचना मुख्यत्वे आ प्रतने अनुसरीने छे. तेने अहीं खं. १ एवी संज्ञाथी ओळखावी छे. बीजी प्रतिनो क्रम. १३१ छे. ते २८ पानांनी प्रत छे. तेनो ले. सं. १४ शतकनो पूर्वार्ध होवानुं पुण्यविजयजीए नोंध्युं छे. अत्रे तेने खं. २ एवी संज्ञा आपेल छे. बन्ने प्रतिओना पाठोनी तुलना करता केटलाक रसप्रद तफावतो तथा मुद्दा प्राप्त थाय तेम छे.

बीजी गाथामां '**इसीसु सुकयत्थयं**' एवो प्रयोग थयो छे. अर्थात् '**ऋषिषु सुकृतस्तवं**' एम सप्तमी-प्रयोग छे. प्रस्तावनानी गाथाओ ३-११ मां, कर्ता, स्तवना विषयभूत ऋषिओनां नामोनी यादी आपे छे, तेमां पण सर्वत्र सप्तमीनो ज प्रयोग कर्यो छे. आ महत्त्वनो प्रयोग छे. षष्ठीना स्थाने के षष्ठीना अर्थमां सप्तमीनो आवो प्रयोग, आ रचनाने आर्ष रचनामां मूकी आपे छे, एम कही शकाय.

स्तवनीय ऋषिओनो नाम-क्रम आ प्रमाणे छे : १. प्रभुवीर, २. इन्द्रभूति गौतम, ३. धन्य, ४. आर्यलोह, ५. अतिमुक्त, ६. सुनक्षत्र, ७. सुमणभद्द (स्वप्नभद्र), ८. शालिभद्र, ९. सुप्रतिष्ठ, १०. सुदर्शन, ११. दशार्णभद्र, १२. सनत्कुमार, १३. उदायन, १४. यदु-सारण, १५. बलराम, १६. शेलकपुत्र, १७. बाहुबलि, १८. स्कन्द, १९. विष्णु, २०. सुव्रत, २१. शिव, २२. केशी, २३. वज्ज लाढपुत्र, २४. तेतलिपुत्र, २५. वारत्त, २६. कूर्मापुत्र, २७. वैश्यायन, २८. निन्नकुलपुत्र, २९. देवकीपुत्र गज (सुकुमाल), ३०. प्रद्युम्न, ३१. शाम्ब, ३२. कालासवेसिय, ३३. हरिकेश, ३४. सुकोशल, ३५. लंचक निर्ग्रन्थ, ३६. मेयज्ज, ३७. अभय, ३८. जम्बू, ३९. ढंढ, ४०. गङ्गदत्त, ४१. नागदत्त, ४२. चिलातपुत्र, ४३. कुरुदत्त, ४४. आणंदऋषि, ४५. आर्यवज्र.

आ यादी प्रमाणे ज आम तो स्तवना चाले छे. परन्तु क्र. २१मां गोभद्रऋषि, क्र. २४मां वरदत्त ऋषि अने क्र. २७मां गोभद्र के गोसन्न ऋषिनी स्तवनानी गाथाओ मळे छे. आ नामो प्रस्ताविक नाम-क्रममां नथी ! अस्तु.

हवे गा. १२ थी शरु थती स्तवनाओ ऊपर दृष्टिपात करीए :

१. गा. १२-१८ मां भगवान महावीरनी स्तवना छे. १५मी गाथामां तेमने 'वीरभद्र' एवा नामे वर्णव्या छे, ते ध्यानार्ह छे. २. गा. १९-२३ मां गौतम गणधरनी स्तवना छे. तेमां तेमना जीवननी प्रमुख घटनाओनो निर्देश छे. ३. गा. २४-३०मां धन्ना-धन्य अणगारनुं वर्णन छे. तेमणे केवां-केटलां सुख-साधनोनो त्याग कर्यो छे अने तेमनो आहार केवोक हतो तेनुं बयान अचंबो जन्मावनारुं छे. ४. गा. ३१-३४मां लोहार्यनुं स्वरूप वर्णवतां कह्युं के 'लोहार्य अर्हन् (महावीर)नी वैयावच्च करता हता, अने तेमना पात्रमां आणेलो आहार भगवान पोताना करपात्रमां लई वापरता. सेंकडो श्रमणोमां लोहार्यने भगवान बोलावता. ५. गा. ३५-३८मां अइमुत्ता ऋषिनी स्तुति छे. आमां विशेष वात ए छे के, प्रचलित कथानक-अनुसार, बाल अतिमुक्तक रमी रह्या हता, त्यां गौतमस्वामीने आहारार्थे जतां जोया, ते रमवानुं छोडीने घेर लई गयो; पछी तेणे गौतम प्रभुनी शिष्यता स्वीकारी. आ कथाथी तद्दन जुदुं, आमां गा-३५-३६ प्रमाणे, अतिमुक्तकनी नजरे आहारार्थे जता तीर्थंकर चडी जाय छे; ते तेमने आहार-दान करे छे; अने पछीथी तेनां मावतर प्रभु वर्धमानने अतिमुक्तकनी शिष्यभिक्षा पण आपे छे; आवुं वर्णन छे. आवां मौलिक वर्णनो आ कृति प्राचीन होवानुं साबित करे छे.

६. गा. ३९-४० तथा ४३ आ त्रण गाथाओ सुनक्षत्र अणगारने स्तवे छे. तेमां गोशालाने शिखामण आपवा जतां तेमनो स्वर्गवास थयो तेवो उल्लेख छे. प्रचलित कथामां गोशालाने हाथे सुनक्षत्र अने सर्वानुभूति-एम बे मुनिना स्वर्गवासनी वात छे; अहीं ऋषिमण्डलना वर्णनमां सुनक्षत्रनी गणना छे, पण सर्वानुभूतिनी वात सुध्धां नथी, ते बहु महत्त्वनुं जणाय छे. बनवाजोग छे के एकज मुनि पर गोशालके प्रहार कर्यो होय, अने पाछळथी तेमां उमेरो करीने बे मुनिनी वात आलेखाई होय.

गा. ४१-४२मां धन्ना अणगारनी वात पुनः थई छे. प्रतिलेखकनी गरबडने कारणे ३० मी गाथा साथे आ बे गाथाओ होवी जोईए, तेना बदले अहीं आवी गई लागे छे. २४-३० गा. मां थयेल वर्णन अधूरुं लागे छे, जे आ बे गाथा उमेरातां पूर्ण बने छे.

७. गा. ४४-४६मां 'सुमणभद्र' (स्वप्नभद्र के सुमनोभद्र) ऋषिनुं वर्णन छे. आ मुनिनो वृत्तान्त प्रचलित नथी. कदाच, अहीं पहेलीवार तेमनी विगत मळे छे. तेमणे एक रात्रिमां १४ उपसर्गो खम्या, देहभावनो त्याग कर्यो, अने रात पूर्ण थतां तेमने केवलज्ञान प्राप्त थयुं. त्यार पछी इन्द्रे तेमनी वन्दना अने प्रशंसा करी.

८. गा. ४७-५५मां शालिभद्र ऋषिनुं रोचक वर्णन छे. गा. ४७मां शालिभद्रने 'नालंदासुकुमाल' तरीके ओळखावेल छे, तेथी तेओ राजगृहीनगरीमां नालन्दापाडामां वसता हशे तेम समजाय छे. प्रचलित कथा प्रमाणे शालिभद्रने ३२ पत्नीओ हती. अहीं तेने बदले २१ पत्नीओ होवानुं (गा. ४९) जणाव्युं छे, अने बत्रीसबद्ध नाटकोनी संख्या पण २१ ज जणावी छे. गा. ५२मां तेमनी पासे बे प्रकारनुं धन हतुं तेम वर्णवायुं छे : एक, वडीलोपार्जित, बे, नागदेवता द्वारा प्राप्त. आ उपरथी एम जणाय छे के शालिभद्रना पिता गोभद्रशेठ नागदेवलोकमां हशे. गा. ५३मां चोवीश भद्रोनो त्याग करीने दीक्षा लीधी तेम निर्देश छे. आ २४ भद्र शुं हशे ? ते समजमां आव्युं नथी.

९. गा. ५६-५८ सुप्रतिष्ठ ऋषिने वर्णवे छे. वर्णन अनुसार, 'सिंहनिष्क्रीडित' नामना महातपना आराधक ते छेल्ला हता. १०. ५९ थी ६३ गाथाओमां सुदर्शन ऋषिनी स्तुति थई छे. दधिवाहन राजानी अभया राणी द्वारा थयेल उपद्रवथी पण ते चलित न थया, अने तेमनुं गळुं कापवा माटे उगामेली तलवार पुष्पगुच्छरूपे पलटाई तेवो उल्लेख ध्यानार्ह छे. ११. गा. ६४-६५मां राजा दशार्णभद्र तथा तेमणे करेला त्यागनुं वर्णन छे. ७०० स्त्रीओ अने ५० हजार रथ इत्यादिनो त्याग करीने तेमणे दीक्षा लीधी हती. १२. गा. ६६-७४ चक्रवर्ती सनत्कुमारनी स्तवना करे छे. तेमां तेमने थयेल सात मोटा रोगोनां नामो पण छे.

१३. गा. ७५-८२ मां उदायण राजर्षिनुं वर्णन छे. उदायन (के उद्रायण ?) सत्यनिष्ठ हतो, अने ते ज कारणे तेनी सैन्य-छावणीने विकट जंगलमां पाणीनी अछत थई, त्यारे दिव्य सहायथी पाणी सांपडेलुं एवो अहीं (गा. ७५) उल्लेख छे. चण्डप्रद्योतना कपाळे तेणे 'मम दासीपतिः' एवा अक्षरो अंकावेला ते 'मोरपित्त' (मोरनुं पित्त अथवा ते नामनुं कोई विलक्षण द्रव्य)

वडे अंकावेला एवो उल्लेख पण महत्त्वनो छे (गा. ७६). पित्त पीळुं होय, तेथी कपाळे तेनाथी थयेल अंकन सोनानो भास करावतुं होय तो बनवाजोग छे. सौवीर देशना ए राजाए एक हजार गामोनुं साम्राज्य तजी दीक्षा लीधी; ते अन्तिम राजर्षि गणाया; तेमना मरणथी रोषे भरायेला देवोए शिलानी घोर वृष्टि करी हती (अने ते देशने उज्जड कर्यो हतो); अने तेओ उत्कृष्ट तपस्वी हता; आवी वातो आमां नोंधाई छे.

१४. गा. ८३-८५मां सारण ऋषिनुं वर्णन छे. ते मुनि नेमिनाथना वारामां थया हशे तेवुं 'उज्जयन्तशैल'ना उल्लेखने लीधे (गा. ८३) मानी शकाय. १०० वर्षनो संयम, तेमां छठ्ठ-अट्ठमना तप, ए जोतां ते महातपस्वी हता तेम समजी शकाय छे. १५. गा. ८६-९२मां कृष्णना भाई बलदेव मुनिनी स्तुति छे. तेमनी तपस्यानुं वर्णन : सातमी (प्रतिमा) सातवार, आठमी ८वार नवमी ९ वार, १०मी १० वार; तो ६० मासखमण, ६० पासखमण, ४ चारमासी उपवास ! तेमनी रक्षा माटे देव सिंहनुं रूप लई जंगलमां साथे फरतो ! १६-१७. गा. ९३-९४मां सेलगपुत्त-शिवनी, अने गा. ९५-१०१मां बाहुबलि मुनिनी स्तवना छे.

१८. गा. १०३-११३ मां स्कन्दकुमार मुनिनी स्तुति थई छे. तेमनी साधनाना वर्णन दरमियान, 'रोहीडग' (रोहीडा) नगरनुं नाम आवे छे. त्यां तेमने कोई क्षत्रिये 'शक्ति' वडे प्रहार करेलो, ते आजे मारवाडमां छे ते ज रोहीडा हशे ? तो ते क्षेत्र घणुं पुरातन छे तेम मानवुं पडे. ते मारनारने तेमणे जीवतदान अपाव्युं (गा. ११०) तेनी पण नोंध छे; तो पोताना, क्षत्रियवध करनारा पिताने प्रतिबोध आप्यानी वात पण नोंधेल छे (गा. १११).

१९. गा. ११४-१२३ विष्णु(कुमार) मुनिनो वृत्तान्त वर्णवे छे. १६मा शान्तिनाथ जिनना वखतमां ते थया. (गा. ११४). ६० सहस्र वर्षो छट्ठतप तप्या. महापद्म नामे माण्डलिक राजा पासे, साधु-संघ खातर, ३ पगलां जग्या मागी (११६). ३ पगलांमां ३ लोक आवरी लीधा. छेवटे प्रायश्चित्त करीने सर्वार्थसिद्धे देवगति पाम्या. २०-२१. १२५-२७ गा. मां सुव्रतमुनिनी वात छे; तो १२८-२९मां गोभद्र ऋषिनुं वृत्तान्त छे. आ मुनिने कुबेर यक्षराज द्वारा धर्मबोध मळेला, आ नाम पण प्रचलित नथी. २३. गा. १३०मां शिव ऋषिनी वात एक ज

गाथामां छे.

२३. गा. १३१-३३मां केशीकुमार श्रमणनी वात छे. तेमां गा. १३१ नो भाव स्पष्ट थतो नथी. २४. गा. १३४मां वज्र लाढपुत्रनुं; २५. गा. १३५मां वरदत्तऋषिनी; २६. गा. १३६-३७मां तेतलिपुत्रनी वात आवे छे. २७. १३८-१४२मां वारत्तऋषिनुं स्वरूप वर्णव्युं छे. ते मुनि पार्श्वनाथ जिनना शिष्य छे तेवुं गा. १४२मां छे. २७. १४३-४७ मां कूर्मापुत्रनी वात छे. ते गृह-स्थ केवलज्ञानी छे; अने ते केवली होवानी जाण, महाविदेहना जिन थकी विद्याधर मुनि जाणी लाव्या त्यारे ज थई छे (गा. १४५). २८. गा. १४८मां 'गोसन्न' नामे कोई ऋषिनी वात थई लागे छे. आ गाथामां शुं तात्पर्य छे ते स्पष्ट थतुं नथी.

२९. गा. १४९-५१मां वैश्यायन ऋषिनी वात छे. गोशालाए तेमने स्खलना पहोंचाडतां ते रोषे भराया; तेज (तेजोलेश्या) छोड्युं; परन्तु तेनी समीपमां ज वीरप्रभु होवानुं ध्यानमां आवतां ज तेमणे ते पाछुं खेंची लीधुं; एवी वात आमां छे, जे अद्‌भुत छे. प्रसिद्ध कथा एवी छे के वैश्यायने तेजोलेश्या मूकी, तेनाथी गोशालाने बचाववा माटे प्रभु वीरे शीतलेश्या छोडी हती. लागे छे के आ 'स्तव'गत वृत्तान्त वधु तथ्यपूर्ण छे; प्रसिद्ध कथा ते पाछळथी थयेल फेरफाररूप हशे.

३०. गा. १५२-१६० मां 'निन्न' कुलपुत्र मुनि विषे वर्णन छे. बे 'कुलल' (पक्षी के प्राणी-विशेष)ने एक मांस-खण्ड खातर लडतां जोईने तेमने वैराग्य थयो हतो. तेमना निर्वाण पछी चमरेन्द्रे तेमना शरीरने बे बाजुथी रुंध्युं (अर्थात् अन्तिमविधि करतां मोहवश के रागवश रोकतो हतो), तेमज तेणे तेमनी स्तुति करी (गा. १५९-६०). आ नाम-वर्णन पण अप्रसिद्ध लागे छे. ३१. गा. १६१-६९ मां गजसुकुमाल मुनिनुं बयान छे. गज (हाथी)नी सुंढ जेवी भुजाओ, गज जेवी चाल, गजना मद जेवी देह-गन्ध, तेथी नाम पड्युं गजसुकुमाल (गा. १६६). तेना माता-पिताए नेमिनाथ प्रभुने शिष्य तरीके ते अर्पण कर्यो हतो (गा. १६२). तेमना यौवन पाछळ राजकन्या चन्द्रलेखा पागल बनी हती (गा. १६५). (ते परण्या होय तेवुं जणातुं नथी). गजसुकुमालने तेमना ससराए स्मशानमां उपसर्ग करेलो एवी प्रचलित कथानो अहीं गन्ध पण

मळतो नथी, ते ध्यानमां लेवा योग्य छे.

३२. गा. १७०-७८मां प्रद्युम्न ऋषिनी स्तवना छे. वर्णन मजानुं छे. एक नवी वात ए छे के राजकुमार प्रद्युम्न विमानमां बेसीने फूल वरसावतो नेमिनाथ पासे आवे छे. (गा. १७६). ३३. गा. १७९-८६ शाम्बकुमार मुनिनुं स्तवन करे छे. आ रचनामां एक प्रयोग ध्यान आपवा जेवो छे : 'बारवई कायलयं' (गा. १७९). अर्थात् द्वारावतीमां जेनी काया निर्माई छे – द्वारावतीना वासी. एकथी वधु स्थाने आवो प्रयोग थयेल छे. धगधगती शिला उपर एमणे अणसण ग्रहेलुं, अने आखा देह पर थयेल फोडलाओमांथी रुधिर झरतुं होवा छतां ते विचलित नहोता थया, एवुं गा. १८३-८४नुं वर्णन स्तब्ध करे तेवुं छे.

३४. गा. १८७-९१मां कालाश्रितवेशिक मुनिनुं स्वरूप बताव्युं छे. 'मोगल्ल' (मोकल)[१] पर्वत-शिखर पर तेमणे अनशन कर्युं त्यारे शियाळणीए तेमना शरीरने फाडी खाधुं हतुं, तोय ते चळ्या न हता (गा. १९१). ३५. गा. १९२-९६ हरिकेश मुनिने वर्णवे छे. शूद्र कुलमां पेदा थवा छतां तेमणे दीक्षा लीधेली. काळोतरो झेरी सर्प तेमना वैराग्यनुं कारण बनेलो (गा. १९४). कोशलदेशनी राजकन्या परणवा आवी तो तेनो अस्वीकार ज कर्यो. एक सहस्र तेमनी सेवामां रहेता हता.

३५. गा. १९७-२०२मां सुकोशल मुनिनी स्तुति थई छे. यौवनवयमां ज श्रेष्ठ स्त्रीनो त्याग करीने दीक्षा लीधी. यावज्जीव छट्ठ (२ उपवास)नुं तप कर्युं. गत जन्मनी माता मरीने वाघण थयेली अने तेणे पोतानां बच्चां माटे, पोताना जन्मान्तरना आ पुत्र (सुकोशल) ने फाडी खाधो ! मरीने ते सर्वार्थसिद्धे देव थया. ३६. गा. २०३-९मां लंचक ऋषिनुं वर्णन छे. आ नाम पण अल्प प्रसिद्ध छे. ते विशालानगरीनी श्रेष्ठ व्यक्ति हता. गा. २०५मां थयेल वर्णन अनुसार, 'स्तव'ना कर्ता आंखे देखाती वात वर्णवतां होय तेम जणाय छे. तेमणे नोंध्युं छे के आजे पण विशालामां, ज्यां लंचक मुनि प्रतिमाध्याने ऊभेला त्यां, तेमना नामे, **'लंचगसिवोवगास'** (कोई स्थानविशेष के कोई मार्ग के चोक जेवुं) छे. आ नोंध बहु महत्त्वनी छे. एनाथी जेम लंचग ऋषिनो इतिहास पुरवार

१. राजस्थानमां मोकलसर क्षेत्र छे. त्यां 'मोकल'-पहाडी छे, ते आ हशे ?

थाय छे, तेम आ 'स्तव'ना कर्ता पण केटला प्राचीन हशे ते पण अनुमानी शकाय छे.

३७. गा. २१०-२१८ मेयज्ज (मेतार्य के मैत्रेय) ऋषिनुं गुणगान करे छे. तेमनो विख्यात जीवन प्रसङ्ग आमां वर्णवायो छे : सोनीने त्यां आहारार्थे गमन; क्रोंच पंखी द्वारा सुवर्णयव चणी जवा; सोनीनी पृच्छाना जवाबमां मुनिनुं मौन, क्रोंचनुं नाम न आपवुं; सोनी द्वारा मुनिना मस्तके एवुं कठोर बन्धन के जेथी तेमनी बे आंखो फूटी गई, तो पण अचल अवस्था अने आत्मध्यानमां लीन; छेवटे त्यां ज केवलज्ञान पामीने निर्वाणपद पाम्या. ३८. गा. २१९-२२३ अभयकुमारनुं वर्णन आपे छे. गर्भमां हता त्यारे ज तेमनी माताने सहु जीवोने अभयदान आपवानो मनोरथ थयो हतो, ते पाळ्यो पण हतो; तेथी ज तेमनुं नाम 'अभय' पाडवामां आव्युं. पदानुसारी लब्धिना ते स्वामी हता. (एक पद बोलो,तो ते आखुं सूत्र, आखो पाठ, आखो ग्रन्थ बोली जाय तेवी शक्ति). तेमणे वर्धमानस्वामी पासे दीक्षा ग्रहण करी हती. अहीं गा. २२१मां 'सेणियकुलकायलयं' एवो प्रयोग थयो छे : श्रेणिकना कुलनी जेनी काय-लता छे ते, एम अर्थ बेसे.

३९. गा. २२४-३१मां जम्बूकुमार मुनिनी स्तवना थई छे. प्रभव आदि चोरोनो प्रसङ्ग, ८ कन्या साथे लग्न अने एकज रातमां तेमनो त्याग, ते सर्व सहित दीक्षा-आ बधुं आमां वर्णन थयुं छे. ४०. गा. २३२-३६मां ढंढ अणगार (प्रसिद्ध नाम 'ढंढण')नुं वर्णन छे. ४१. गा. २३७-४१मां गङ्गदत्त मुनिनुं वर्णन थयुं छे. तेमणे केटली समृद्धिनो त्याग कर्यो, तेनी वात आमां थई छे. ४२. गा. २४२-४६ मां नागदत्तनी वात छे. तेना पिता मरीने नागलोकमां उत्पन्न थया होई, अने तेमने आ पुत्र पर विशेष स्नेह होई, तेओ नागकन्याओ साथे तेने परणावे छे. कालान्तरे ते कन्याओने पण त्यजीने ते दीक्षा ले छे.

४३. गा. २४७-५५मां चिलातपुत्र मुनिनुं स्तवन थयेल छे, त्रण पदो सांभळीने धर्म अने समाधिने वर्या. देहभाव तजी दीधो. बे आंखो खेंची काढवामां आवी छतां विचलित न थया. आंखोथी वहेतां लोहीनी गन्धथी आवेली कीडीओए आखा देहने फोली खावा छतां ते चळ्या नहि. ४ लोकपालो पण तेमने प्रणाम करी गया. अढी रात्रि-दिवसमां ज तेओ पार

पामीने देव थया हता. ४४. गा. २५६-५९ कुरुदत्त ऋषिने वर्णवे छे. ते दीक्षा लई स्मशानमां ध्यान धरता ऊभेला, त्यारे चिताना अग्नि वडे बळी जवा छतां विचलित न थया. अहीं पण 'हत्थिणपुरकायलयं' (२५८) प्रयोग थयो छे. ४५. गा. २६०-६४मां आनन्द ऋषिनी वात थई छे. आ मुनि महावीरस्वामीना समयना छे. तेनी सम्पत्ति एटली बधी हती, के राणी चेल्लणा अने राजा श्रेणिकना मान्यामां न आववाथी तेओ जाते तेमना घरे तेमनी सम्पत्ति जोवा गयेला ! (गा. २६२). तेमनी साथे तेमनां पत्नीए पण दीक्षा लीधी हती.

४६. गा. २६५-७०मां वज्रस्वामीनुं गुणवर्णन थयुं छे. तेमणे आकाश-गामिनी विद्यानो उद्धार कर्यो. ते अन्तिम श्रुतधर हता. ते आकाशमार्गे (संघने) माहेश्वरी नगरीथी शेषानगरीए लई गया हता. बाल-अवस्थामां, देवो (यक्षो) द्वारा अपाता आहारनो तेमणे निषेध करेलो, सुविहित १७०० साधुओ साथे तेमणे अनशन कर्युं हतुं. गा. २७०मां जणाव्या प्रमाणे तो ते सर्वार्थसिद्ध विमाने गया हता. अथवा तो सर्वार्थनी सिद्धिना ते स्वामी बन्या हता, एम पण अर्थ करी शकाय.

गा. २७१मी थोडीक अशुद्धिवाळी जणाय छे. तेमां कर्ता द्वारा उपसंहार थयो छे. कर्ताए पोतानुं नाम लखवानो आग्रह दर्शाव्यो नथी.

बन्ने ताडपत्र प्रतिओना फोटा लेवडावी देवा बदल खम्भात श्रीशान्तिनाथ ताडपत्र भण्डारना कार्यवाहकोनो आभारी छुं.

आ रचनानो ख्याल नहोतो. डॉ. ढांकीसाहेबे एक प्रसंगे सूचव्युं के तमे आ एक प्राचीन रचना हजी अप्रगट छे ते जुओ अने नकल ऊतारीने प्रसिद्ध करो. खम्भातना सूचिपत्रमां पुण्यविजयजी महाराजे तेना विषे नोंध आपी छे. आथी आ रचना माटे जिज्ञासा जागी, जेनुं परिणाम अत्रे प्रस्तुत छे. आवी अद्भुत कृति प्रत्ये ध्यान दोरवा बदल डॉ. मधुसूदन ढांकीनो पण आभारी छुं.

आ कृतिनी हस्तप्रत क्यांक होय अने कोईना ध्यानमां आवे तो ते तरफ ध्यान दोरे अथवा तेनी नकल प्राप्त करावी आपे तेवी विज्ञप्ति.

श्रीऋषिमण्डलस्तवः ॥

इसिमंडलस्स गुणमंडलस्स तवनियममंडलधरस्स ।
संसारमंडलविहाडयस्स[१] थयमुत्तमं वोच्छं ॥१॥
जिणवरसासणनिउणा जिणवरवयणाणुरत्तभावेणं ।
सुणह सुकयत्थयमिणं[२] इसीसु इसिपालिणा[३] निच्चं ॥२॥
भयवंतम्मि[४] य वीरे गोयमगोत्ते य इंदभूयिम्मि[५] ।
धन्ने धम्मविहन्ने[६] जियलोहे[७] अज्जलोहे[८] य ॥३॥
अइमुत्ते य तिगुत्ते धीरधणुम्मि[९] य तहा सुनक्खत्ते ।
सिद्धे य [१०]समणभद्दम्मि सालिभद्दे[११] य सुपईट्ठे[१२] ॥४॥
धीरे सुदंसणम्मि य दसन्नभद्दे सणंकुमारे य ।
रायरिसिम्मि य उद्दायणम्मि जउ सारणे य कयं ॥५॥
नीलगवसणे रामे लंचगपुत्ते[१३] य बाहुबलि खंदे ।
विण्हुम्मि[१४] सुव्वियम्मि[१५] य सिवे य सिद्धम्मि[१६] बुद्धम्मि ॥६॥
केसिम्मि जियकिलेसे अणवज्जे वज्ज लाढपुत्ते य ।
तेयलिपुत्ते य [१७]कयं मुणिम्मि वारत्तए चेव ॥७॥
कुम्मगपुत्ते तह वेसियायणे तह य निन्नकुलपुत्ते ।
देवइपुत्ते य गए दोसु वि[१८] पज्जुन्न-संबेसु ॥८॥
कालासवेसियम्मि य हरिएसे[१९] तह सुकोसले कुसले ।
निग्गंथलंचगम्मि च अज्जे मेयज्जनामे य ॥९॥
अभयम्मि य अभयकरे जंबुम्मि य जम्ममरणनिम्मुक्के[२०] ।
ढंढम्मि गंगदत्ते नागदत्ते य अणगारे ॥१०॥

---

१. ०**विग्घा०** खं. २ । २. **सुकयत्थमिणं** खं. २ । ३. ०**पालणा** खं. २ । ४. **भग०** खं. २ । ५. ०**भूयम्मि** खं. २ । ६. ०**विहिन्ने** खं. २ । ७.८. ०**लोभे** खं. २ । ९. **धीए य धणम्मि तह सु०** खं. २ । १०. **सुमण०** खं. २ । ११. **सालभद्दम्मि** खं. २ । १२. **सुपयट्ठे** खं. २ । १३. **सेलग०** खं. २ । १४. **विन्हु०** खं. २ । १५. **सुव्व०** खं. २ । १६. **सुद्ध०** खं. २ । १७. **तहा** खं. २ । १८. **य** खं. २ । १९. **हरिएसुम्मि य सु०** खं. २। २०. ०**नीहूए** खं. २ ।

सूरे चिलायपुत्ते अणुत्तरपरक्कमे[1] य कुरुदत्ते ।
आणंदे य रिसिम्मिय वइरे य महाणुभावम्मि ॥११॥
आइगरं तित्थयरं अप्पडिहयनाणदंसणचरित्तं ।
धम्मवरचक्कवट्टिं वंदामि जिणं महावीरं ॥१२॥
जच्चसुवन्नगवन्नं कोमुइपडिपुन्नचंदसरिसमुहं ।
कमलदलसरिसनयणं सुरदुंदुहितुल्लनिग्घोसं ॥१३॥
मत्तवरवारणगई(इं) अचलं मेरुमिव सुरमिव सुरूवं ।
रिसिसयसहस्समहियं परमरिसिं वंदिमो वीरं ॥१४॥
जेणेगराइयाए वीसं अहियासिया उवसग्गा ।
तं वीरभद्दमणहं विबुहगणनमंसियं वंदे ॥१५॥
जो सो तित्थयराणं अपच्छिमो भारहम्मि वासम्मि ।
पुरिसवरमउलविरियं[2] वंदामि जिणं महावीरं ॥१६॥
पव्वाविया य[3] पढममेव गोयमा[4] तिन्नि भाउया[5] जेण ।
तिण्हं[6] पि य परिवारो पन्नरससयाइं पुन्नाइं ॥१७॥
अवसेसा वि[7] गणहरा अट्ठ कमेण[8] तवसंजमे ट्ठविया ।
सव्वट्ठनिट्ठियट्ठं वंदामि जिणं महावीरं ॥१८॥
वेयपयाण य अत्थे कहिए वीरेण [9]जो विगयमोहो ।
पव्वइयं तं धीरं सिरसा हं गोयमं वंदे ॥१९॥
जेण तया कोडिन्ना आणीया तावसा विगयमोहा ।
पव्वाविया य समणा भिक्खेण य विम्हयं नीया ॥२०॥
जो चरइ तवमुयारं उदारकित्तिस्स[10] पायमूलम्मि ।
नायसुयस्स अरहओ तं सिरसा गोयमं वंदे ॥२१॥
जो सो सयाणुरत्तो जिणंवीरं[11] केवलिं अमियनाणी[12] ।
अइरागबंधणेणं जस्स न उप्पज्जए नाणं ॥२२॥

---

१. **अणंतर०** खं. २ । २. **पुरिसगण०** खं.२ । ३. **०विया पढमेव** सं. २ । ४. **भावया** खं. २ । ५. **गोयमा चेव** खं. २ । ६. **तिन्हं** खं. २ । ७. **य** खं. २ । ८. **कम्मेण** खं. २ । ९. **विगयमोहेणं** खं. २ । १०. **उयार०** खं. २ । ११. **मुणिवसहं** खं. २ । १२. **महावीरं** खं. २ ।

नायसुए सिद्धिगए वोच्छिन्नं पेम[1]बंधणं जस्स ।
उ[2]प्पन्नं च अणंतं नाणं तं गोयमं वंदे ॥२३॥
दोमासिय ते[3]मासिय चाउम्मासिय तहेव छम्मासे ।
तवसा मुणिमुक्कट्ठं धन्नं वंदामि अणगारं ॥२४॥
फासुयमवि जो लुक्खं भुंजइ तंपि य न[4] भुंजई पकामं ।
धन्नं[5] रिसिवरमहियं परमट्ठगवेसयं वंदे ॥२५॥
उत्तत्तकणयवन्ना महिला मणिहारभूसियंगीओ ।
धन्नो परिच्च[6]इत्ता ओमोय[7]रियाए जावेइ ॥२६॥
जस्स य संलीणत्तं खंती मद्दवय उत्त[8]मा तुट्ठी ।
गुणसागरं अपारं धन्नं वंदामि अणगारं ॥२७॥
जो सयणपरियणजणं धणकोडिं उज्झिऊण पव्वइओ ।
विहरइ तवतणु[9]यंगो धन्नं वंदामि अणगारं ॥२८॥
जस्स कओ आहारो [10]नासइ तत्ते जहा कडाहम्मि ।
छूढो उय[11]रकभल्ले धन्नं वंदामि अणगारं ॥२९॥
स[12]च्चुप्परि देवाणं न[13]वहि उ मासेहिं मग्गिया वसही ।
एक्का य गब्भवसही सेसा धन्नस्स धन्नस्स ॥३०॥
जो अरहओ भगवओ वेयावच्चं महायसो कासी ।
[14]छन्दोणुयत्तिमणहं सि[15]रसा लोहं नमंसामि ॥३१॥
धन्नो सो लोहज्जो खण्डतखमो पवरलोहसरिवन्नो ।
जस्स जिणो पत्ताओ इच्छइ पाणीहिं भोत्तुं जे ॥३२॥

---

१. **राग०** खं. २ । २. **नाणं से उप्पन्नं तं सिरसा गो०** खं. २ । ३. **०तिय-चाउमासिएहिं छम्मासिएहिं खमणेहिं** खं.२ । ४. **णु** सं. २ । ५. **धन्नरिसिं वर०** खं. २ । ६. **परिचत्ताओ** खं. २ । ७. **गोयरिया व -----०** खं. २ । ८. **मुत्तगा** खं. २ । ९. **तणुअंगो** खं. २ । १०. **जस्स हु** खं. २ । ११. **उदरकवल्ले** खं. २ । १२. **सव्वुपरि** खं. २ । १३. **[न]वहि य** खं. २ । १४. **छन्दमणुयत्तमाणं** खं. २ । १५. **लोहज्जमिसिं** खं. २ ।

समणसयाणं मज्झे वागरिउं पुन्नचंदवयणेण ।
तित्थयरेणं लोहो अरहइ धीईए[1] अप्फुन्ने[2] ॥३३॥
जो कम्मसेलवल्लि अट्ठविहं छिंदिउं निरवसेसं ।
सिद्धिवसहिमुवगओ तमहं [3]लोहं नमंसामि ॥३४॥
जो खुड्डुलओ संतो कीलंतो पासिऊण तित्थयरं ।
वंदिय पडिलाभेई[4] अइमुत्तरिसिं[5] नमंसामि ॥३५॥
जं तं अम्मापियरो जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स ।
दासी य सीसभिक्खं अइमुत्तरिसिं नमंसामि ॥३६॥
छव्वरिसो[6] पव्वइओ [] [7]निग्गंथो रोइऊण पावयणं ।
[8]सिट्ठं विहुयरयमलं [] अइमुत्तरिसिं नमंसामि ॥३७॥
डहरं अडहरबुद्धिं [] [9]मोक्खविहिविसारयं पिउणो ।
[10]धीरं कुमारसमणं [] अइमुत्तरिसिं[11] नमंसामि ॥३८॥
जो धम्मं सोऊणं जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स ।
[] [12]पव्वइओ अणगारं तमहं वंदे सुनक्खत्तं ॥३९॥
सोलस धणकोडीओ सोलस भज्जाइं परिच्चइ[त्ता]य ।
पव्वइओ अणगारो तमहं वंदे[] सुनक्खत्तं[13] ॥४०॥
कायंदीए भद्दीतणयं जियसत्तुदिक्खकयमहिमं ।
धीरं [14]धणमणगारं वीरजिणपसंसियं वंदे ॥४१॥
[15]दुद्धंतरि उज्झिय अंबिलेण लेवेण झोसियसरीरं ।
नवमासा[16] परियायं सव्वट्ठगयं धणं वंदे ॥४२॥

---

१. **पीइए** खं. २ । २. **अप्फुन्नो** खं. २ । ३. **वंदामि लोहज्जं** खं. २ । ४. **०लाहेई** खं. २ । ५. **अइमत्त०** खं. २ । ६. **सिक्खं** खं. २ । ७. **जहारिसो** खं. २ । ८-९. [] **मध्यगतः पाठो न** खं. २ । १०-११. [] **मध्यगतं न** खं. २ । १२. **०रिसी** खं. १ । १३. [] **मध्यगतं** खं. २ न । १४. **सुनक्खत्ते** खं. २ । १५. **धण्णणगारं** खं. २ । १६. **लद्धतरि०** खं. २ । १७. **नवमासी** खं. २ ।

गोसालं सासंतो कालगओ जो गओ अमरलोयं ।
सव्वुंप्परिल्लकप्पं[1] तमहं वंदे सुनक्खत्तं[2] ॥४३॥
जेणेगराइयाए चोद्दस [3]अहियासिया उवस्सग्गा ।
वोसट्ठचत्तदेहं तमहं वंदे सुमणभद्दं[4] ॥४४॥
जस्सुट्ठियम्मि सूरे उप्पन्नं नाणदंसणमणंतं ।
[5]पडिमाए प(पा)रियाए तमहं वंदे सुमणभद्दं ॥४५॥
जं वंदिऊण इंदो काऊण पयाहिणं च भाणीय ।
'लाहा हु ते सुलद्धा जंसि [6]दढधिई मम वि लाभो' ॥४६॥
[7]नालंदासुकुमालं भोगविहिविसारयं पियं पिउणो[8] ।
तं सालिभद्दमणहं विमाणवरवासियं वंदे ॥४७॥
बत्तीस [9]वि बद्धाइ सिंगारा[10]गारचारुवेसाइं ।
जस्सेक्कवी[11]सइं नाड[12]याइं सुर[13]नाडयनिभाइं ॥४८॥
वरपाणभोयणविहिं[14] भज्जाउ एक्कवीसइं [15]चइया ।
जो धम्मरामरत्तो[16] तं वंदे सालिभद्दमिसिं ॥४९॥
हारा जेण य विकिण्णा[17] महावणं चंदणं अगरुयं च ।
गब्भप्पगयनिवाया[17] तं वंदे सालिभद्दमिसिं ॥५०॥
जस्स घरे साहीणा छप्पि रिऊ निच्चकालरमणिज्जा ।
वावीओ य [18]अणोवमाणेगा[19] देव[20]प्पभावेणं ॥५१॥
पुव्वपुरिसागयं धणं अक्खयं नागदेवयादिन्नं ।
जो विहुणिय पव्वइओ तं वंदे सालिभद्दमिसिं ॥५२॥
भद्दाइं चउवीसं जो चइय अणोवमं तवं कासी ।
तं आगमेसिभद्दं गोभद्दसुयं नमंसामि ॥५३॥

---

१. **सव्वुवरिल्लकपेमे** खं. १ । २. **सुनक्खत्ते** खं. २ । ३. **सुहिया भिया** खं. २ । ४. **सुनक्खत्तं** खं. २ । ५. **पायं उक्खिव्वमाणस्स वंदेमो तं सु०** खं. २ । ६. **दढं धी ममहिलासो** खं. २ । ७. **नाणंगसु०** खं. २ । ८. **पिउणे** खं. २ । ९. **नि०** खं. २ । १०. **सिंगारंगाइ चारु०** खं. २ । ११. **जस्सेग०** खं. २ । १२. **नाडगाइं** खं. २ । १३. **सुरवहूयनि०** खं. २ । १४. **०विही** खं. २ । १५. **तइया** खं. २ । १६. **०रत्ते** खं. २ । १७. □ **एतदन्तर्गतं न** खं. २ । १८. **अणु०** खं. २ । १९. **अणोवम णाग०** (?) । २०. **तप्पहावेणं** खं. २ ।

जो निच्छयं उवगउ [१]कयंजलिं(ली) वंदिऊण लोयगुरुं ।
खामेऊण सुविहिए जावज्जीवं चयइ [२]भत्तं ॥५४॥
मासं पाओवगओ आलोइय निंदिऊण दुच्चरियं ।
सव्वट्ठसिद्धिनिलयं तं वंदे सालिभद्दमिसिं ॥५५॥
जो चइऊण विमाणे[३] सिलप्पवालमणिकंचणसमिद्धे[४] ।
वेसमणभवणसरिसे आयाओ इब्भभवणम्मि ॥५६॥
भोगेसु अरज्जंतो धम्मं सोऊण वद्धमाणस्स ।
जो समणो पव्वइओ सुपइट्ठमिसिं नमंसामि ॥५७॥
जो वागरिओ वीरेण सीहनिक्कीलिए तवोकम्मे ।
ओसप्पिणिए भरहे अपच्छिमो सि त्ति तं वंदे ॥५८॥
चंपाए जो तइया अहियासे दारुणे उवस्सग्गे ।
वोसट्ठचत्तदेहं सुदंसणमिसिं नमंसामि ॥५९॥
जो दहिवाहण[५]पीइल्लियाए अभयाए अग्गमहिसीए ।
खोभेऊण न चइओ सुदंसणमिसिं नमंसामि ॥६०॥
खण्डतखमं उग्गतवं वंदे तवतेयरूवसंपन्नं ।
किन्नरगणेहि महियं सुदंसणमिसिं नमंसामि ॥६१॥
जस्सासी पुप्फमओ परियत्ते दारुणे य उवसग्गे ।
सीसम्मि छिज्जमाणे सुदंसणमिसिं नमंसामि ॥६२॥
वरवेरुलिये[६] य मणिं मुत्ताओ कंचणं पवालं च ।
चइउं सुदंसणमिसिं(सी)नेव्वाणमणुत्तरं पत्तो ॥६३॥
नयरं च दसन्नपुरं सत्त य पमयासयाइं चइऊण ।
धणकणयरयणनिचए मुत्तापुंजे महंते य ॥६४॥
को[७]मारियाओ भज्जा पन्नासं कप्पिया[८] रहसहस्सा[९] ।
चइउं दसन्नभद्दो नेव्वाणमणुत्तरं पत्तो ॥६५॥

---

१. **पच्चलिओ** खं. २ । २. **भद्दं** खं. १ । ३. **विमाणं** खं. २ । ४. **०समिद्धं** खं. २ । ५. **०पिययमाए** खं. २ । ६. **०वेरुलियमणी०** खं. २ । ७. **कोमारी भज्जाओ** खं. २ । ८. **कप्पियं** खं. २ । ९. **०सहस्सं** खं. २ ।

जो चइय सागरंतं एगच्छत्तं महिं पुहइपालो ।
पव्वइं[1]ओ तं धीरं सणंकुमारं नमंसामि ॥६६॥
जो वरिससयसहस्सं भुंजियभोगो[2] समुद्धुयमुइंगो ।
पव्वइओ[3] तं धीरं सणंकुमारं नमंसामि ॥६७॥
अट्ठसयलक्खणधरो चोसट्ठी[4] महिलियासहस्साइं ।
सव्वंगसुंदरीणं जणवयकुसुमाइं वोसिरिया[5] ॥६८॥
छड्डेऊणं[6] नरिंदो नव निहओ नव य आगरसहस्से ।
नवमेहसन्निहाणिं[7] अ दंतिसहस्साइं चुलसीई ॥६९॥
अट्ठारसेसु[8] ट्ठाणेसु वंदिओ सहरिसेण सुरवइणा ।
सत्तहि वाहीहि जियं सणंकुमारं नमंसामि ॥७०॥
कंडू अभत्तसद्धा तिव्वा वियणा य अच्छि-कुच्छीसु[9] ।
[10]कासं जरं च सासं अहियासे सत्त वाससए ॥७१॥
[11]जो वंदिओ महप्पा [12]देविंदेण चमरेण य जमेण ।
दिव्वाए[13] पुप्फवुट्ठीए अच्चिओ देवसंघेहिं ॥७२॥
जेण कयं सामन्नं वास[14]सयसहस्समुग्गतेएणं ।
देविंदवंदमहियं सणंकुमारं नमंसामि ॥७३॥
कप्पे सणंकुमारे जस्स ट्ठिई सागरोवमा सत्त ।
तं आगमेसिभद्दं सणंकुमारं नमंसामि ॥७४॥
सच्चवयणेण सलिलं कंतारगयस्स जस्स खंधारे ।
दिव्वं पाउब्भूयं जिणसासणभत्तिराएण ॥७५॥
जेण तया पज्जोओ [15]उव्वट्टेऊण समरमज्झम्मि ।
घेत्तुं बला निला[16]डम्मि अंकिओ मोरपित्तेणं ॥७६॥
जो सो रायरिसीणं अपच्छिमो भारहम्मि वासम्मि ।
[17]पव्वइओ तं धीरं सुविहियमोद्दा[18]यणं वंदे ॥७७॥

१.-३. १७. **पव्वइयं** खं. २ । २. **०भोए** खं. १ । ४. **चउसट्ठि०** खं. २ । ५. **वोसिरइ** खं. २ । ६. **छड्डेउं नरवसहो** खं. २ । ७. **०सन्निहाणं** खं. १ । ८. **०रसगुणट्ठाणेसु** खं. २ । ९. **अत्थिकुच्छीणं** खं. २ । १०. **खासं सासं च जरं** खं. २ । ११. **सो** खं. २ । १२. **सक्केणं भत्तिनिब्भरमणेण** खं. २ । १३. **दिव्वाहि पुप्फविट्ठीहिं** खं. २ । १४. **वरिस०** खं. २ । १५. **ओहट्ठे०** खं. २ । १६. **निडालं** खं. २ । १८. **०मुद्दा०** खं. २ ।

गामसहस्सा[१]इं मुणी जो चइ[२]य अणोवमं तवं कासी ।
सोवीररायवस[३]भं सुविहियमो[४]द्दायणं वंदे ॥७८॥
ससिसगलधवलवेसं चंदाभाए पडिबोहियमईयं ।
इरियावहपडि[५]वन्नं दढ[६]धीमोद्दायणं वंदे ॥७९॥
जं पञ्च वि रायाणो उवट्ठिया[७] भत्तिचोइयमईया ।
वंदंति त[८]ओभासम्मि पव्वए तं नमंसामि ॥८०॥
जस्स मरणम्मि देवा परिकुविया रोरु[९]ए सिलावासं ।
[१०]मुंचंति परमघोरं तं [११]जइमोद्दायणं वंदे ॥८१॥
जो सो इसिसंघाणं कन्हो व दसारमंडलचमूणं ।
कासी तवमुक्कट्ठं तं [१२]सरि(रिसि)मोद्दायणं वंदे ॥८२॥
असुर सुर पन्नगिंदा जं तं पडिमागयं नमंसंति ।
[१३]उज्जेंतसेलसिहरे तं सिरसा सारणं वंदे ॥८३॥
बारस य भिक्खुपडिमा जेणणुचिन्ना महाणुभावेणं ।
वाससयाणि य मो[१४]णं अट्ठच्छट्ठाणि जो कासी ॥८४॥
तं खवियपे[१५]मदोसं वंदे जरमरणसोगमुत्तिन्नं ।
अउलसु[१६]यसागरगयं ने[१७]व्वाणमणुत्तरं पत्तं ॥८५॥
[१८]सोरियपुरम्मि जायं [१९]नंदिकरं रोहिणीए देवीए ।
कुम्मारए सुधीरं निक्खंतं तं नमंसामि ॥८६॥
जेण कयं सामण्णं वा[२०]ससयमणू[२१]णगं ज[२२]उवरेणं ।
देविंदवंदमहियं बलदेवमिसिं नमंसामि ॥८७॥
सत्त य सत्तमियाओ अट्ठट्ठमियाओ नव य नवमीओ ।
दस दसमिया[२३]ओ व वसे बलदेवमिसिं नमंसामि ॥८८॥

---

१. **०स्साणि** खं. २ । २. **पयहित्ता** खं. १ । ३. **०वसहं** खं. २ । ४. **०मुद्दा०** खं. २ । ५. **०पडिपुन्नं** खं. १ । ६. **सुविहिय०** खं. १ । ७. **उवागया** खं. १ । ८. **तवो०** खं. २ । ९. **रोरुवे** खं. २ । १०. **मुच्चंति** खं. २ । ११. **रिसिवरमु०** खं. २ । १२. **जइवरमु०** खं. २ । १३. **उर्जिजत०** खं. २ । १४. **मूणं** खं. १ । १५. **०पेस०** खं. २ । १६. **०सुह०** खं. २ । १७. **निव्वाण०** खं. २ । १८. **रिट्ठपुरम्मि य जायं** खं. २ । १९. **णंदि०** खं. २ । २०. **वरिस०** खं. २ । २१ **०मणूणयं** खं. २ । २२. **जदुवरेण** खं. २ । २३ **दसमियाए** खं. २ ।

[१]सट्ठी मासा [२]सट्ठी पक्खा चत्तारि चाउमासीओ ।
जेणं[३]णसिएण [४]खविया बलदेवमिसिं नमंसामि ॥८९॥
जं सीहरूवधारी रक्खइ देवो वणे विहरमाणं[५] ।
[६]पडिणीए [७]सासंतो बलदेवमिसिं नमंसामि ॥९०॥
जस्स तया वणचरओ भिक्खं दाऊण धीरपुरिसस्स ।
सह दियलोगं [८]तु गओ बलदेवमिसिं नमंसामि ॥९१॥
दस सागरोवमाइं जस्स ट्ठिई बंभलोयकप्पम्मि ।
तं आगमेसिभ[९]द्दं बलदेवमिसिं नमंसामि ॥९२॥
जो हलहराणुचिन्नं अणुत्तरं वीरियं समासज्ज ।
पव्व[१०]इओ तं धीरं सेलगपुत्तं नमंसा[११]मि ॥९३॥
जो य परक्कमइ तवं छिन्नं [१२]लूहं च देहमगणिंतो ।
सिद्धं विहुयरयमलं सेलगपुत्तं सिवं वंदे ॥९४॥
वंदामि सुनंदाए नंदिकरं पुत्तमा[१३]इरायस्स ।
इक्खागरायवसहं बाहुबलिं सुंदरीजेट्ठं ॥१५॥
जेण भरहो य नरवइ जुद्धम्मि पराजिओ भुयबलेणं ।
भरहाहि(इ)रेगविरियं बाहुबलिमिसिं नमंसामि ॥९६॥
सो[१४]ऊणं य पव्वइयं बाहुबलिं[१५] भाउयं भरहराया ।
निज्झाइ चक्कवट्टी बहुदेवसहस्सपरिवारो ॥९७॥
बाहुबली वि य भरहं दिट्ठीमुट्ठी पराजिणित्ताणं ।
निक्खंतो एस [१६]खवेमि सव्वं कम्मं अहं तवसा ॥९८॥
बाहुबली वि य महरिसी संवच्छरमणसिओ [१७]पडिमाए ।
वल्लि[१८]लयाहि पिणद्धो[१९] अहिकिन्नो वामलूरेहिं ॥९९॥

१.२. **सट्ठि** खं. २ । ३. **जेण नमियण०** खं. २ । ४. **खंता** सं. २ । ५. **०माणे** खं. २ । ६. **पड०** खं. २ । ७. **तासिंतो** खं. २ । ८. **०लोयं च** खं. २ । ९. **०सुभद्दं** खं. २ । १०. **पव्वइयं** खं. २ । ११. **सिवं वंदे** खं. २ । १२. **लुगं** खं. २ । १३. **०माय०** खं. २ । १४. **सोऊणं प०** सं. २ । १५. **०बली** खं. १ । १६. **खमे** खं. २ । १७. **पणिवयाए** खं. २ । १८. **वेल्ललयाहिं** खं. २ । १९. **वि णिद्धो** खं. २ ।

[1]तणवल्लीहिं लयाहि य वेढिज्जंतो वि जो न[2]वि क्कंपे ।
वोसट्ठचत्तदेहं बाहुबलिमिसिं नमंसामि ॥१००॥
तं जायमव[3]ज्झाए त[4]क्खसिलाविसयसंधिपव्वइयं ।
वंदे बाहुबलिमिसिं ने[5]व्वुयमट्ठावए चेव ॥१०१॥
जो चइऊण विमाणं सयंपभा[6]–अग्गिरायभवणम्मि ।
जाओ जाइविसिट्ठो जच्चतवियकंचणसवन्नो[7] ॥१०२॥
जो कत्तियाय देवीए पसूओ सरवणम्मि उज्जाणे ।
तं अग्गिरायदइयं खंदकुमारं नमंसामि ॥१०३॥
जो छंदिओ महप्पा रज्जे रट्ठे य[8] नाडयविहीहिं ।
[9]नेच्छइ विणीयविणओ खंदकुमारं नमंसामि ॥१०४॥
अणुमाणेऊण सयं अम्मापियरं[10] व बंधवजणं च ।
[11]पव्वइओ तं धीरं खंदकुमारं नमंसामि ॥१०५॥
मणिकणगरयणचित्तं जस्स पिया पंडरं सयसलागं ।
विहरंतस्स उ च्छत्तं धरावए तं नमंसामि ॥१०६॥
छट्ठेण जेण छट्ठं बहूणि वासाणि भाविओ अप्पा ।
अणुबद्धमणिक्खित्तं खंदकुमारं नमंसामि ॥१०७॥
[12]पाओणगम्मि नयरे जेण उ अहियासिया उवसग्गा ।
[13]कित्तिं जसं च पत्तो खंदकुमारं नमंसामि ॥१०८॥
जो खत्तिएण सत्तीए आहओ गोयरं गवेसंतो ।
[14]रोहीडगम्मि [15]नगरे खंदकुमारं नमंसामि ॥१०९॥
जेण कयं सादिव्वं रन्नो पिउणो य छत्तधारस्स ।
पियजीवियं च दिन्नं तस्स विसाहस्स पावस्स ॥११०॥

---

१. **तणु०** खं. २ । २. **णिविक्कंपो** खं. २ । ३. **०मओ०** खं. २ । ४. **अट्ठावयपव्वयम्मि पव्व०** खं. १ । ५. **निव्वुय अ०** खं. २ । ६. **सयंपभे** खं. २ । ७. **०सवण्णो** खं. २ । ८. **रट्ठेण नाडग०** खं. २ । ९. **निच्छइ** खं. २ । १०. **०पियरो य** खं. २ । ११. **जो समणो पव्वइओ** खं. २ । १२. **पाओगगम्हि** खं. २ । १३. **कित्ती** खं. १ । १४. **रोहीडय०** खं. २ । १५. **नयरे** खं. २ ।

जेण पिया [1]तारिसओ अग्गी अग्गिसरिसेण[2] रोसेणं ।
खत्तियवहं करेंतो अणुसट्ठो तं नमंसामि ॥१११॥
वंदे खंदकुमारं अमोहसत्तीए जेण सत्तीए ।
जेण उदिन्ना संता[3] विविहा विसढा उ उवसग्गा ॥११२॥
[4]अणुमाणेउं भगवं रायाणो खत्तिए पुहइपाले ।
जेणागओ पडिगओ खंदकुमारं नमंसामि ॥११३॥
जो संतिस्स अरहओ सोऊण य सासणं जिणवरस्स ।
[5]निक्खंतो तं धीरं [6]विण्हुं वंदामि अणगारं ॥११४॥
[7]सट्ठिं वाससहस्साइं जेण[8] य च्छट्ठेण भाविओ अप्पा ।
संखित्त-विउलतेयं [9]विण्हुं वंदामि अणगारं ॥११५॥
जो [10]साहुसंघकज्जे [11]णगरे हत्थिणपुरे महापउमं ।
रायाणं मंडलियं तिविक्कमं [12]जोयइ महप्पा ॥११६॥
[13]विउरुविऊण पाओ [14]निक्खित्तो जेण मेरुसिहरम्मि ।
वाहाहिं य आगासं अप्फुन्नं तं नमंसामि ॥११७॥
वंदामि [15]रायपुत्तं विण्हुं तवतेय[16]रूवसंपन्नं ।
जेण य [17]उद्धविमाणं [18]विहडियं पायसीसेण ॥११८॥
तेलोक्कं [19]संखुभियं विक्कममाणम्मि धीरपुरिसम्मि ।
रुद्धा य जोइसगणा [20]विण्हुं वंदामि अणगारं ॥११९॥
जो [21]यच्छी दायंतो कमसो देविंद-दाणविं[22]दाणं ।
भय[23]मेयबलं जणंतो उवसंतो तं नमंसामि ॥१२०॥
जेण पउमस्स रन्नो वसुहा स[24]सलिलसकाणणवणंता ।
तिहि विक्कमेहि हरिया विण्हू(ण्हुं) वंदामि अणगारं ॥१२१॥

---

१. **तारसिणा** खं. २ । २. **अग्गिसेण** खं. २ । ३. **सत्ता** खं. २ । ४. **०णेउ महप्पा** खं. २ । ५. **पव्वइओ उ महप्पा** खं. २ । ६. **विन्हुं** खं. २ । ७. **सट्ठी** खं. १ । ८. **जस्स च्छ०** खं. २ । ९. **विन्हुं** खं. २ । १०. **संघसाहु०** खं. २ । ११. **णयरे** खं. २ । १२. **मग्गइ** खं. २ । १३. **विगुरु०** खं. २ । १४. **निक्खंतो** खं. १ । १५. **रायउत्तं** खं. २ । १६. **०सत्तसंजुत्तं** खं. २ । १७. **उड्ढ०** खं. २ । १८. **विहोडियं** खं. २ । १९. **संखुहियं** खं. २ । २०. **विन्हुं** खं. २ । २१. **इड्ढि दाएंतो** खं. २ । २२. **वेंदाणं** खं. २ । २३. **०मइबलं** खं । २४. **वसुहास्सनिलस्स का०** खं. २।

एसो तेविक्कमो [१]पायं मेरुस्स मत्थए ठविओ ।
संघस्स रक्खणट्ठा देही[२] रज्जे तिविक्कामो ॥१२२॥
मासं पाओवगओ आलोइय [३]निंदिऊण दुच्चरियं ।
सव्वट्ठसिद्धिनिलयं विण्हू(ण्हुं) वंदामि अणगारं ॥१२३॥
छट्ठं च अणिक्खित्तं आयंबलभोयणा वि भत्तट्ठा ।
छम्मासा जेण कयं तं सिरसा सुव्वयं वंदे ॥१२४॥[४]
धणकगणगरयणपउरो जेण उ संसार[५]वसहिभीएण ।
मुक्को कुडुंबवासो तं सिरसा सुव्वयं वंदे ॥१२५॥
अहुणोववन्नमेत्तो जो सो ईसाणरायमभिभवइ ।
तेएण य लेसाए तं सिरसा सुव्वयं वंदे ॥१२६॥
जेण कयं सामन्नं छम्मासा जा(झा)णमब्भुवगएणं ।
ईसाणकप्पनिलयं तं सिरसा सुव्वयं वंदे ॥१२७॥[६]
जेण कयं सामन्नं छम्मासा झाणसंजमरएणं ।
[तं][७]मुणिमुयारकित्तिं गोभद्दमिसिं[८] नमंसामि ॥१२८॥
जो [९]जोव्वणे उराले भगवंतो बोहिओ कुबेरेणं[१०] ।
तं [११]मुणिमुयारकित्तिं गोभद्दमिसिं नमंसामि ॥१२९॥
आरंभाउ नियत्तं जं तं धीरो[१२] ठवेइ[१३] धम्मम्मि ।
सव्व[१४]जगहियसुहम्मि सिवमउलगयं सिवं वंदे ॥१३०॥
असमागमे मुणीणं[१५] तु [१६]संभवो जस्स इ[१७]सिकुमारस्स ।
केसिं कुमारसमणं [१८]विमाणवरवासियं वंदे ॥१३१॥
जेण [१९]पएसी राया बहूहिं हेऊहिं[२०] जो समणुसट्ठो ।
ओयारियो य [२१]मग्गे केसिं वंदामि अणगारं ॥१३२॥

---

१. **राय** खं. २ । २. **देहे रायं तिविक्कमं** खं. २ । ३. **निंदियाण** खं. २ । ४. **गाथेयं** न खं. १ । ५. **०वास०** खं. २ । ६. **गाथेयं न** खं. १ । ७. **मुणिं उ०** खं. १ । ८. **०मिसी** खं. २ । ९. **जोयणे उयारे** खं. २ । १०. **०रेण** खं. २ । ११. **मुणिकुमार०** खं. २ । १२. **वीरो** खं. २ । १३. **ह्ववेइ** खंय १ । १४. **०जगहियसुहाए** खं. २ । १५. **मुणिवरस्स** खं. २ । १६. **संभमो** खं. २ । १७. **रिसि०** खं. २ । १८. **सुविहियगहियं नमंसामि** खं. २ । १९. **पसेणयराया** खं. २ । २०. **०हिं स०** खं. २ । २१. **मग्गं** खं. २ ।

जेण[१] य सेयवियाए राया[२] अणुसासिओ पडिनिविट्ठो[३] ।
केसिं कुमारसमणं विमाणवरसंठियं[४] वंदे ॥१३३॥

देहापयम्मि नयरे पडिमं ठासीय चेइए रोद्दे[५] ।
तं वज्जलाढपुत्तं अणुत्तरपरक्कमं[६] वंदे ॥१३४॥

पडिमाए पे(पा)रियाए[७] जो सो दिन्नो[८] वरम्मि देवेणं ।
धम्मधुरधारगं तं वरदत्तमिसिं नमंसामि ॥१३५॥

आगासमिवाखोभं[९] मेरुमिव अकंपियं ठियं धम्मे ।
थिरथिमियममरमहियं[१०] तेयलिपुत्तं नमंसामि ॥१३६॥

जं तं सायमसायं सुहं व दुक्खं व नो विकंपेइ ।
वासीचंदणकप्पं तेयलिपुत्तं[११] नमंसामि ॥१३७॥

वारत्तपुरे जायं सोहम्मवडिंसगा[१२] चइत्ताणं ।
उत्तमकुलसंभूयं[१३] वारत्तमिसिं नमंसामि ॥१३८॥

जो गोट्ठीमज्झगओ[१४] उज्जाणगओ वि चिंतए धम्मं ।
अवगसियरागदोसं वारत्तमिसिं नमंसामि ॥१३९॥

जो सो(सा)गरो व थिमिओ नेच्छीय[१५] पभासिउं[१६] पभासेंतो ।
सिद्धं विहुयरयमलं वारत्तमिसिं नमंसामि ॥१४०॥

जस्स कुले परियाओ विज्जा[१७] पवरा तहेव रूवं[१८] च ।
वारत्तगं[१९] मुणिवरं भावियभावं नमंसामि ॥१४१॥

पासस्स अंतिए विहरिऊण वासाइं तिन्नि[२०] तेयस्सी ।
पप्फोडियकलिकलुसं वारत्तमिसिं[२१] नमंसामि ॥१४२॥

---

१. **जो सो से०** खं. २ । २. **रायाणं संसइं** खं. २। ३. **०निविट्ठं** खं. २ । ४. **वइमइमहियं** खं. १ । ५. **रोड्डे** खं. २ । ६. **पारिएणं** खं. २ । ७. **दिन्ने** खं. २ । ८. **सागरमिव गंभीरं** खं. २ । ९. **थिरममिय०** खं. २। १०. **विरागदोसं** खं. २ । ११. **०वडेंसगा** खं. २ । १२. **०प्पसूयं** खं. २ । १३. **गोट्ठिम०** खं. २ । १४. **निच्छीय** खं. २ । १५. **पहासियं** खं. २ । १६. **पहूसंतो** खं. २। १७. **विज्जावगत०** खं. २ । १८. **रूवमवि** खं. २ । १९. **वारत्तं मुणिवीरं** खं. २ । २०. **तिण्णि** खं. १ । २१. **वारुत्त०** खं. १ ।

जं तं अम्मापियरो भावियभावं मुणिं न याणंति[१] ।
खंतं दंतं गुत्तं[२] कुम्मापुत्तं नमंसामि ॥१४३॥
संघट्टिओ व[३] कुम्मो जो काए इंदियाणि नियमेत्ता[४] ।
झाणवरमब्भुवगओ[५] कुम्मापुत्तं नमंसामि ॥१४४॥
जो चारणेहिं पुट्ठेण विदेहे जिणवरेण वागरिओ ।
भरहे कुम्मापुत्तो रायगिहे केवली अत्थि ॥१४५॥
जं तं चारणसमणा विणीयविणया पयाहिणं करिय ।
पुच्छंति पंजलिउडा कुम्मापुत्तं नमंसामि ॥१४६॥
जो मंदिरं विमाणं[६] ति पुच्छिओ चारणेण[७] आइक्खे ।
वागरमाणमवितहं कुम्मापुत्तं नमंसामि ॥१४७॥
जं तं गोवेसधरं अणुकंपंतो सुरो समणुजाओ[८] ।
गोसूइयपरमत्थं[९] गोसन्नं[१०] तं इम वंदे ॥१४८॥
जो सो जल्लमलधरो एक्को[११] विविहगुणभाविओ विहरे ।
तं वेसियायणमिसिं हुयग्गिजालोवमं वंदे ॥१४९॥
गोसालेण[१२] वि खलिओ जो सो आसीविसोवमो रुट्ठो ।
तवतेयं णिसिरिसुं[१३] तं वंदे वेसियायणमिसिं[१४] ॥१५०॥
जो कारणेण कुविओ पासित्ता नियमसुट्ठियं वीरं[१५] ।
पडिसाहरेइ[१६] तेयं तं वंदे वेसियायणमिसिं ॥१५१॥
जो कुलले कलहंतो पासित्ता आमिसम्मि संबुद्धो ।
झाणवरमब्भुवगओ[१७] तं वंदे निन्नकुलपुत्तं ॥१५२॥
जो चक्कवट्टिभोए अणुत्तरे भाविओ[१८] न रंज्झित्था ।
पव्वइओ[१९] तं धीरं वंदे हं निन्नकुलपुत्तं ॥१५३॥

---

१. **जाणंति** खं. २ । २. **मुत्तं** खं. २ । ३. **व्व** खं. २ । ४. **०मेत्ता** खं. २ । ५. **०वगयं** खं. २ । ६. **विमाणं पु०** खं. २ । ७. **चारणाणमाइ०** खं. २ । ८. **०पत्तो** खं. २ । ९. **मट्ठं** खं. २ । १०. **गोभद्दमिसिं नमंसामि** खं. २ । ११. **एगो** खं. २ । १२. **०लेणं कलिओ** खं. २ । १३. **णिसिरिसिं** खं. २ । १४. **०यायमिसिं** खं. २ । १५. **धीरं** खं. २ । १६. **०साहरिऊण तवं** खं. २ । १७. **०वगयं** खं. २ । १८. **वयसमाणरज्जस्स** खं. २ । १९. **पव्वइयं** खं. २ ।

जो कुलले[१]अयगस्समन्नियस्स कुललस्स पासिय विलोवं ।
रोए सीलचरित्तं तं वंदे निन्नकुलपुत्तं ॥१५४॥
सययं[२] भवोहमहणस्स [३]जस्स निन्नकुलपुत्तसीहस्स ।
नामग्गहणे[४] वि कए भविया आणंदिया हुंति[५] ॥१५५॥
निन्नकुलपुत्तसीहस्स [६]तस्स निन्नकुलपवरपुरिसस्स ।
पणमामि पययमणसो भावेण विसुद्धभावस्स ॥१५६॥
जस्स चमरो सरीरे देविंदो उभयओ वि रुब्भित्था ।
परिनेव्वुयस्स अरहओ वणसंडे तं नमंसामि ॥१५७॥
सव्विड्ढीय सपरिसो जस्स सरीरमहिमं सुराहिवई ।
काऊण पंजलियडो थुणइ य[८] महुराहिं वग्गूहिं ॥१५८॥
सुंदरदियलोयचुयं सुंदरकुलवंस सुंदरचरित्तं ।
सुंदरगइनिब्भेलण[९] धुयरय सिरसा नमंसामि ॥१५९॥
अवगसियराग अवगसियदोस अवगसियसव्वसंसार[१०] !।
अवगसियसव्वबंधण पवरसिवगइंगय ! नमो ते ॥१६०॥
जो [१२]गेवेज्जाहि चुओ आयाओ जउकुले विसालम्मि ।
तं देवइं[१३]प्पसूयं गयसुकुमालं नमंसामि ॥१६१॥
जं तं अम्मापियरो जिणवरवसभं[१४]स्स रिट्ठनेमिस्स ।
दासीय सीसभिक्खं गयसुकुमालं नमंसामि ॥१६२॥
सव्वंगसुंदरंगो गयसुकुमालो पिं[१५]ओ बहु[१६]जणस्स ।
जो समणो पव्वइओ चइऊण धणं अपरिमेज्जं ॥१६३॥
हलहर-चक्कहरकणिट्ठएण तह लट्ठएण होऊणं[१७] ।
समणत्तणमणुचिं[१८]न्नं गयसुकुमालेण धीरेण ॥१६४॥
पुरिसच्छेरयभूयं गयसुकुमालस्स जोव्वणं आसि ।

---

१. **कुललपहगरसम०** खं. २ । २. **सयय भटवाहम०** खं. २ । ३. **तस्स** खं. २ । ४. **०णम्मि कए** खं. २ । ५. **होंति** खं. २ । ६. **नास्ति** खं. २ । ७. **अंजलिउडो** खं. २। ८. **सुमहुरा०** खं. २ । ९. **०लय०** खं. २ । १०. **संसारं** खं. २। ११. **गइं गय** खं. २। १२. **गेवि०** खं. २ । १३. **देवईप०** खं. २ । १४. **०वसहस्स** खं. २ । १५. **पि** खं. १। १६. **पहु०** खं. २। १७. **होऊण** खं. २ । १८. **०चिण्णं** खं. २ ।

जं सुणिय चंदलेहा उम्मत्ता रायवरकन्ना ॥१६५॥
गयहत्थसंट्ठियभुयस्स[१] तस्स गयवरसुविक्कमगइस्स ।
गयमयगंधस्स[२] नमो गयसुकुमालस्स धीरस्स ॥१६६॥
जेणज्जियं विसालं[३] नाणमणंतं च[४] दंसणचरित्तं ।
भोगा य भावचत्ता गयसुकुमालं[५] नमंसामि ॥१६७॥
जो सो सुसाणमज्झे पडिमं ठासीय[६] चेइए रोद्दे ।
वोसट्ठचत्तदेहं गयसुकुमालं नमंसामि ॥१६८॥
तं दुरणुचरचरित्तं वंदे पवरगुणमणुचरं[७] धीरं ।
संसारवसहिमुक्कं गयसुकुमालं गुणसमिद्धं ॥१६९॥
जो चोद्दसपुव्वधरो धम्मावाएण अपरिवडिएणं[८] ।
जाओ कुले विसाले चइउं सव्वट्ठसिद्धाओ ॥१७०॥
तं चोद्दसपुव्वधरं वंदे देवगणवंदियं सिरसा ।
गुणसयसहस्समहियं[९] पज्जुन्नमिसिं नमंसामि ॥१७१॥
पुरवरकवाडवच्छं सव्वक्खरसन्निवायविहिकुसलं ।
वरवइरवलियमज्झं पज्जुन्नमिसिं नमंसामि ॥१७२॥
वेमाणिओ व्व[१०] देवो जो सो विज्जाहिं कीलइ महप्पा[११] ।
विज्जाचरणगुणड्ढं पज्जुन्नमिसिं नमंसामि ॥१७३॥
गगणतलगमणदच्छं[१२] विज्जाहररायमाणनिम्महणं ।
सिरिवच्छंकियवच्छं जउकुलतिलयं नमंसामि ॥१७४॥
पवरजयरायमाणो भग्गो जेणं[१३] उ दसारसीहेणं ।
विज्जाहररायदमिया पज्जुन्नमिसिं नमंसामि ॥१७५॥
मणिकणगरयणचित्तेण आगओ[१४] जोइणा विमाणेणं ।
वासंतो कुसुमोहं अरिट्ठनेमीजिणसगासं[१५] ॥१७६॥
जो[१६] वंदिऊण सिरसा अरिट्ठनेमिं[१७] दसारवरसीहं[१८] ।

---

१. **०संट्ठियस्स तस्स** खं. १ । २. **०गंधिस्स** खं. २ । ३. **चरित्तं** खं. २ । ४. **दसारसीहेण** खं. २ । ५. **०मालेण धीरेण** खं. २ । ६. **गसीय** खं. २ । ७. **पवरमणु०** खं. २ । ८. **०वाडीए** खं. २ । ९. **कलियं** खं. २ । १०. **य** खं. १ । ११. **गयाण** खं. २। १२. **गयणयल०** खं. २ । १३. **जेणं** द० खं. २ । १४. **जो सया आगओ वि०** खं. २ । १५. **०सगासे** खं. २ । १६. **जं** खं. १ । १७. **०नेमी** खं. १ । १८. **०सीहो** खं. १ ।

पव्वइओ[1] तं धीरं पज्जुन्नमिसिं नमंसामि ॥१७७॥
संवरकुलस्स महणं कुसमयमहणं कसायनिम्महणं ।
सिद्धं विहुयरयमलं पज्जुन्नमिसिं नमंसामि ॥१७८॥
बारवईकायलयं पुत्तं कन्हस्स वासुदेवस्स ।
जंबवईपियपुत्तं संबकुमारं नमंसामि ॥१७९॥
[2]सहिरन्नियाय दइयं जुगबाहुं जुद्ध[3]दूमइ सूरं (?)।
वंदे दसारसीहं पुत्तं सिरिवच्छधारिस्स ॥१८०॥
बारवईकायलयस्स[4] [5]तस्स अब्भहिय[6]पेच्छणिज्जस्स ।
अज्जवि सुव्वंति जए संबकुमारस्स [7]ललियाइं ॥१८१॥
उवहारे उवणीए जो तइया ति[8]णसाएण [9]कुद्धेणं(?) ।
ठाणाओ वि न [10]चइओ चालेउं तं नमंसामि ॥१८२॥
जो सो पाओवगओ तत्तकवल्लोव[11]मे सिलावट्टे ।
सो[12]हग्गं रूवं जो[13]व्वणं च [14]ललियं व चइऊण ॥१८३॥
धाराहओ वि[15]व गिरी [16]पस्संदइ सव्वओ गलंतेहिं ।
[17]फोडेहिं धीरपुरिसो न य खुब्भइ निच्छओ[18]वगओ ॥१८४॥
मोत्तूण बंधवजणं भोगसमिद्धिं[19] च विसयसोक्खं च ।
वेरग्गं संपत्तो संबकुमारं नमंसामि ॥१८५॥
उत्तमज्झाणोवगओ सव्वे वि परीसहे मलेऊणं ।
जो सिद्धिं संपत्तो संबकुमारं नमंसामि ॥१८६॥
जं तंतियं वरत्तं पाओव[20]गयं तु खायइ सियाली ।
मोगल्लसेलसिहरे कालासियवेसियं वंदे ॥१८७॥
जो न चलिओ महप्पा मणेण वायाए कायजोगेणं ।
तं वोसट्ठसरीरं कालासियवेसियं वंदे ॥१८८॥

---

१. **पव्वइयं** खं. २ । २. **सुहि०** खं. २ । ३. **जुद्धम्मई** खं. १ । ४. **०लगस्स** खं. २ । ५. न खं. २ । ६. **०हियं चेव पे०** खं. २ । ७. **चरियाइं** खं. १ । ८. **तिणिसएण** खं. २ । ९. **सुद्धेणं** खं. १ । १०. **चलिओ** खं. २ । ११. **रमे** खं. २ । १२. **सोक्खं** खं २ । १३. **जोव्वणगव्वं** खं. २ । १४. **लीलं च च०** खं. २ । १५. **वव** खं. २ । १६. **पासंदइ** खं. २ । १७. **होडेहिं** खं. २ । १८. **०व्व गओ** खं. २ । १९. **०समिद्धं** खं. २ । २०. **०वगमं** खं.२ ।

अन्नाय एव देहे नियय[1]सरीरम्मि खज्जमाणम्मि ।
धीरपुरिसस्स [2]आसी अविवन्नो [3]जस्स मुहवन्नो ॥१८९॥
धम्मे दढसन्ना[4]हो जो निच्चं मंदरो इव[5] अकंपो ।
इहलोयनिप्पिवासो परलोयगवेसओ धीरो[6] ॥१९०॥
[7]जो सोमेण जमेण य वेसमणेण वरुणेण य महप्पा ।
मोगल्लसेलसिहरे नमंसिओ तं नमंसामि ॥१९१॥
सोरिय विमार्ण[8]वासं माणुस्सं पिय [9]दुगंछियं जम्मं ।
जो समणो पव्वइओ हरिएसमिसिं नमंसामि ॥१९२॥
सुहुयमिव जायतेयं म[10]हब्बलं विविहनियमचिंचइयं ।
[11]सोयागपुत्तमणहं हरिएसमिसिं नमंसामि ॥१९३॥
जो दिस्स किण्हसप्पं घोरविसं निव्विसं व पडिबुद्धो ।
पढमवए पव्व[12]इओ हरिएसमिसिं नमंसामि ॥१९४॥
जो कोसलरायसुयं उदग्गजोव्वणगुणे[13] न इच्छीयं ।
देवाणुभावलद्धं हरिएसमिसिं नमंसामि ॥१९५॥
जो गंतुं[14] तिंदुवणे जक्खसहस्समहिओ दढधिईओ[15] ।
संक्खित्तविउलतेयं हरिएसमिसिं नमंसामि ॥१९६॥
चइऊण जो महप्पा भज्जा सिंगारचारुवेसाओ ।
पढमवए पव्वइओ सुकोसलमिसिं नमंसामि ॥१९७॥
छट्ठेण जेण[16] छट्ठं जोगो जावज्जीवं अहेसीय ।
तुं सुविहियं मुणिवरं सुकोसलमिसिं नमंसामि ॥१९८॥
रम्मम्मि चित्तकूडे जेण [17]उ आयावियं मुणिवरेणं ।
अभिभूय सूरलेसं सुकोसलमिसिं नमंसामि ॥१९९॥

---

१. **नियगसरीरेवि** खं. २ । २. **तहवि य** खं. २ । ३. **चेव** खं. २ । ४. **०सन्नाओ** खं. २ । ५. **विव** खं. २ । ६. **साहू** खं. २ । ७. **सोहम्मेण जम्मेण** खं. २ । ८. **०वासी** खं. २ । ९. **दुगुं०** खं. २ । १०. **महप्पलं** खं. २ । ११. **सेयाग०** खं. २ । १२. **पव्वइयं** खं. २। १३. **०गुणेहिं निच्छीयं** खं. २ । १४. **गंतु तिंदुग०** खं. २ । १५. **धीईओ** खं. २। १६. **जस्स** खं. २ । १७. **जेणं आ०** खं. २ ।

जं तं भवंतरगया[1] मारेसी अप्पणि[2]ज्जिया माया ।
अन्नेसिं पुत्ताणं कएण वग्घी [3]अयाणंती ॥२००॥
माऊए पुत्तमंसं खइयं भाऊहिं भाउणो मंसं ।
संसारम्मि अणंते हा ! जह अन्ना[4]णदोसेण ॥२०१॥
ससिसगलधवललेसं पसत्थवरनाण[5]दंसणचरितं ।
सव्वट्ठसिद्धिनिलयं सुकोसलमिसिं नमंसामि ॥२०२॥
जस्स कुलेण बलेण य विण्णाणेण विणएण रूवेणं ।
बीओ नत्थि सरिसओ सजणवयाए विसालाए ॥२०३॥
बत्तीसं भत्तसयं उव[6]वासे जो [7]अपाणयं कासी ।
उज्जाणगं नियंतं तं सिरसा लंचगं वंदे ॥२०४॥
अज्जवि य विसालाए तस्स मुणि[8]दस्स नामधेएणं ।
लंचगसिवोव[9]गासो जत्थ महरिसी ट्ठिओ [10]पडिमं ॥२०५॥
अभिभूय उवसग्गे जो पडिमं एगराइयं [11]कासी ।
तं लंचगं मुणिवरं अमरनरनमंसियं वंदे ॥२०६॥
जो सो सुसाणमज्झे पडिमं ट्ठासीय चेइए रोद्दे ।
वोसट्ठचत्तदेहं तं सिरसा लंचगं वंदे ॥२०७॥
देवट्ठिईअणुभागं जो जाणइ फासियाए पडिमाए ।
तं लंचगं मुणिवरं अमरनरनमंसियं वंदे ॥२०८॥
गु[11]णधरगुणजसमालं वितिमिरनाण[12]क्ककुंडलं अजियं ।
लंचगमहमणगारं अमरनरनमंसियं वंदे ॥२०९॥
चइऊण बंभलोगा रायगिहे पुरवरे समुप्पन्नं ।
तेयबलसत्तजुत्तं मेय[13]ज्जरिसिं[14] नमंसामि ॥२१०॥
जो सो [15]धम्ममुयारं सद्दहिऊण तिविहेण निक्खंतो ।
कासी तवमुक्कट्ठं मेयज्जमि[16]सिं नमंसामि ॥२११॥

---

१. **०गयं** खं. २ । २. **अप्पणे०** खं. २ । ३. **य जा०** खं. २ । ४. **अप्पाण** खं. २। ५. **०झाण संजमच०** खं. २ । ६. **उववासं** खं. २ । ७. **य पाणगं** खं २। ८. **०सिंगपगासो** खं. २ । ९. **ठाणे** खं. २ । १०. **ठाइ** खं. २ । ११. **गुणजसधरवणमालं** खं. २ । १२. **०नाणेण कुं०** खं. २ । १३. **मियज्ज०** खं. १ । १४. **०मिसिं** खं. २। १५. **जो धम्ममिणमु०** खं. २ । १६. **०रिसिं** खं. १ ।

रायगिहम्मि पुरवरे समुयाणट्ठा कयाइ हिंडंतो ।
पत्तो य तस्स भवणं सुवन्नकारस्स पावस्स ॥२१२॥
जो कुंचगावराहे पाणिदया कुंचगं तु नाइक्खे ।
जीवियमणुपेहंतं मेयज्जमिसिं नमंसामि ॥२१३॥
निंप्फोडियाणि[१] दोन्नि वि सीसावेढेण जस्स अच्छीणि ।
न य संजमाओ[२] चलिओ मेयज्जो[३] मंदरगिरि व्व ॥२१४॥
तम्मि य बहुउवसग्गे[४] सम्मं अहियासियं[५] मुणिवरेण ।
अह उपन्नमणंतं नाणवरं उत्तमं तस्स ॥२१५॥
निंप्फिडिऊण[६] पुरवरा पाओवगओ तओ पुरिससीहो ।
आहारं च सरीरं कम्मं सेसं च धुणिऊण ॥२१६॥
उम्मुक्को जो भगवं जम्मणमरणपरियट्टणस(भ)याणं ।
भवसयसहस्समहणं मेयज्जमिसिं नमंसामि ॥२१७॥
संखदलविमलधवलं[७] जो पवरं सिद्धिपट्टणं पत्तो ।
सिद्धं विहुयरयमलं मेयज्जमिसिं नमंसामि ॥२१८॥
जेण य गब्भगएणं माऊए डोहलं जणंतेणं ।
सव्वेसिं जीवाणं नव मासे दाइओ अभओ ॥२१९॥[१५]
जीवाण अभयदाणेण जस्स अभओ त्ति ठावियं नामं ।
तं पुरिसपुंडरीयं पयाणुसारी(रिं) नमंसामि ॥२२०॥
जो पवरवद्धमाणस्स सासणे अणुचरे तवमुयारं ।
सेणियकुलकायलयं अभयं वंदामि अणगारं ॥२२१॥
तं दुरणुचरचरित्तं वंदे पवरगुणसत्तसंजुत्तं ।
अभयं विणयनयनिहिं अमरनरनमंसियं निच्चं ॥२२२॥
जो पव्वइओ संतो कासी अणियट्टितं तवोकम्मं ।
सव्वट्ठसिद्धिनिलयं अभयं वंदामि अणगारं ॥२२३॥
जस्स घरम्मि अइगया असि-तोमर-मंडलग्ग-धणुहत्था ।
खुद्दा निवा(रा)णुकंपा चोरा ओसोवणिं करिया ॥२२४॥

---

१. **निप्फेडि०** खं. २ । २. **धम्माओ** खं. २ । ३. **मेयज्जमिसिं नमंसामि** खं. २ । ४. **०सग्गं** खं. २ । ५. **०सिए** खं. २ । ६. **निक्खिमिऊण** खं. २ । ७. **०सरिसं** खं. २ । ८. **पञ्चमं गइं पत्तो** खं. २ । ९. २१९-२२८ पर्यन्तं खं. १ प्रतौ नोपलब्धं, पत्रमेकं नास्ति ।

जस्स य कणगव(ध?)णं पि य दिप्पयमणिहारभूसियंगीहिं ।
महिलाहि भवणरयणं जंबुं वंदामि अणगारं ॥२२५॥
हारद्धहारभूसण-मणिमुत्तसिलप्पवालवइराइं ।
भरियाइं सिरिघराइं तस्स पुरिसपुंडरीयस्स ॥२२६॥
जो मायावित्तेहिं अट्ठहिं कन्नाहिं नं निवेसंति ।
एगदिवसेण भगवं ताउ चइऊण पव्वइओ ॥२२७॥
जस्स य अभिनिक्खमणे चोरा संवेगमागया खिप्पं ।
तेण सहा(ह) पव्वईया जंबुं वंदामि अणगारं ॥२२८॥
सीहत्ता निक्खंतो सीहत्ता चेव विहरई भयवं ।
जंबू पवरगुणधरो वरनाणचरित्तसंपन्नो[१] ॥२२९॥
नरयगइगमण जम्मणमरण[२] पुणब्भवण सागरोप्पाओ ।
जंबू भवोहमहणो तिन्नो संसारकंतारं ॥२३०॥
चरिमसरीरधराणं चरिमं चरणगुणपारगं सिरसा ।
वंदामि जंबुनामं पवरसिवसुहगइं पत्तं ॥२३१॥
[३]रिद्धित्थिमियसमिद्धाए जो तइया पुरवरीए रम्माए ।
बारवईए महप्पा अणुचरइ तवं परमघोरं ॥२३२॥
कन्हेण वासुदेवेण पुच्छिओ जो जिणेण वागरिओ ।
घोरतवस्सी तइया ढंढं वंदामि अणगारं ॥२३३॥
नवि उस्सुओ न दीणो न दुम्मणो न [४]वहिओ न य [५]विसन्नो ।
ढंढो अलाभपरीसहेण भगवं दढधिईओ ॥२३४॥
खण्डतखमं जियलोभं वंदे तवतेयरूवसपन्नं[६] ।
विउलतवयेयरासिं ढंढं वंदामि अणगारं ॥२३५॥
कन्हेण वासुदेवेण जो तइया रायमग्गमोइन्नो[७] ।
अभिवंदिओ निसुढिएण वंदे हं[८] ढंढमणगारं ॥२३६॥
सत्त य धणकोडीओ वरवइरमए य हत्थिणो सत्त ।
जो विहुणिय पव्वइओ तं वंदे गंगदत्तमिसिं ॥२३७॥

---

१. **०संपन्नं** खं. १ । २. **मरणब्भव चेव सा०** खं. २ । ३. **रिद्धि त्थमिय०** खं. २ । ४. **विहिओ** खं. १ । ५. **निसन्नो** खं. १ । ६. **०संपण्णं** खं. २ । ७. **०मोइन्ना** खं. १ । ८. **तं वंदे ढंढ०** खं. २ ।

वरवेरुलिए य मणी-मुत्ताओ कंचणं पवालं च ।
जो विहुणिय पव्वइओ तं वंदे गंगदत्तमिसिं ॥२३८॥
सीयाओ संदणाणि य रहा य गड्डी य जाण-जुगा(ग्गा)इं ।
जो विहुणिय पव्वइओ तं वंदे गंगदत्तमिसिं ॥२३९॥
तवविणयसमियगुत्तं वंदे पवरगुणमणुचरं सिरसा ।
दढसमयमरहियमइं नमंसिओ गंगदत्तमिसिं ॥२४०॥[1]
जो चइऊण सरीरं आयाओ सुरवरो महासुक्के ।
तं आगमेसिभद्दं नमंसिमो[2] गंगदत्तमिसिं ॥२४१॥
पुव्वभवनेहबद्धो जस्स पिया देइ नागकन्नाओ ।
सव्वंगसुंदरीओ ताओ चइऊण पव्वइओ ॥२४२॥
थणभर[3]नमियंगीओ ताओ पडिपुन्नचंदवयणाओ ।
सो पवरनागदत्तो भुंजइ वरनागकन्नाओ ॥२४३॥
ताहि समं वरपुरिसो विलसित्ता कइवयाइं वासाइं ।
जिणवयणसुइसक[4]न्नो इच्छइ समणत्तणं काउं ॥२४४॥
नेऊरपागडाओ ताओ वरकडगमंडियभुयाओ ।
चइऊण भोगविरओ जिणवयणमणुत्तरं कासी ॥२४५॥
भगवं पि नागदत्तो उदारतवसंजमं अणुचरित्ता ।
चइऊण तं सरीरं देवो वेमाणिओ जाओ ॥२४६॥
जो तिहि पएहिं धम्मं समणेण समाहिणा समणुसट्ठो ।
अभिरोइयसामण्णं चिलायपुत्तं नमंसामि ॥२४७॥
उवसम-विवेय-संवर आसज्ज समाहिणा समणुसट्ठो ।
तं पवरधिइयविजयं चिलायपुत्तं नमंसामि ॥२४८॥
काएहिं जस्स निक्कड्डियाणि नयणाणि चत्तदेहस्स ।
खज्जंताइं पि न [5]निवारियाइं तमहं नमंसामि ॥२४९॥
पाए हुस(स्स)रियाओ सोणियधाराहिं नयणमुक्काहिं ।
मेरुव्व ठिओ अचलो चिलाइपुत्तं नमंसामि ॥२५०॥

---

१. २३८-३९-४० गाथात्रयं खं. १ नास्ति । २. **०सिओ** खं. २ । ३. **थणहर०** खं. १ ।
४. **०सयन्नो** खं. २ । ५. **न वारि०** खं. २ ।

पाएहिं[१] ओसरियाओ सोणियगंधेण जस्स कीडीओ ।
खायंति [२]उत्तिमंगं चिलायपुत्तं नमंसामि ॥२५१॥
[३]कसाइपाउओविव ससीसओ समुहओ [४]सवाहाओ ।
कीडाहि धीरपुरिसो[५] न खोभिओ निच्छओवगओ ॥२५२॥
चालणगं पिव भगवं समंतओ सो कओ य[६] कीडाहिं ।
घोरं सरीरवियणं तहा[७]वि अहियासए धीरो ॥२५३॥
सोमो य पढमराया जमो य वरुणो [८]य तह कुबेरो य ।
सव्वे वि लोगपाला निमंतए[९] जं परमतुट्ठो(?ट्ठा) ॥२५४॥
अङ्काइज्जेहिं राइंदिएहिं पत्तं चिलायपुत्तेण ।
देविंदामरभवणं पाओवगमं [१०]करिंतेण ॥२५५॥
जो सो सुसाणमज्झे पडिमं ठासीय चेइए रोद्दे ।
वोसट्ठचत्तदेहं कुरुदत्तमिसिं नमंसामि ॥२५६॥
जो दज्झे[११]माणओ विय तइया अग्गीय तत्थ जालाहिं ।
न य कासी य पओसं कुरुदत्तमिसिं नमंसामि ॥२५७॥
हत्थिणपुरकायलयं धीरं सव्वसुयसारपारगयं ।
कुरुदत्तं अणगारं अणुत्तरपरे[१२]क्कमं वंदे ॥२५८॥
तं चोद्दसपुव्वधरं वंदे देवगणवंदियं सिरसा ।
सव्वट्ठसिद्धिनिलयं कुरुदत्तमिसिं नमंसामि ॥२५९॥
जो[१३] चोइओ महप्पा देवेणं पुव्वसंगईएणं ।
पव्वइओ[१४] तं धीरं आणंदमिसिं नमंसामि ॥२६०॥
कुंभग्गसो सुवण्णं मणिमोत्तिसिलप्पवालवइराइं ।
जो चइउं पव्वइओ आणंदमिसिं नमंसामि ॥२६१॥
जस्स य अ[स]द्दहन्ती भोगविहिं[१५] चेल्लणा गया भवणं ।

---

१. **पाए दुस्सरि०** खं. २ । २. **मत्थुलिंगं** खं. २ । ३. **कासाइपावावो०** खं. २ । ४. **सवाहूओ०** खं. १ । ५. **०पुरिसे** ख. २ ॥ ६. **खोहिओ** खं. २ । ७. **उ** खं. । ८. **तह विय** खं. २ । ८. **०णो तहा** खं. २ । ९. **निमंतओ** खं. २ । १०. **करें०** खं. २ । ११. **०माणो** खं. २ । १२. **०परि०** २ । १३. **जो चइउं पव्वइओ** खं. १ । १४. **पव्वइयं** खं. २ । १५. **०विही** खं. २ ।

सह सेणिएण रन्ना आणंदमिसिं नमंसामि ॥२६२॥
रूवगुणसालिणीओ जस्स य लायं[1]न्नजोव्वणं[2]वईओ ।
भज्जा अणुपव्वइया आणंदमिसिं नमंसामि ॥२६३॥
अभिभूय सूरलेसं उड्ढभुओ जो तं[3]वं अणुचरित्ता ।
सव्वट्ठसिद्धिनिलयं आणंदमिसिं नमंसामि ॥२६४॥
आगासगमा[4] विज्जा जेणुद्धरिया महाणुभावेणं ।
वंदामि अज्जवइरं अपच्छिमो जो सुत्त[5](त)धराणं ॥२६५॥
माहेसं[6]रीओ सेसापुरियं नीया हुया[7]सणगिहाओ ।
गगणं[8]तलमइवइत्ता वइरेण महाणुभावेण ॥२६६॥
जो गुज्झगेहि बालो निमंतिओ भोयणेण वासंते ।
णेच्छइ विणीयविणओ तमज्जवइरं नमंसामि ॥२६७॥[9]
जो कन्नाए धणेण य निमंतिओ जोव्वणम्मि गहवइणा ।
नि(ने)च्छय(इ) विणीयविणओ तं वइररिसिं नमंसामि ॥२६८॥
नाणाविणयपहाणं सत्तरससएहिं जो सुविहियाणं ।
पाओवगओ महप्पा तमज्जवइरं नमंसामि ॥२६९॥
दसपुव्वधरं धीरं वंदे पवरबलविरियसंपन्नं ।
सव्वट्ठसिद्धिनिलयं तमहं वइरं नमंसामि ॥२७०॥
एव(वं)मयमयणदोसरहिया मए सुरसहस्समहिया ।
रिसओ परिसाए दिन्तु बोहिं मज्झ य सिद्धिवसहिं उवविहिंतु(?) ॥२७१॥

रिषिमण्डलस्तवः समाप्तः ॥

---

१. **लावन्न०** खं. २ । २. **०मईओ** खं. २ । ३. **तवो** खं. २ । ४. **०गाम** खं. २ । ५. **सुयहराणं** खं. १ । ६. **०स्सरीओ** खं. २ । ७. **हुआ०** खं. २ । ८. **गयणयल०** खं. २ । ९. २६७ तः पाठः खं. १ न; पत्राभावात् ।

रत्नाकरसूरिविरचितम्
रैवतकाद्रिमण्डननेमिजिन स्तोत्रम्

-पं. अमृत पटेल

रत्नाकरपञ्चविंशतिका (आत्मगर्हागर्भित साधारणजिनस्तवन)ना कर्ता रत्नाकरसूरिजी[१] (वि. १४ सदी पूर्वार्ध प्रायः) विरचित प्रस्तुत रैवतकादि मण्डननेमिजिनस्तोत्र' (पद्य १४) लालभाई दलपतभाईभारतीय विद्यामन्दिर-अमदावादना हस्तप्रतसंग्रहमां भेटसूचि क्रमांक ४७९५० मां २७ ११ से.मी. परिमाण धरावती अेक पत्रनी प्रत उपर प्रायः वि. १५मी सदीमां लखायेल छे.

चन्द्रगच्छीय नन्नसूरिनी १०मी पाटे देवप्रभसूरिना शिष्य रत्नाकरसूरिअे रत्नाकरपञ्चविंशतिका - रत्नाकरपच्चीसी, तथा उत्तराध्ययनसूत्र उपर नेमिचन्द्रसूरि-कृत लघुवृत्तिनी [२]ताडपत्रीय प्रतिनी पुस्तक प्रशस्तिनी[३] रचना करी छे अने लखी पण छे. वि. १३०८मां धर्कटवंशनां कटुक नामना श्रेष्ठिअे रत्नाकरसूरिना उपदेशथी आ प्रत लखावी हती. तेनी प्रशस्तिमां पूर्वार्धमां ग्रन्थ लखावनार कटुक श्रेष्ठिनुं वंशवर्णन छे. तेमां २७ पद्यो छे. उत्तरार्धमां पोतानो गुरुपर्वक्रम छे तेमां १३ पद्यो छे.

र.प., पु.प्र. अने प्रस्तुत स्तोत्र - आ त्रणेय कृतिओ तेओश्रीनी रचना छे. तेमां समानकर्तृत्वसूचक 'रत्नाकर' शब्द प्रयुक्त छे. उपरांत रचनाशैली, शब्दालङ्कारोमां पण भावमाधुर्यनुं सातत्य, कोमलकान्तपदावली अने हृदयङ्गम भावोर्मि-आ बाबतो त्रणेय कृतिमां स्पष्ट रीते एककर्तृत्व सिद्ध करे छे. तेनां केटलांक उदाहरणो जोईअे -

(१) पुप्रनां पूर्वार्धमां - मुक्तामणिर्भास्वरकान्तिदीप्रः (पद्य २जुं), शशाङ्क-काशसङ्काश-यशःपूरितभूतलः (पद्य ७मुं), बालोऽपि हि महामतिः (पद्य १८मुं). पुप्र उत्तरार्धमां - समजनि जनिताशेषदोषप्रमोषः (यमक) सकलकलिमलक्षालने वारिपूरः (पद्य २जुं, रूपक कालिकोपमानसहिता दसनावलिरेव न तपःश्री (पद्य ५मुं परिसंख्या) जिग्ये देवगुरुर्येन निरवद्यया विद्यया (पद्य ५मुं व्यतिरेक, अनुप्रास) ।

(२) 'रत्नाकरपञ्चविंशतिका'मां – श्रेयःश्रियां मङ्गलकेलिसद्म नरेन्द्र-देवेन्द्रनतांघ्रिपद्म (१लुं अनुप्रास), निजाशयं सानुशयस्तवाग्रे (पद्य ३जुं अनुप्रास) किं बाललीलाकलितो न बालः, पित्रोः पुरो जल्पति निर्विकल्पः (पद्य ३जुं दृष्टान्त) – लोलेक्षणावक्त्रनिरीक्षणेन, यो मानसे रागलवो विलग्नः। न शुद्धसिद्धान्तपयोधिमध्ये, धौतोऽप्यगात् तारक ! कारणं किम् (पद्य १४मुं. विशेषोक्ति, ललितपदावली) दारा न कारा नरकस्य चित्ते । व्यचिन्ति नित्यं मयकाऽधमेन (पद्य २०मुं.) तथा किंवा मुधाहं बहुधा सुधाभुक्-पूज्य ! त्वदग्रे चरितं स्वकीयम् (पद्य २४मुं) — आम झमकदार श्लेष-अनुप्रास वगेरे शब्दालङ्कारो होवा छतां पण रचनामां सुकुमारता अने भावभङ्गिमा जरा पण खण्डित थती नथी. जेथी रचनामां स्वाभाविकता सहज सिद्ध थाय छे. उपरांत भावमाधुर्य पण रचनामाधुर्यथी निखरी ऊठे छे. प्रस्तुत स्तोत्रमां पण उपर्युक्त बन्ने कृतिओ जेवी एकसमान रचनाकुशलता नजरे पडे छे. —

– स्फारस्फुरत्क्रमनखद्युतयोऽतिदीप्राः (पद्य १लुं वृत्त्यनुप्रास)

– नेमे ! तव स्तवनमुज्ज्वलकेवलात्म-रूपस्य गीष्पतिसमोऽपि न कर्तुमीशः (पद्य २जुं व्यतिरेक), लोलां करोति तव भक्तिरियं विलोलाम् (पद्य २जुं श्लेषोत्थविरोध), निःशेषसंवरपदेषु तनूभवत्सु । रोचिर्जलैः सुविमलैः सरसीयतेऽसौ (पद्य ३जुं. श्लेष+रूपक), येनोच्छलच्छविपदं विपदन्तकारि – आ ४थुं पद्य अद्भुत अेटला माटे छे यमक अने अभङ्गश्लेष जे भाव-सुकुमारता माटे 'यम' समान बनी शके तेम छे, छतां कुशल कविकर्मने कारणे भावपक्ष जरा पण खण्डित थयो नथी. परंतु भावपोषक बनेल छे. उपरांत बीजा पाद – 'नेमे ! विभो ! शुभवतो भवतोऽङ्घ्रियुग्मम्' — मां क्रियागुप्त छे. नेमे शब्दमां नम् धातुनुं परोक्षाभूतकाळनुं कर्मणिप्रयोगनुं तृतीयपुरुष अेकवचननुं रूप छे. तथा 'नेमि शब्दनुं सम्बोधन विभक्तिनुं पण अेकवचननुं रूप छे – आम अहीं कारक अने क्रियानो श्लेष थयो छे. तथा उत्तरार्धमां – पायादसौ नरमणी रमणीयभावम्, केषामहो सुमनसां मनसां न लोके ॥ – आवी क्रियागुप्त/श्लेष/यमक वगेरे जेवा बुद्धिगम्य अलङ्कारोनो हृदयङ्गम समावेश विरलकृतिओमां ज जोवा मळे छे. शब्दलालित्यने कारणे प्रस्तुत स्तोत्र गेय पण बन्युं छे. प्रस्तुत स्तोत्रमां केटलाक शब्दप्रयोगो ध्यानाकर्षक छे. त्रिदशवन्दितपादपद्म, तो

रत्नाकरपञ्चविंशतिकामां 'नरेन्द्रदेवेन्द्रनतांघ्रिपद्म, नेमिनाथ माटे 'नेमिन्', राजीमती माटे गोत्रनाम 'भोजपुत्री'[५] अने सरसीयते(नामधातु) अने 'पेपीयमान (यङ्लुन्त) प्रयोगो स्तोत्रने उदात्त बनावे छे.

''रत्नाकरसूरिविरचितम्
रैवताद्रिमण्डननेमिजिनस्तोत्रम्''

श्रीरैवताद्रिकमलापृथुकण्ठपीठ-
शृङ्गारहारतुलनां कलयन्ति यस्य ।
स्फारस्फुरत्क्रमनखद्युतयोऽतिदीप्राः,
श्रीनेमिनं जिनवरं तमहं स्तवीमि ॥१॥

नेमे ! तव स्तवनमुज्ज्वलकेवलात्म-
रूपस्य गीष्पतिसमोऽपि न कर्तुमीशः ।
अन्तस्तथाऽपि परितोऽपि हि विस्फुरन्तीं
लोलां करोति तव भक्तिरियं विलोलाम् ॥२॥

काले कलौ किल निदाघतुलां दधाने
निःशेषसंवरपदेषु तनूभवत्सु ।
रोचिर्जलैः सुविमलैः सरसीयतेऽसौ
देव ! त्वदंघ्रियुगलीयुगलं(?) भवतापभेदि ॥३॥

येनोच्छदच्छविपदं विपदन्तकारि
नेमे ! विभो ! शुभवतो भवतोंऽघ्रियुग्मम् ।
यायादसौ नरमणी रमणीयभावं
केषामहो सुमनसां मनसां न लोके ? ॥४॥

रागादिविद्रुतमना नहि ना त्वदीयं
द्रष्टुं स्वरूपममलं तदलम्भविष्णुः ।
किं नीलिकागलितलोचनशक्तिरुच्चैः
पश्येत् कदापि विलसत् शशलक्ष्मबिम्बम् ॥५॥

दृष्टेऽधुना तव पदाम्बुरुहे पलायाञ्-
चक्रेऽन्तरङ्गरिपुचक्रमिदं हृदो मे ।

विश्वं विवस्वति विभासयति प्रभाभिः
को वान्धकारनिकरस्य किलावकाशः ॥६॥
कल्पद्रुमः प्रकुरुतां किमभीष्टजातं
कस्याऽस्तु वा सुरमणी रमणीय एषः ।
कृत्वाऽथ किं भवतु कामदुघाऽप्यमोघा
सङ्कल्पिताऽधिकफलं समवाप्य नेमिम् ॥७॥
मायानिशि स्फुरितमोहमहाप्रमीला-
सम्मीलितं नयनमान्तरमेतदीश ! ।
विश्वत्रयप्रकटनाय पटीयसीभिर्-
गोभिः प्रबोधकलितं यदि तावकीभिः ॥८॥
भालं विशालमिदमिन्दुकलाऽभिरामं
किं वर्ण्यते त्रिदशवन्दितपादपद्म् ! ।
नैवं व्ययं लवणिमाऽमृतमेति यत्र
पेपीयमानमपि नेत्रचकोरवृन्दैः ॥९॥
काऽपि प्रभो ! तव विशाल विलोचनानां
छायाकपोलयुगलं कमनीयकान्ति ।
कर्णद्वयं त्रिजगतीकमलाविलास-
दोलाकलं बत न कस्य मुदं दधाति ॥१०॥
कलिमलकलुषानां प्राणिनां पावनी ते
विमलरुचिजलौघैः पूरिता मूर्त्तिरेषा ।
अमरसरिदिवाऽलं पापजम्बालजालं
विदलयति विशालं देव ! मे सर्वकालम् ॥११॥
त्रिदशपुरपुरन्ध्रीरूपरेखाविषाद-
क्षमलवणिमलीलां भोजपुत्रीं विहाय ।
कलितविरतिभावः पावयामास नेमे !
निजचरणसरोजैस्तं भवान् रैवताद्रिम् ॥१२॥
सिर(त)करकराकारा कीर्त्तिर्न मे हृदयप्रिया
सकललललनालीलालापा विलापसमा मताः ।

विपुलवसुधाराज्यं प्राज्यं विपाककटु स्फुटं
तदलमिमकैर्नेमे ! भूयस्त्वमेव विभुर्मम ॥१३॥
(हरिणी)

इति विलसदनङ्गसङ्गभङ्ग-प्रगुण-समाधिधरो मयाऽभिनूतः ।
स्फुरदतिशयचारुरत्न'**रत्ना-कर**'गुरुरेष शिवङ्करोऽस्तु नेमिः ॥१४॥
(पुष्पिताग्रा)

पादटीप

१. बीजा अेक 'रत्नाकरगच्छप्रवर्त्तक' रत्नाकरसूरि पण छे. तेओ वि. १३७१ मां समराशाहे शत्रुंजयतीर्थ उपर मूळनायक श्री आदिनाथ भगवाननी प्रतिष्ठा करावी त्यारे हता. - जैनसाहित्यनो संक्षिप्त इतिहास (मो. द. देसाई, ई.स. १९३३ मुंबइ) पृ. ४२६-४२८.

२. प्रस्तुत ताडपत्र 'शान्तिनाथताडपत्रसंग्रह-खम्भातमां क्रमांक ८३मां छे, आगम प्रभाकर मुनि पुण्यविजयजी - खम्भात शां. ता. जैनग्रन्थभण्डार, गायकवाड ओरिएन्टल सिरीझ १३५, बरोडा-सन् १९३१.

३. वर्षे सिद्धिवियत्-कृशानु-विधुभिः सङ्ख्याकृते श्रेयसे (१२मुं पद्य पूर्वार्ध) निवेशयामास गुरोः पदे च रत्नाकरं सूरिवरं गुरुं यः ॥१३॥

४. प्रशस्तिरियं कृता लिखिता च श्रीरत्नाकरसूरिभिः ॥ जैन पुस्तक प्रशस्ति सङ्ग्रहः भा. १, पृ. ३०-३० (सिंघी जैन ग्रन्थमाला-१८) सम्पादक : जिनविजयमुनि- मुंबई, इ.वि. १९९८).

५. 'नेमिन् : अभिधानचिन्तामणि, परिशिष्ट : जिनदेव (खरतर) प्रणीत 'हेमनाममाला-शिलोञ्छ).

६. सरखावो 'अहं च भोगरातिस्स०' दशवैकालिकसूत्र २.१० गाथानी चूर्णि : सम्पादक : आगमप्रभाकर मुनिश्री पुण्यविजय म.सा., प्राकृतग्रन्थ परिषद्-१७, अमदावाद, सं. १९७३.

अष्टोत्तरशतसंवर शब्दार्थगर्भितं स्वोपज्ञाऽवचूर्णि चर्चितम्
श्री अभिनन्दनजिनस्तोत्रम्

-पं. अमृत पटेल

शब्दालङ्कारमण्डित चित्रकाव्योनी पाण्डित्यपूर्ण परम्पराने गीर्वाणगिरानुं अेक आगवुं घरेणुं कही शकाय. तेमां जोके भावनी भव्यता ओछी अने भाषानी भभक चमक-दमक वधारे. छतां भाषानी चमत्कृति पण कर्ताना पाण्डित्यने वधु उजागर करे.

हृद्य अने आस्वाद्य भावभङ्गिमाथी परिपूर्ण काव्यो, महाकाव्यो, स्तुति स्तोत्रो वगेरेमां जैन मनीषिओनुं जेम योगदान छे. तेम शब्दालङ्कार अलङ्कृत काव्यो-खास करीने स्तुति-स्तोत्रोमां पण योगदान[१] छे. तेमां सोमविमलसूरिनुं प्रस्तुत अभिनन्दन जिनस्तोत्र पण ध्यान खेंचे छे. आ स्तोत्र तेमज षोडशोत्तर 'कमल' शब्द गर्भित चतुर्विंशति जिनस्तुति[२] (पद्य २९) ने कारणे 'शतार्थी' बिरुद प्राप्त सोमविमलसूरिजीअे कुष्ठनिवारण कर्युं हतुं, अेवा उल्लेखने प्रस्तुत स्तोत्रना २७मां पद्यनो आधार सांपडे छे.

- विविध छन्दोबद्ध २८ पद्यनां प्रस्तुत अभिनन्दनजिनस्तोत्रमां संवरशब्दनो १०८ वार प्रयोग थयो छे. तेमां चित्रकाव्य माटे सर्जकोने प्राप्त थयेल स्वतन्त्रतानो उपयोग करीने आचार्यश्रीअे - र/ल, ब/व, ड/ल, श/स ने एक मानीने तथा अनुस्वार होवा छता शब्दने निरनुस्वार मानीने, संवर शब्दमांथी संवर-शंवल, शंबर-शंबल-सबल-संवल शबर-शबल-सवर-सबल, वर-बल वगेरे शब्दो सिद्ध कर्या छे.[३] अनेकार्थ कोषो अने बे[४] अर्थो वच्चेना सम्बन्धोना सन्दर्भथी नवा अर्थोनो आविष्कार कर्यो छे.
- श्री लालभाई दलपतभाई भारतीयविद्यामन्दिर - अमदावादना हस्तप्रत विभागमां भेटसूचि ६१६१ नम्बरनी त्रिपाठयुक्त प्रतनां ६/१-७/६ नम्बरनां पत्रोमां कर्ताअे पोते ज सचंबिलनगरमां वि.सं. १६५६नां मृगशीर्ष मासमां प्रस्तुत कृति लखी छे.

प्रस्तुत कृतिनी स्वोपज्ञ अवचूर्णिमां कर्ताअे स्वयं ज संवर शब्दना

विविध अर्थो समजाव्या छे, छतां वधु स्पष्टता माटे जरूर जणाई त्यां [ ] चतुष्कोण कोष्टकमां अर्थो के समासो आपवामां आव्या छे. अनेकार्थकृतिना सम्पादननो मारो प्रथम प्रयास छे. अेटले क्षतिनी सम्भावना सहज छे. अेटले सुज्ञ-सहृदयी जनो मारी सम्भवित क्षति माटे क्षमा करे, अने क्षतिनिर्देश करे.

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

वाणीं वाणीमियं दद्यात्, स्वरद्वन्द्वविपर्ययाम् ।
तामेव बिभ्रती ज्ञालीं प्रपूर्वां तां च कुर्वती ॥१॥

[वीणां बिभ्रती, प्रज्ञालीं कुर्वती]

अवचूर्णिः

शारदां शारदां नत्वा, शारदेन्दुसमप्रभाम् ।
अभिनन्दनजिनस्तोत्राऽवचूर्णिं रचयाम्यहम् ॥२॥

नाऽत्र स्तोत्रे भेदो, विशेषः सकलशास्त्रकुशलनरैः ।
डलयो र्ब-वयोः र-लयो र्नाऽनुस्वारोपि भङ्गाय ॥३॥

यत उक्तं वाग्भट्टालङ्कारे–

''यमक-श्लेष-चित्रेषु, ब-वयो र्ड-लयोर्भित्(र्न भित्) ।
नाऽनुस्वार-विसर्गौ तु चित्रभङ्गाय सम्मतौ ॥४॥ (वाग्भरु० १/२०)

वृद्धपञ्चवर्गपरिहारनाममालायां च यथा –

''भेदो न च विज्ञेयश्-चित्र-श्लेषोपयोगिकाव्येषु ।
ब-वयोर्ड-लयो -र्ङ-ञयो र्न-णयो र्य-जयोः क्वचित् श-ययोः'' ॥५॥

तथा च पूर्वकविः-

वयमपि, परेऽपि कवयस्तथापि महदन्तरं परिज्ञेयम् ।
र-लयोरैक्यं यद्यपि, तत् किं कलभायते करभः ॥६॥

तथाहमपि ।

अथ केचिद् विषमपदपर्यायाः, लिख्यते(न्ते) मया मुग्धजनबोधाय ।
वाणी० इयं 'वाणी' भारती, मे मम, वाणीं वचनपद्धतिं दद्यात् । किं

कुर्वती ? – बिभ्रती, कां ? – तां वाणीं, परं किम्भूताम् ? – 'स्वरद्वन्द्वविपर्ययाम्' स्वरयुगविपर्यीतां वीणामित्यर्थः । पुनः किं कुर्वती ? – कुर्वतीं, कां प्रति ? – ज्ञालीं बुधालीम्, किंभूतां ? – प्रपूर्वां, तां ज्ञालीं कुर्वती, प्रज्ञालीमित्यर्थः ॥१॥

श्रहेमविमलसंवरममलं संवरधरं गुरुं नत्वा ।
श्रीसंवरनृपसंवर-नेत्री संवरभवं स्तौमि ॥२॥

अवचूर्णिः- श्रीहेम० अहं स्तौमि, कं प्रति ? – 'श्रीसंवरनृपः' संवराभिधानः श्रीअभिनन्दजिनदेवजनकः, तस्य 'संवरनेत्री' [कमलनयना सौन्दर्यवती इत्यर्थः] प्रिया, तस्याः संवरभवं [तनूद्भवं] पुत्रं, श्रीअभिनन्दनमित्यर्थः । किं कृत्वा ? – नत्वा, कं ? – 'गुरुम्, किंभूतम् ? – श्रीहेमविमलसंवरम् – श्रिया हेमवत् सुवर्णवत् विमलम् संवरं शरीरं यस्य सः, श्रीहेमविमलसूरे र्निजगुरोरभिधानमपि सूचितम्, पुनः किंभूतम् ? – संवरधरम् आश्रवत्यागरूपम् – अमलसंवरधरमित्यर्थः ॥२॥

वरसंवरज-समानं मुखसंवरजं विभाति यस्य विभोः ।
पदसंवरजं तस्य च करोम्यहं हृदयसंवरजे ॥३॥

अव० वरसं० – यस्य विभोः मुखं संवरजं [=जलजं] मुखकमलम् [वि] भाति । किंभूतम् ? – वरं प्रधानं संवरजं, संवरं जलं, तस्माज्जातं संवरजं कमलम्, तत्समानं सदृशमित्यर्थः, पदकमलं तस्य जिनस्य हृदयकमले करोमि-इत्यर्थः ॥३॥

संवरवाहनिनादं संवरनिधिसंवराभशुद्धतरम् ।
संवरजसकलवदनम्, गीतं संवरजनयनाभिः ॥४॥

संवरजजनित-संवरशायिक-संवरदवाहनैः सेव्यम् ।
संवरजपुत्रपुत्री-संवरभवमन्दिरापूज्यम् ॥५॥

असंवरवराकारं संवरधिजशुद्धगुणगणागारम् ।
संवरजबन्धुसदृशप्रतापमीशं वरं वन्दे ॥६॥ [त्रिभिर्विशेषकम्]

अव० – आर्यात्रयेण सम्बन्धः, ईशं स्वामिनं वरं प्रधानं वन्दे, किं भूतं ? – संवरवाहो जलदः, तद्वन्निनादो शब्दो यस्य, तम्० । संवरनिधिः [जलनिधिः] सागरस्तस्य संवरं जलं तदाभं तत्सदृशं शुद्धतरं निर्मलतरम् ।

''सायर सलिलं व सुद्धहियय [] इति वचनात् । संवरजश्चन्द्रः, तद्वत् कलया सहितं वदनं यस्य तं [स-कलेन्दुवदनं], कमलनयनाभिः कामिनीभिः गीतं स्तुतम् ॥४॥

संवरज० संवरजजनितः कमलभूर्ब्रह्मा,संवरशायी नारायणः, संवरदवाहनो जलदवाहनो महेशः, तैः सेव्यः, तम्० । संवरजपुत्र-पुत्री [कमल-पुत्र [ब्रह्मा-पुत्री]शारदा, संवरभवमन्दिरा कमलमन्दिरा लक्ष्मीः । तया [ताभ्यां] पूजितः तम् ॥५॥

असंवर० न विद्यते संवरं शरीरं यस्य सः असंवरः [अनङ्गः] कन्दर्पः, तद्वद् वरः प्रधान आकारो यस्य सः-असंवर-वराकारः, तम् । संवरधिः समुद्रः, ततो जातश्चन्द्रः, तद्वद् विमलगुणसमूहगृहम् । संवरजबन्धुः कमलबन्धुः सूर्यः, तत्सदृशः प्रतापो यस्य सः, संवरजबन्धुसमानप्रतापः तम् ॥६॥

संवरसमानगुणभृत्, कषायसंवरविताशने कृष्णः ।
कर्मकरिसंवराऽरिः संवरनयनो जिनो जीयात् ॥७॥

अव० शवरो हरः, तत्समानशुभत्वात् गुणधारकः । कषाय एव शंबरः [शंबरनामा दैत्यः] कषायशम्बरः, कषायशम्बरस्य विनाशः, तस्मिन् कषायसंवरविनाशने, कृष्णः नारायणो शबरो दैत्यभेदः । कर्म चासौ करि(री) कर्मकरी, तस्मिन् कर्मगजे शम्बरारिः मृगारिः सिंहः । संवरनयनो मृगनयनो जिनस्तीर्थाधिपो जीयात् ॥७॥

जय जिन ! संवरवारक ! भवसंवरराशिसंवरे प्राप्तः ।
संवरमदवरगन्धः संवरजनबोधिदो देवः ॥८॥

अव० जय हे जिन ! त्वं जय, हे शम्बरवारक ! मत्सरवारक !, त्वं किम्भूतः ? - प्राप्तः, कस्मिन् विषये ? - संसारसंवरराशिः [जलराशिः] समुद्रः, तस्य शवरे तटे [शबले], शंबरमदो मृगमदः, तत्समानवरो रुचिरो गन्धो यस्य सः, शम्बरजन[बोधिदः]म्लेच्छजनप्रतिबोधकः, देवः ॥८॥

संवरया रहितो दशशतसंवरजसंवरं प्राप्य ।
संवरजासनसंस्थो ध्यानमकार्षीत् श्रिये सोऽस्तु ॥९॥

अव० यः सः, शंवरया मृगया, आखेटकक्रिया, [तया]रहितः, दशशत संवरजः सहस्रकमलः [सहस्रदलकमलं इव इति] शत्रुञ्जयशंवरं [शत्रुञ्जयाख्यं] गिरिं प्राप्य लब्ध्वा, [संवरजासनसंस्थः] पद्मासनस्थो ध्यानं लयरूपं यः अकार्षीत्, स श्रियेऽस्तु ॥९॥

यो विस्संवररहितं तथैव संवरयुतं सुसाधूनाम् ।
मार्गं कथयति विससंवरैर्नुतः संवरस्त्वमसः ॥१०॥

यो विस्सं [विगतः 'स्' इति वर्णः यस्मात् तद्' विस्, इति] यः विगतः[त] सूच्यङ्कारहितः, भू(?)रहितव्यञ्जनो यस्मात्, तद्धि संवरं एतावता अम्बरं इति स्थितम्, यो जिनः अम्बररहितं वस्त्ररहितं जिनमार्गकल्पं, तथैव पूर्ववद् संवरसहितं वस्त्रसहितं स्थविरकल्परूपं मार्गं साधूनां कथयति प्रकाशयति, पुनः किंभूतो ? - नुतः स्तुतः, कैः ? विससंवरैः - विगतो गतः सवर्णो यस्मात् । [विसः, विसश्चासौ संवर इति] विस-संवरः, एतावता 'सं' अक्षररहितः वरः बलः इति तन्नामको दैत्यः, विनष्टः बलः यैः ते विस-संबलाः देवेन्द्राः तैः, किंविशिष्टः ? - 'असंवरः [अशरीरः], असः नसः [न विद्यते सं यत्र] असः - एतावता प्रधानः ॥१०॥

जय जिन ! संवरवैरिजि-दपूर्वसंवरविनाशकैर्विनतः ।
विसमोहसंवरारे ! विसमदसंवरमहासेनः ॥११॥

अव० जय० हे जिन त्वं जय, हे संवरवैरिजित् ! **पञ्चवर्गपरिहारनाम-मालायां** जिननामाधिकारे [अर्हन्नविषयो....संवरवैरिता...] । न पूर्वः अपूर्वः - न विद्यते पूर्वः प्रथमो वर्णो यत्र सः [अपूर्वः] संवरः एतावता [सं विनाकृतः] वरः इति लभ्यते, 'र-लयो र्ब-वयोरैक्यात् बर इति बलः, तन्नामा दैत्यः, तं अपूर्वसंवरं [बलदैत्यं] विनाशयन्ति इति - अपूर्वसंवरविनाशकाः तैः] बलविनाशकैः सुरनाथैर्विनतः । विगतः सः यस्मात् स विसः [विसं वरं पूर्ववत् बलं] विसेन बलेन युक्तः मोहः इति विसमोहः, विसमोहस्य मोहबलस्य [मोह]सैन्यस्य अरे ! [रिपो !] । पूर्ववत् - 'मद-बले काके' [] महासेनः महत्तमसिन्धुतरुः ? ॥११॥

संवरज-महासंवरज-सवरोऽद्भुत-मुखनिधानानि ।
यो दत्ते स जीयात् संवरभवचारुवरकण्ठः ॥१२॥

अव० संवर० पद्म-महापद्म-शङ्ख प्रमुखानि निधानानि यः प्रदत्ते, स श्री तीर्थाधिपो जीयात्, किंभूतः ? - संवरभवः - शङ्खः, तद्वच्चारुतरो वर्यः वरः कण्ठो यस्य सः ॥१२॥

रागोरुगसंवरनिधि-भवसंवरराशिसूमणे नाथ ! ।
जय संवररेहगमनः संवरशिरच(श्च)न्द्रवत् सुखदः ॥१३॥

अव० रागो० राग एव उरुगः रागोरुगः रागोरुगस्य संवरनिधिभवं [जलनिधिजातं] विषं, तत्र संवरराशि-सू-मणिर्देवमणिः [चिन्तामणिरित्यर्थः, तस्याब्धेर्जातत्वात्] तस्य सम्बोधने - हे रागोरुगसंवरनिधिभवसंवराशि-सू-मणे ! हे नाथ ! त्वं जय [किंभूतः त्वम् ?] - संवररेहो गजः, तद्वद् गमनं यस्य सः, [पुनः] 'संवरशिरस्थ' मृगशिरस्थचन्द्रवत् सुखदः, यतो ज्योतिष्केषु 'सोमेन सौम्य' इति [ ] वचनात् । इत्यार्याच्छन्दः ॥१३॥

असंवरान् नमस्कृत्य, मुक्त्वाऽसंवरमात्मनः ।
संवरधनतां प्राप्तो योऽसौ श्रीतीर्थपो जीयात् ॥१४॥ अनुष्टुप्

अव० - असंवरान् अदेहान् सिद्धान् नमस्कृत्य, चारित्रसमये 'सिद्धाणं नमो किच्चा' इति [ ] वचनात् । आगतम् असंवरम् आश्रवं मुक्त्वा, संवरधनतां मुनिवरतां प्राप्तः, योऽसौ श्रीतीर्थपो जीयात् ।

यः संवरकरोऽत्यन्तं संवरादिषु जन्तुषु ।
श्रीविलासं वरं कुर्यात्, सोललासं वरसंयुतम् ॥१५॥

अव० - यो जिनः अत्यन्त(न्तं)संवरकरः-शं सुखं वरं प्रधानं करोतीति स संवरकरः, शंबरादिषु रोझादिषु जन्तुषु, सः श्रीविलासं च [वरं] बलं कुर्यात्, सोल्लासं यथा स्यात् तथा बलसंयुतं पुष्टियुतम् ॥१५॥

त्वमेव संवरः स्वामिन्नसंवरिनृणां विभो !
त्वमेव संवरस्वामी, त्वमेव संवरप्रदः ॥१६॥

अव० - त्वमेव० त्वं एव निश्चितं शंबलं पाथेयं, हे स्वामिन् ! अशंबलवतां नृणां जनानाम्, विभो ! त्वमेव संवरस्वामी - मे मम शरीरस्वामी त्वमेव जीव इत्यर्थः । त्वमेव संवर [प्रदः - संवरं संयमं प्रददाति] त्वमेव गुरुः ॥

देहि मे त्वं जिनाधीश ! संवरं संवरं त्ववम् ।
अशोकसंवरं बिभ्रत् संवरत्रयमाश्रितः ॥१७॥

अव० – देहिमे० मे मम त्वं देहि हे जिनाधीश !, किं ? – संवरम् ।? [संयमम्] किंभूतं ? – संवरं ? – अवम् – न विद्यते व् [इति] व्यञ्जनो यत्र, तद् अवम्, एतावता सारं धनम्, किंभूतं ? – सारं प्रधानम् त्वं किं कुर्वन् ? – अशोकसंवरं बिभ्रत्, किंभूतं ? – अवं न [विद्यते] वः [यस्य सः] अवः तं अवं एतावता सालं वृक्षम्, तथैव [अवा संवरा ▯ सारा ▯ साला = वप्राः तेषां त्रयं] सालत्रयं आश्रितः ॥१७॥

त्वमश्च संवरो जीयात्, साधुतारकसन्ततेः ।
तथैव संवरः स्वामिन् ! मुक्तिकस्तूरिकाततेः ॥१८॥

असः संवरदो देवः संवरप्रतिबोधदः ।
संवरः शिवकान्तायाः वदने संवरः प्रभो ! ॥१९॥

अव – त्वं नस् अस्, [न विद्यते 'स्' यस्य सः] , 'च' पुनरर्थे, एतावता – । अम्बरः इति स्थितम् । अम्बरं सुगन्धद्रव्यविशेषः, कस्तूरिकाऽऽ-ह्लकारी (कारिणी), तथा अम्बरः(रं) आकाशः ॥१८॥

अव – असः० संवरदः किंभूतः ? असः नसः अल्पः, एतावता वरदः ईप्सितार्थदः, पुनः किंभूतः ? – संवरप्रतिबोधदः, तथैव [सं रहिते] वरे विटे प्रतिबोधदः, पुनः किंभूतः ? – संवरः कुङ्कुमः, कस्मिन् ? – वदने मुखे, कस्याः ? शिवकान्तायाः, पुनः किंभूतः ? – संवरः पतिः, कस्याः ? – शिवकान्तायाः, चतुर्षु विशेषणेषु च 'असः' इति योज्यम् ॥१९॥ इति अनुष्टुप् छन्दः, युग्मम् ।

दुःकर्मकंसरिपुमर्दनसंवरारि-र्मानाऽसमानगिरिभञ्जनसंवरारिः ।
जीयान्मदाम्बुरहरर्हन्(?), भव्याम्बुजप्रकरसंवर ! त्वम् ॥२०॥
(वसन्त ति०)

अव० – दुःकर्म० दुःकर्म एव कंसः, दुष्कर्मकंस एव रिपुः दुष्कर्मकंसरिपुः, दुष्कर्मकंसरिपुमर्दने संवरारिः, दुष्कर्मकंर्सरिपुमर्दनसंवरारिः, शबरनामा दैत्यः, तस्यारिः कृष्णः । मानाऽसमानगिरिभञ्जनशबरारिः पर्वतारिः

पुरन्दरः । त्वं जीयात्, मदाम्बुरुहे मदकमले संवरजारिः कमलरिपुश्चन्द्रः, भव्याम्बुजे [जप्रकरे]भव्यजनकमलविकाशने संवरतस्करः जलतस्करः सूर्यः ॥

श्रीसंवरेशकुलसंवरदाऽऽश्रये त्वम्, प्रोद्यत्प्रतापभरतिर्मलसंवरांशुः ।
जीयाज्जिनेश ! नतसंवरवाहवाह ! श्रीसंवरोद्भवमहाकरिसंवरेशः॥२१॥

अव०- श्रीसं० । श्रीसंवरभूपकुलसंवरदाश्रये-० घनाश्रये आकाशे त्वं संवरांशुः खरांशुः सूर्यः । नतसंवरवाहवाहः(वाह!) जलदवाहनः, पुरन्दरः । श्रीसंवरोद्भवः लक्ष्मीतनूद्भवः कन्दर्पः, [स एव महागजः] कन्दर्पे महागजे शंवरेशो मृगेशः ॥२१॥ [वसन्ततिलकाच्छन्दः]

विवाऽऽसंवरो धर्मवल्लीविताने, सुकासंवरः क्षान्तिनीरस्य नाथः ।
कुसं संवरापारनीरेशतीरो, जयासंवरद्वेषपूरेण मुक्तः ॥२२॥

श्रीसंवराङ्कजिन संवरतुल्यकायश्चञ्चत्प्रतापभरसंवरजाङ्कदेवः ।
तीर्थेशसंवरभवाङ्कमुखात् सुलब्धत्वत्सत्प्रभावगणसंवरभूधरार्च्यः ॥२३॥

अव०- विव् विगतो 'व्' इति व्यञ्जनो यस्मात् तत् विव् । चतुर्षु पदेषु 'व्' व्यञ्जनरहितत्वं विचार्यम् । एतावता आसारो वेगवान् [वती] वर्षा, धर्मवल्लीविताने समूहे । द्वितीयपदे कासारः सरोवरः क्षमाजलस्य नाथः प्रभुः । तृतीयपदे संसाररूपअपारनीरेशः सागरः, तस्य तीरस्तटः, चतुर्थपदे असारद्वेषपूरेण मुक्तः [चतुर्थेऽत्र पदे 'जय' इति पदस्य कोऽर्थः !? जयतात् इति]

श्रीसंवर०- श्रीशंवराङ्कजिनो मृगाङ्कजिनः श्रीशान्तिः, तस्य शवरो वर्णः [सुवर्णवर्णः] तस्य तुल्य(ल्यो)देहो यस्य सः - श्रीशंवराङ्क० [तुल्यकायः] संवरजाङ्कः पद्माङ्कः पद्मप्रभदेवः, तत्समानः प्रतापो यस्य [सः], रक्तवर्णत्वात् [प्रतापस्य] । चञ्चत्प्र० संवरभवाङ्कः शङ्खाङ्कः देवः श्रीनेमिजिनः, तन्मुखेन लब्धो प्रभावभरो येन[सः] एवंविधः संवर-भूधरः-शङ्खधरो नारायणः, तेनार्च्यः पूज्यः ॥२३॥

अष्टोत्तराणि च सहस्त्रमितानि शंभो-र्लक्ष्मानि(णि) यस्य करसंवरजे विभान्ति ।
सच्छत्रसंवरज संवरजात यूप, प्रासाद संवरमुखानि स वः श्रियेऽस्तु ॥२४॥

अव०- अष्टोत्तराणि० यस्य करसंवरजे करकमले अष्टाधिकानि सहस्त्रमितानि लक्षणानि शोभन्ते, तानि कानि ? - प्रधानछत्र-कमल-शङ्ख-यूप-

प्रासाद-शंवरशब्देन मत्स्य प्रमुखानि । स जिनः, वो युष्माकं श्रिये अस्तु ॥२४॥

दद्यादनन्ता[न्त्या]क्षरसंवरो हि, जिनाधिपः केशवसंवरेशाम् ।
यः संवरेशादिकलोकपालै-रभ्यर्चितः संवरवैरिवारी ॥२५॥

अव०- दद्या० । जिनाधिपः दद्यात्, संवरः, किंभूतः ?- अनन्ता(न्त्या) क्षरः, न विद्यते अन्तिमो 'र' इति वर्णो यत्र एतावता 'सवः इति स्थितम्- स जिनः वो युष्माकं दद्यात्, काम् ? - केशवसंवरेशाम् - नारायण-पत्नीम्, लक्ष्मीमित्यर्थः । स कः ? - यः संवरेशो जलेशो वरुणः, तदादिलोकपालैः पूजितः । संवरवेरिः (वैरी) [संयमरिपुः] कन्दर्पः, तस्य वारी [निवारकः] हर्ता ॥२५॥

जय जिनेश ! यशसाऽवसंवरः, शमरसस्तथैव च संवरः ।
अपवसंवरशस्त्रधरैर्नृतो, विगतसंवरसंयमसंयुतः ॥२६॥

अव०- जय० हे जिन ? त्वं जय, किंभूतः ? - अवसंवरः, न विद्यते 'व' इति वर्णो यत्र, तद् 'अवसंवरः, एतावता (संरः=) सरः, सर शब्देन नवनीतम् तत् सह(?) शस्तस्मात्-सरः, केन ?-यशसा शुभत्वात्, तथैव पूर्ववत् संवरः = सरः सरोवरः कस्य ?- शमतारसस्य । [पुनः किंभूतः ?- अपव०-अपगतो 'व' इति वर्णो यस्मात् - एतावता शरः, बाणप्रमुख-शस्त्रधरैर्नरैर्नुतः स्तुतः । विगतः शबलरहितः, एकविंशतिधा शबलदोषः । [तेन रहितः संयमः, तेन संयुतः] संयमसंयुतः चारित्रसहितः इत्यर्थः ॥२६॥

अयस्संवरः पापकुष्टेऽत्यनिष्टे सितासंवरः क्रोधतापेऽतिदुष्टे ।
सदा दर्शनात् संवरक्षेमकारी, प्रभुः संवराङ्कानन: पुण्यचारी ॥२७॥

अव०- अयस्संवरशब्देन लोहासवनाम कुष्टभेषजं वैद्यके प्रसिद्धम् । सिता संवरः शितोपलाजलं क्रोधदुष्टताया उपशमनेऽत्यर्थः, दर्शनतो शबरवत् मत्स्यवत् क्षेमकारी मङ्गलकारीत्यर्थः, शंवराङ्को मृगाङ्कश्चन्द्रः, तद्वद् आननं यस्य सः, पुण्ये धर्मे चरतीति पुण्यचारी ॥२७॥

एवं संवरराशिजातविलसद्रत्नैः सदर्थैः स्रजं-
कृत्वा यो रुचिरां सुहेमविमलं सौभाग्यहर्षप्रदाम् ।

सार्वेशाधिपसांवरेय सुलसत्कण्ठे निधत्ते मुदा,
स श्रीसौख्यनिर्धिं सुसोमविमलः प्राप्नोतु पृथ्वीतले ॥२८॥

अव०- एवं अनया रीत्या, संवरराशिः सागरः, तथा च संवर शब्दसमूहोत्पन्नः तत्रोत्पन्नैः रत्नैः, सदर्थैः अर्थयुतैः द्रव्ययुतैः, तथा च पर्याययुतैः, स्रजं मालां कृत्वा निर्माय, यः पुमान् रुचिराम् भव्याम्, सुहेम० - सुष्ठु हेमवत् सुवर्णवत् विमलां निर्मलां, सौभाग्यं हर्षं च ददातीति सौभाग्यहर्षप्रदाम् । सार्वेशाधिपः तीर्थकरः, संवरस्य अपत्यं सांवरेयः, श्रीअभिनन्दनदेव[स्त]स्य विलसत्कण्ठे निधत्ते स्थापयति, स नरः सोमश्चन्द्रः, तद्वद् विमलः सोमविमलः, सौख्यनिर्धिं सुखनिधानं प्राप्नोतु पृथ्वीतले वसुधातले इत्यर्थः ॥२८॥

इति श्री अभिनन्दनजिनस्तोत्रम् । अष्टोत्तर 'संवर'शब्दार्थगर्भितम्, श्रीतपा गच्छाधिराज श्रीहेमविमलसूरिशिष्याणुना श्रीसौभाग्यहर्षपट्टधारिणा श्री सोमविमल-सूरिणा कृतं लिखितं च । श्री सयंबिलशुभनगरे, संवत् १६५६ मार्गशीर्ष वदि ८ बुधवासरे ।

अव०- इति श्रीअष्टोत्तरशतसंवरशब्दार्थगर्भितं, श्रीअभिनन्दनस्तोत्रावचूरिः संपूर्णा, लिखिता कृता च श्रीतपागच्छाधिराजश्रीहेमविमलसूरिशिष्याणुना श्रीसौभाग्यहर्षसूरिपट्टधारिणा श्रीसोमविमलसूरिणा सयंबिलशुभनगरे, विद्वज्जनैः प्रसादमाधाय संशोध्या ॥छ॥ कल्याणं भवतु - लेखक-पाठक-वाचक-श्रोतृक-साधुजनपरम्पराणाम् - संवत् १६५६ - मार्गशीर्षमासे ।

टिप्पणी

१. A अेक पद्यनां शत शत अर्थो दर्शावती कृतिओ.
   १. बप्पभट्टिसूरि (सं. ८९५) 'तत्तीस' गाथा.
   २. वर्धमानगणि (ले.सं. ११९९), कुमारविहार प्रशस्ति पद्य ८७मुं.
   ३. सोमप्रभसूरि (र. सं. १२३५), 'कल्याणसारसवितान' स्वतन्त्र पद्य.
   ४. उदयधर्म (र.सं. १९०५) 'दोससयमूल' उपदेशमाला - ५१मी गाथा.
   ५. जिनमाणिक्य (१५३९) 'सिद्धये वर्धमानः' रत्नाकरावतारिका प्रथम पद्य.
   ६. मानसागर (ले.सं. १६५२) 'परिग्रहारम्भमग्नाः' योगशास्त्र २/१०.
   ७. जयसुन्दरसूरि (ले.सं. १६७९) 'नमो दुर्वाररागादि', योगशास्त्र १/१
B अनेकार्थकृतिः-समयसुन्दरगणि' (सं. १६४९) अर्थरत्नावली (अष्टलक्षार्थी 'राजानो ददते

सौख्यम्' मात्र एक ज वाक्यना ८ लाख अर्थो.

C अनेकार्थ शब्दोनी कृतिओ :

१. विवेकसागर (१६मी सदी) 'वीतरागस्तव' १० पद्यमां 'हरि' शब्दना ३० अर्थो.

२. अज्ञात ऋषभदेवस्तुति ४ पद्यमां 'सारंग'शब्दना १२ अर्थो.

[ऋषभदेवस्तुतिनी अवचूरि अनेकार्थरत्नमञ्जूषामां प्रकाशित छे.]

३. गुणविजय 'महावीरस्तव', १९ पद्यमां 'सारंग' शब्दना ६० अर्थो.

४. लक्ष्मीकल्लोलगणि (१६००) साधारण जिन स्तवन. २८ पद्यमां 'पराग' शब्दना १०८ अर्थो.

[A-B-C नी माहितीनो आधार-ही.र. कापडिया 'जै.सं. साहित्यनो इतिहास खण्ड २, प्रकरण ३२ मुं. सं. आचार्यश्री मुनिचन्द्रसूरिजी ई.स. २००९]

D हर्षकुलगणि (१६मुं शतक) 'कमलपञ्चशतिक पञ्चजिनस्तोत्र' पद्य १३०मां ५१२ अर्थो. संपा० आचार्य श्रीशीलचन्द्रसूरिजी - अनुसन्धान-१५.

E हेमविजयगणि, नेमिजिनेन्द्रस्तवन' २९ पद्यमां पोताना गुरु श्री कमल विजयना नामथी 'कमल' शब्दनां १०८ अर्थो. (सम्पादन चालु छे. अमृत पटेल)

F सोमविमलसूरिजी षोडशोत्तर कमलशब्दगर्भित चतुर्विंशति जिनस्तुति, पद्य २९मां 'कमल' शब्दनां ११६ अर्थो. - स्तुतितरंगिणी-भाग ३ पृष्ठ २०३. सं. आचार्यश्री विजयभद्रंकर सूरि. वि.सं. २०३९)

G समस्या लेखो पण अनेकार्थकृतिओ छे. विगतवार माहिती माटे - ही.र. कापडिया - 'जैन सं. सा.नो इतिहास खण्ड २, प्रकरण ३१मुं.

२. -आ यादी अेकदम सामान्य छे.

क्रियोद्धारक हेमविमल सूरि (सं. १५२२-१५८३)ना शिष्य हता. तथा सौभाग्यहर्षसूरिना पट्टधर हता. खम्भात पासे कंसारी गाममां वृद्ध प्रागवाट मन्त्री समधरनां वंशज मन्त्री रूपा अने तेमनी भार्या अमरादेनां जसवंत नामे पुत्र हता. [संवत् १५७०मां जन्म, सं. १५७४मां अमदावादमां दीक्षा, सं. १५९७मां आचार्यपद, सं. १६३७मां स्वर्गवास] - तेओश्रीअे श्रेणिकरास, धम्मिलरास, कल्पसूत्रबालावबोध, दशवैकालिक बालावबोध वगेरे घणा ग्रन्थोनी रचना करी हती.

जुओ जैनगूर्जर कविओ - सं. जयंत कोठारी (सं. १९९७) भाग ९, पृ. ८६-८७.

३. जुओ स्तुति तरङ्गिणी भा. ३, पृ. २०३. सं. आ.श्री भद्रंकरसूरि (सं. २०३९).

४. शबरो म्लेच्छभेदेऽप्सु, हरेऽथो शम्बरं जले ।
चित्रे बौद्धव्रते भेदे, शम्बरो दानवान्तरे ॥६४१॥ अनेकार्थसंग्रह,
मत्स्यैरा-गिरि-भेदेषु, शबरी पुनरौषधौ,
- सबल . . . . . शबलं मत्सरे तटे ।
पार्थये च . . . . . ॥७२२॥ अने०

- संवर, नाभिश्च . . . ., जितारिरथ संवर : ३६ ॥
  क्षेत्रे तु. . . . सेतौ, पाल्यालि-संवरः (९६५)
- नीरं वारि जलं . . . . . ।
  वाः संवरम् ॥१०६३॥
- मृगः कुरङ्ग-सारङ्गौ . . . . . ।
  .. . . . . शङ्कु गोकर्ण शंबराः ॥१२९३॥

(आ बधा सन्दर्भो हैमीय अनेकार्थसंग्रह)

- मृगभेदे भवेद् ऋष्यो रोहिषः संवरोपि च (पञ्चवर्गपरिहार १०४)
- विशारः संवरो नक्रे, ... (पं.व.प. ११२)

५. संवर+ज = जलज = कमल, शंख, चन्द्र, संवर+जा- लक्ष्मी+पति = विष्णु, शंवर + अरि = मृगारि = सिंह, दानवारि-शिव, इत्यादि.....

c\o. १०३ B-एकता एवन्यू
वासणा
अमदावाद-७

जयानन्दसूरि कृत
प्रथम जिनस्तोत्र (टीका)

-सं. मुनि सुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ

सोपारकनगर एटले ज हालनुं नालासोपारा, मुम्बइ नजीक थाणा जिल्लामां आवेलुं एक परू. जैन जैनेतर शास्त्रोमां आ नगरीनी प्राचीनताना घणा पुरावा मळे छे. प्रस्तुत कृतिमां कविए सोपारकमण्डण श्रीआदिनाथप्रभुनी स्तुति करी छे. मूळ कृति तो सरळ ज छे. परन्तु कृतिनी टीका कृतिनी सरळतामां वधारो करे छे.

भिन्न-भिन्न समये भिन्न-भिन्न गच्छमां समान नामवाला घणा मुनिओ थया छे. प्रस्तुत कृतिकार जयानन्दसूरिजी कया गच्छना छे ? तेनी शोध करता जयानन्दसूरिजी नामना पांच आचार्य थयानी नोंध जैन परम्पराना इतिहासमांथी मळे छे. अहिं अमे जयानन्दसूरिजीना गच्छ सम्बन्धी विचारणा करी छे.

जयानन्दसूरिजी नामना आचार्यो –

१. सं० १२६४ आसपास सिद्धहेमअवचूर्णिना रचयिता अमरचन्द्रसूरिना गुरु जयानन्दसूरि हता.
२. वडगच्छमां वादिदेवसूरिजीनी परम्परामां गिरनार उपर प्रतिष्ठा करनारा जयानन्दसूरि सं. १३०५ आसपास थया.
३. स्थूलभद्रचरित्रादि ग्रन्थोना रचयिता तपागच्छीय जयानन्दसूरि सं. १४२० आसपास सोमतिलकसूरिना शिष्य हता.
४. रूद्रपल्लीयगच्छमां सं. १४६८ आसपास उग्रविहारी जयानन्दसूरि थया. जेओ संघतिलकसूरिनी परम्परामां अभयदेवसूरिना शिष्य हता.
५. अञ्चलगच्छमां सं. १४९४ आसपास स्यादिशब्ददीपिकाकार जयानन्दसूरि थया.

आ पांच समाननामक आचार्योमांथी कृतिकारनो गच्छ ओळखवो थोडो कठिन छे. तो पण अन्य प्राप्त लेखादि सामग्री परथी कृतिकार तपागच्छना हशे एम अनुमान करवानुं मन थाय छे. तेनां मुख्य बे कारणो छे.

१. जयानन्दसूरिना नामे प्राप्त थती रचनाओमां देवाः प्रभोः स्तोत्र, नेमाड प्रवास गीतादि भक्तिप्रधान रचनाओ तपागच्छना जयानन्दसूरिनी छे. अन्य कोईपण जयानन्दसूरिनी आवी रचनाओ प्राप्त थती नथी.

२. तपा० जयानन्दसूरिजीना गुरुभाई देवसुन्दरसूरिना शिष्य सोमसुन्दर-सूरिजीए सोपारकना जिनालयनो जीर्णोद्धार कराव्यो हतो. तेमज सोपारकादि तीर्थोना संघो तेमनी निश्रामां नीकळ्या हता. आ परथी तपागच्छीय परम्परानो आ क्षेत्र परनो प्रभाव जणाय छे. वळी आ वातनी साक्षी पूरती तपा. जिनसुन्दरसूरि आदि आचार्योना हाथे प्रतिष्ठित थयेल प्रतिमाओ आजे पण मळे छे. अन्य गच्छना जयानन्दसूरिजी माटे आवी कोइ दस्तावेजी सामग्री प्राप्त थती नथी.

आ बन्ने कारणो ज कृतिकार जयानन्दसूरिजीने तपागच्छना होवानुं अनुमान करवा प्रेरे छे. आ तो अमे मात्र अमारा विचारने रजू कर्यो छे. विद्वानो आ अंगे वधु प्रकाश पाडशे एवी आशा छे.

टीकाकारश्री सुभोग पाठक तेमज लिपिकार श्रीअमृतकुशल विशे कोइ विशेष माहिती प्राप्त थती नथी. धौर्यपुर पण तद्दन नवुं ज गामनुं नाम जणाय छे.

प्रस्तुत कृतिनी प्रत सम्पादनार्थे आपवा बदल नेमि-विज्ञान-कस्तूरसूरि जैनभण्डारना व्यवस्थापकश्रीनो तेमज प.पू.आ.श्री.विजयसोमचन्द्रसूरि म. सानो खूब खूब आभार.

प्रथम जिन स्तोत्र

॥ए ६०॥

जयानन्दलक्ष्मीलसत्वल्लिकन्दं ।
सुराधीशसंसेव्यपादारविन्दम् ॥
स्फुरच्चारुचामीकरद्योतिदेहं
युगाधीशमानौमि सौपारकेऽहम् ॥१॥

जय = इह लोके शक्तेरप्रतिहन[न]म्, **आनन्दः** = सर्वेन्द्रियाल्हादहेतुः, **लक्ष्मीः** = सम्पदा, एतत्त्रयरूपा **लसन्ती वल्लिस्तस्याः कन्दं** = मूलम् । पुनः

कीदृशम् ? **सुराधीशाः** = चतुःषष्ठिदेवेन्द्रास्तैः **संसेव्यं** = पूजनीयम्, **पादारविन्दं** = चरणकमलम् । पुनः कीदृशम् ? **स्फुरत्** = दीप्रत्, **चारु** = मनोहरम्, **चामीकरं** = सुवर्णम्, तद्वत् **द्योति** = दीप्यमानम्, **देहं** = शरीरम्, यस्य सः, तं सुवर्णवर्णम् । ईदृशं **युगादीशं** = आदीश्वरजिनम्, **सोपारके** = सोपारकपत्तने, **अहं** जयानन्दसूरिः, **आनौमि** = प्रणमामि ॥१॥

तितीर्षामि सिन्धुं भुजाभ्याममानं,
चिकीर्षामि पीयूषयूषस्य पानम् ।
तितंसामि यन्मन्दधीस्तावकानां,
स्तवादेव सङ्ख्यातिगानां गुणानाम् ॥२॥

तरितुमिच्छामि = **तितीर्षामि** । **सिन्धुं** = समुद्रम्, **अमानम्** = मानं-प्रमाणं तद्रहितममानम्, काभ्याम् ? **भुजाभ्यां** = बाहुभ्याम्, निजबाहुभ्याम् । पुनः किर्ति(कर्तु)मिच्छामि **चिकीर्षामि** । **पीयूषयूषस्य** = अमृतरसस्य, पानं = आस्वादनम् । तनोतुमिच्छामि = **तितंसामि** । **यद्** अहं **मन्दधीः** = अल्पबुद्धिः सन् **तावकानां** = त्वदीयानाम्, **सङ्ख्यातिगानां** = सङ्ख्य(ङ्ख्या)या अतिगानां अतिक्रान्तानाम्, **गुणानां** ज्ञानदर्शनचारित्रादिलक्षणानां, **स्तवादेव** = स्तवनादेव विस्तारयितुमिच्छामि ॥२॥

मनश्चिन्तितातीतवस्तुप्रदेन,
द्युसत्पादपेन त्वया जङ्गमेन ।
नवः कोऽप्ययं नन्दनोद्यानदेशः,
प्रभो भ्राजते कुङ्कणाख्यातदेशः ॥३॥

मनश्चिन्तितात् अतीतं = अतिक्रान्तं यद्वस्तु तद्वस्तु-ददातीति मनश्चिन्तितातीतवस्तुप्रदः, तेन **मनश्चिन्तितातीतवस्तुप्रदेन** ईदृशेन **द्युसत्पादपेन** = कल्पवृक्षेण, **त्वया** = भवता, **जङ्गमेन** = पादक्रमणशीलेन त्वया **नवः** = नवीनः, **कः** = अनिर्वचनीयः **अपि अयं** = प्रत्यक्षः, **नन्दनोद्यानदेशः** = नन्दनवनभूमिसदृशः, हे प्रभो ! = हे स्वामिन् !, **भ्राजते** = शोभते, **कुङ्कणनाम-देशः** । भावार्थोऽयम्, त्वया कल्पवृक्षेण **कुङ्कणदेशः** भ्राजते ॥३॥

मयाप्तं फलं जन्मकल्पद्रुमस्य
प्रभुत्वं च विश्वस्य विश्वत्रयस्य ।

यतश्चक्षुषा वीक्षितस्त्वं वरेण्यै-
श्चिरं सञ्चितैः प्राच्यपुण्यैरगण्यैः ॥४॥

मया जन्मकल्पद्रुमस्य = जन्मकल्पवृक्षस्य, **फलं** = इष्टं **आप्तं** = प्राप्तम् । च = पुनः, **विश्वस्य** = समस्तस्य, **विश्वत्रयस्य** = त्रिभुवनस्य, **प्रभुत्वं** = नायकत्वम्, **आप्तं** लोकत्रयस्वामित्वं प्राप्तम्, **यतः** = यस्मात् कारणात्, **त्वं** = भगवान्, **चक्षुषा** = नयनेन, **वीक्षितः** = विलोकितः, कैः ? हेतुभूतैः **वरेण्यैः** = प्रधानैः, **चिरं** = चिरकालात्, **सञ्चितैः** = उपार्जितैः, **प्राच्यपुण्यैः** = पूर्वभवजनितधर्मैः **अगण्यैः** = गणनारहितैः ॥४॥

विशिष्टैककाष्ठोदयं यानपात्रं,
पवित्रं विराजद्गुणश्रेणिपात्रं ।
भवत्पादपद्मं विभो ये भजन्ते
भवाम्भोधिपारीणतां ते लभन्ते ॥५॥

विशिष्टानि, एकानि = अद्वितीयानि, **काष्ठानि** = दारवः, तैः **उदयं** = उत्पन्नम्, प्रधानाद्वितीयदारूनिष्पन्नम्, **यानपात्रं** = बोहित्थम्, **पवित्रं** = पावनम्, **विराजन्ति** = शोभन्ति(न्ते), **गुणानां श्रेणिः तस्याः पात्रं** = स्थानम्, ईदृशं **भवत्पादपद्मं** = त्वत्चरणकमलम्, **हे विभो** ! = हे स्वामिन् ! **ये भजन्ते** = सेवन्ते, **ते** जनाः **भवाम्भोधिपारीणतां** = संसारसमुद्रपारत्वम्, **लभन्ते** = प्राप्नुवन्ति ॥४॥

अहं भाग्यहीनो भवन्तं प्रपद्य,
प्रभो भाग्यवानद्य जातोऽस्मि सद्यः ।
दृषत्खण्डमप्यागतं स्वर्णशैले,
सुवर्णं न किं जायते वा विशालम् ॥६॥

अहं भाग्यहीनः = पुण्यरहितः, **भवन्तं** = त्वाम्, **प्रपद्य** = अवलम्ब्य, हे **प्रभो ! अद्य** = अधुना, **सद्यः** = तत्कालम्, **भाग्यवान्** = भाग्ययुक्तो **जातोस्मि** = भाग्यवान् सम्पन्नः । दृष्टान्तमाह । **दृषत्खण्डमपि** = प्रस्तर-शकलमपि, **स्वर्णशैले** = सुवर्णमयगिरौ-मेरौ, आगतं = प्राप्तम्, **सुवर्णं** = कनकम्, **न** = नहि, **किं** = कथम्, **वा जायते,** सुवर्णभावं किं न प्राप्नोति, **विशालं** = विस्तीर्णम्, अपितु प्राप्नोति एव ।

विदेशंगमी प्राप्य सत्सार्थवाहम्,
यथा मोदते चातकोचा(तकश्चाऽ)म्बुवाहम् ।
तथाहं भवन्तं शिवश्रीविनोदम्
समासाद्य सद्यः प्रपद्ये प्रमोदम् ॥७॥

विदेशंगमी = विदेशे गमनशीलः, **सत्सार्थवाहम्** = शोभन-सार्थपतिं, **प्राप्य** = लब्ध्वा, **यथा** = येन प्रकारेण, **मोदते** = हर्षयुक्तो भवति । पुनः **चातको** = बप्पीहः, **अम्बुवाहम्** = मेघं प्राप्य, प्राप्य, **यथा मोदते** = तुष्टो भवति, तथा तेन प्रकारेण, **अहं भवन्तं** = त्वाम्, शिवश्रीविनोदं = मोक्षलक्ष्मी-विलासम्, **समासाद्य** = सम्प्राप्य, **सद्यः** = तत्कालम्, प्रमोदं = हर्षम्, **प्रपद्ये** = प्राप्नोमि ॥७॥

कदा देव ! ते सेवकोऽहं भवेयं,
कदा शासनं तावकीनं भजेयं ।
कदा दर्शने दर्शनात् पावयेयं,
कदा त्वत्पदाब्जं च चित्तं नयेयम् ॥८॥

हे देव ! = हे प्रभो ! **ते** तव, **सेवकः** = किङ्करः, **कदा** = कस्मिन् काले, **भवेयं** = भवामि, तव दासोऽहं कदा भवामि ! **कदा** = कस्मिन् काले, **शासनम्** = आज्ञाम्, **तावकीनं** = भवदीयं, **भजेयं** = भजे, तवाज्ञापालकः कदा भवामि भविष्यामि, **कदा** = कस्मिन् काले, **तव दर्शने** = तवावलोकने, **दर्शनात्** = सम्यक्त्वात्, अहं **पावयेयं** = पावनतरो भवामि । पुनः **कदा** कस्मिन् काले, **त्वत्पदाब्जं** = भवत्चरणकमलम्, **चित्तं** = निजमनसि, **नयेयम्** = प्रापयामि ॥८॥

महातीर्थशत्रुञ्जयोपत्यकायां,
सुसम्पद्विलासोल्लसद्भूमिकायाम् ।
पुरे सारसोपारके मूर्त्तिरेखा,
मुदेऽस्तु त्वदीया दृशोरिन्दुलेखा ॥९॥

महातीर्थस्य = सर्वोत्तमतीर्थस्य, **शत्रुञ्जयस्य** = सिध्धाचलस्य, **उपत्यकायां** = आसन्नभूमौ, सिध्धाचलनिकटस्थाने, **सुसम्पत्** = शोभनसम्पदा,

तस्या **विलासस्य** = क्रीडायाः, **उल्लसन्ती भूमिका** = स्थानम्, तस्याम्, श्रेष्ठलक्ष्मीकेलिसद्मनि **ईदृशे पुरे** = नगरे, **सारसोपारके** = सोपारपत्तने, एषा प्रत्यक्षा, **मूर्तिः** = आकृतिः, तव बिम्बं, **मुदे** = हर्षाय, **अस्तु** = भवतु । **त्वदीया** = तावकीना, कीदृशी मूर्तिः ? **दृशोः**-नयनयोः, **इन्दुलेखा** = चन्द्र-कलोपमा ॥९॥

विभो तावकीन प्रसादादशेषाः,
समेषां भवन्तीष्टलक्ष्मीविशेषाः ।
दुरापं भवेद्वस्तु किं कल्पवृक्षे
जनानां मनोभीष्टदानैकदक्षे ॥१०॥

हे **विभो** ! = हे स्वामिन् । **तावकीनप्रसादात्** = त्वदीयमहिम्नः, **अशेषाः** = समस्ताः, **समेषां** = सर्वजनानाम्, **इष्टलक्ष्मीविशेषाः** = वाञ्छितकमलाप्रकाराः, भवन्ति सम्पद्यन्ते ॥ दृष्टान्तमाह-**दुरापं** = दुर्लभम्, **भवेद्वस्तु** = वस्तु पदार्थात्मकम्, **किं** = किमपि, **कल्पवृक्षे** = सुरपादपे, **जनानाम्** = प्राणिनाम्, कीदृशे कल्पवृक्षे ? **मनोभीष्टदानैकदक्षे** = मनोवाञ्छित-प्रदानाद्वितीयचतुरे । भावस्तु-कल्पवृक्षे सति किं दुःप्रापम् ? अपितु न किमपि ।

निरुपममहिमश्रीसारसोपारनाम-
प्रवरनगरलक्ष्मीकामिनीकङ्कणाभः ।
प्रथमजिन ! मयैवं संस्तुतस्त्वं च भक्त्या
जिन ! विशदपदाब्जोपासनां देव ! देयाः ॥११॥

इति प्रथम जिन स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

निरुपमः = उपमारहितो महिमा, तस्य **श्रीः** = शोभा, तया-**सारम्** = प्रधानम्, **सोपारनाम प्रवरनगरं** = सुन्दरपत्तनम्, तस्य **लक्ष्मीः** = श्रीः ? कान्तिरेव, **कामिनी** = युवतिः, तस्याः-कङ्कणे = कनकवलये, तयोरिव आभा = शोभा । [गाथार्थः] निरुपम उपमावर्जितप्रभावशोभाभासुरसोपारपुरनारी-लक्ष्मीहस्तकङ्कणसमः ।

हे प्रथमजिन = हे प्रथम तीर्थंकर ! **मया** = जयानन्दसूरिणा, **एवं** = पूर्वोक्तप्रकारेण, **संस्तुत** = स्तुतिविषयीकृतः, **त्वं** = प्रथमजिनः, **भक्त्या** =

श्रद्धातिशयेन, **हे जिन** ! = हे भगवन् ! हे देव ! = हे प्रभो ! **विशदपदाब्जो-पासनां** = निर्मलचरणकमलसेवनाम्, **देयाः** = त्वं देहि, मम इति शेषः ॥ इति वृत्तार्थः ॥११॥

इत्थं **जयानन्द**गणाधिराजविनिर्मिते स्तोत्रवरे जिनस्य नाभेयनाम्नो-ल्पतराऽत्र वृत्तिश्चक्रे **सुभोगा**भिधपाठकेन । इति जयानन्दसूरिसंस्तुतश्रीयुगादिजिन स्तोत्रं पवित्रं सम्पूर्णम् ।

सोपारविज्ञप्तिका

-सं. मुनिसुजसचन्द्र सुयशचन्द्रविजयौ

कोइपण नगरीनो इतिहास मुख्यतया ते नगरनां प्राचीन देवस्थानो, वाव-कूवा आदि स्थापत्यो, पुरातत्त्वीय अवशेषो, नगरनो परिचय करावती ग्रन्थोनी रचनाओ के ग्रन्थपुष्पिकाओ इत्यादि सामग्री उपर आधार राखे छे. प्रस्तुत कृतिमां कविए प्राचीन नगरी सोपारक सम्बन्धि केटलीक बाबतो पर प्रकाश पाड्यो छे.

सोपारक नगर ए कोङ्कणदेशनी राजधानी तेमज प्राचीन भारतनी एक सुप्रसिद्ध नगर हतुं. महाभारतमां, ब्राह्मणीय परम्पराना पुराणोमां, बौद्धसाहित्यमां तेमज जैनसाहित्यमां पण आ नगरना उल्लेखो मळे छे. इतिहासमां पण आ नगरना सोपारक, सोपारग, सोपारा, सहुपारा, सौरपारक, सुपारिक एम घणां नामो प्राप्त थाय छे. तथा शक क्षत्रप उषावदातना एक शिलालेखमां आ नगरनो उल्लेख मळे छे. आजे आ नगर महाराष्ट्रनी राजधानी मुम्बईथी नजीक ठाणा जिल्लामां आवेला (सोपारा) नालासोपारा गामना नामथी ओळखाय छे.

१४मी सदीमां आ. श्रीजिनप्रभसूरिए 'कल्पप्रदीप' नामना ग्रन्थना चतुरशीति महातीर्थनामसङ्ग्रहकल्पमां, पुरातनप्रबन्धसङ्ग्रहनी अन्तर्गत कुमारपाल-देवतीर्थयात्राप्रबन्धमां तेमज प्रबन्धकोश जेवा ऐतिहासिक ग्रन्थमां तीर्थस्वरूप आ नगरनो तेमज श्रीजीवितस्वामीश्रीऋषभदेव प्रभुना प्रासादनी नोंध करी छे. वळी मुनिचन्द्रसूरिविरचित अष्टोत्तरशततीर्थमालामां, विनयप्रभ उपा० रचित अष्टोत्तरशत-तीर्थयात्रास्तवमां, मेघाकृत तीर्थमाळा इत्यादि ग्रन्थोमां सोपारकमण्डण जीवितस्वामीनुं नाम जोवा मळे छे. आम विक्रमनी १६मी सदी सुधी आ नगरनी ख्याति घणी विस्तरेली हशे. त्यारबाद अनुक्रमे काळना प्रवाहमां घटती गई हशे.

कृतिनी भाषा सुन्दर छे. कर्त्ताए आगळनी गाथाओमां भरपूर रीते प्राकृतिक सौन्दर्यनुं वर्णन कर्युं छे. बीजी गाथामां ''सेत्तुंज तीरथु तणीय तलहटी'' आ पद्य मूकवा पाछळ कर्तानुं शुं प्रयोजन छे ? ते विचारणीय छे. जो के सोपाराने शत्रुंजयनी तळेटी गणी ते तेनुं माहात्म्यमात्र जणाय छे. ए क्षेत्रनो महिमा ते काले घणो होय. वळी आदिनाथप्रभुनी प्रतिमा होय ते परथी

शत्रुंजयनी तळेटीरूप गणातुं होय एम बने. अथवा हाल लघुशत्रुंजयना नामथी ओळखातुं थाणा ते वखते शत्रुंजयना नामे आलेखातुं हशे. अने तेनी नजीक शत्रुंजयनी तळेटी समुं सोपारकनगर हशे. आ भावने पुष्ट करनारी अन्य २ पंक्तिओ पण मळे छे ते अहीं विद्वानोना अभ्यास माटे टांकी छे.

१. विमलाचलमेखलाऽवनीस्थितसोपारकपत्तने पुरा ।

[श्रीसोपारकस्तवनम् - अज्ञात]

२. महातीर्थशत्रुञ्जयोपत्यकायां..... । [प्रथमजिनस्तोत्र - जयानन्दसूरि]

='तत खिणि आविउ गामि अगासी' आ पङ्क्तिथी कविए सोपारानी नजीकमां रहेला अगासी गामना युगादीश श्रीआदिनाथप्रभुना जिनालय सम्बन्धी नोंध करी छे. ते अगासी गाम आजे पण अगासीना नामथी (नालासोपारानी नजीक) ओळखाय छे.

जीवितसामी (स्वामी) नाम शा माटे ?

x ..... जिणवयणसारदिट्ठपरमत्था सुव्वया नाम गणिणी **जीवंत** (पाठभेदथी जीव) **सामि** वंदिय.... [वसुदेवहिण्डी मूल - भा. १ पृ. ६१]

x .....चैत्यानि पूर्वाणि वा चिरन्तनानि **जीवन्तस्वामि**प्रतिमादीनि.... x

[बृहत्कल्पभाष्य भा. ३, पृ. ७७६]

इत्यादि पंक्तिओ वडे वसुदेवहिण्डी जेवा केटलाय प्राचीन ग्रन्थोमां जीवितस्वामीनुं कंइक विशेष माहात्म्य ग्रन्थकारश्री वर्णवे छे. जीवितस्वामी एटले भगवान महावीरस्वामीना समयमां ज, प्रभुए दीक्षा लीधी ते पहेलां बनेली तेमनी प्रतिमा. राजकुमारना शरीरने योग्य अलङ्कारोथी सुशोभित आ प्रतिमा बनी एटले शास्त्रीय रीते विचार करता तीर्थंकर भगवानना पोताना समयमां बनेली प्रतिमाने ज जीवितस्वामी प्रतिमा कही शकाय.

जीवितस्वामीनी प्रतिमा जेने कहेवामां आवी ते उपरथी भावो लइ बीजी जे अन्य तीर्थंकरोनी प्रतिमा तैयार थइ ते पण जीवितस्वामीना नामथी ओळखाती. प्रबन्धकोश, प्राचीन लेखो इत्यादिमां तेनी नोंध मळे छे. अहीं पण कदाच ए ज आशयथी युगादीशने जीवितस्वामी तरीके ओळख्या हशे. छतां ए बाबत पर वधु प्रकाश विद्वानो पाडशे एवी आशा छे.

[उद्धारण-जीवन्तस्वामी-उमाकांत प्रे. शाह]

जैन सत्यप्रकाश. वर्ष १७, अंक- ५-६

शब्दकोश

१. तलहटी = तळेटी
२. दुकिय = दुष्कृत = पाप
३. खेटीय = खोटकावीने
४. सरगजमलि = स्वर्गसमान
५. हारहूरा = (हारहारा(सं)-द्राक्ष
६. आकंद = ?
७. पगर = गुच्छ
८. धामिणि =
९. कहि = कोई एक
१०. दंतउ = श्वेत
११. ऊबीठउ = अणगमतो थयो(?)
१२. सेत = श्वेत
१३. तीहं पूजइं = तेना पूर्ण थाय.
१४. लकुटारसि = दांडीया रास
१५. धामी = ?
१६. राखि = राखो
१७. उपक्रम = खंत, उद्योग

सोपारक सम्बन्धि साहित्य

१.	सोपारा विनती	पढम जिणेसर पय पणमेवि....	जयतिलक सूरि	–	१९
२.	सोपारक स्तवनम्	श्रीसोपारकपत्तनावनी....	अज्ञात	–	३२
३.	सोपारकमण्डण ऋषभजिनस्तुति	श्रीसोपारकपत्तनाद्भुतरमा..	अज्ञात	–	४
४.	श्रीमज्जिनस्तवनम्	श्रीकुङ्कणाख्यविषयस्थित-पत्तनश्री.....	अज्ञात	–	४
५.	सोपारकमण्डन-ऋषभजिनस्तव(सटीक)	जयानन्दलक्ष्मीलसद्वल्लि-कन्दं.....	अज्ञात	टीका	११
६.	सोपारक श्रीऋषभ-देवस्तोत्रम्	जयश्रीसङ्गिनः पृथ्व्यां...	मुनिसुन्दर सूरि	–	२५
७.	सोपारकमण्डण आदिजिन स्तुति	स्तुये युगादीश विभूष्यमाणा.....	अज्ञात	–	४

'सोपारक'नी प्राचीनताने तथा ऐतिहासिकताने सूचवता अनेक प्रमाणभूत उल्लेखो 'जैन परम्परानो इतिहास'' जेवा ग्रन्थोमां प्राप्त थाय छे. तो विविध जिनप्रतिमाओ परना लेखोमां पण सोपारकनो उल्लेख मळे छे. ते लेखोमां अे 'सहूआला' एवा नामे उल्लेख पाम्युं छे. प्रकाशित प्रतिमालेख-सङ्ग्रहो जोईए तो आवा अनेक उल्लेखो मळी आवे.

प्रस्तुत कृतिनुं सम्पादन श्रीनेमि-विज्ञान-कस्तूरसूरि जैन ज्ञानमन्दिर-सूरतनी हस्तप्रतिना आधारे करवामां आव्युं छे. प्रत आपवा बदल भण्डारना व्यवस्थापकश्रीना आभारी छीए.

॥ श्री सोपारा विज्ञप्तिका ॥

र्हंनमः ।

॥ꣳ०॥

कूंकणदेसि नयर सोपारउं, सयल महीतलि दीसइ सारउं,
धारउं हीआ मझारि,
नाभिराय मरुदेवीनन्दन, आदिदेव तिहुयणजणमण्डण,
गुण गाउं संसारे, १

सारउं देव सविहुं देहरासर, नाभिरायकुलकमलदिवायर,
छहि दरिसण आधारो,
सेत्तुंज तीरथु तणीय तलहटी[1], दुकिय[2] कंकंम(कम्म) सवि मारगि खेटीय,[3]
भेटीय नाभिमल्हारो, २

सरगजमलि[4] सोपारउं पाटण, तिहुयणलोअ नयनआनन्दण,
अठसठि तीरथ ठाम,
तेरसइं आणू जिहां सरोवर, वावि-कूवानइं गढ-मढ-मन्दिर,
तरुभर मनविश्राम, ३

सोवन केतकि सोवन सालिं, दीसइं कदली विविध रसालिइं,
नालिकेरफलमालि,
अम्बा-जाम्बू-फणसु विशाल, हारहरा[5] करमदी रसाल,
ताल तमालहं ताल, ४

नागवेलि नवरङ्ग सोपारी, एला-लवङ्ग वस्तु सवि सारी,
बीजउरी आराम,
चम्पक-जाइ-जूहिअ-मचकुन्द, बकुल-वेल-वालउ-आकन्द,[6]
चन्दनतरु अभिराम, ५

अगर पगर[7] कप्पूर महातरु, जलि जलि पञ्चवन्न कमलाकर,
भासुर कान्ति सम्भारो.

तीरथवर सोपारउं जाणउं, महातीरथनुं अधिक वखाणु,
भविअण मन आधारो, ६

विषम नदी विषमा आघाट, विषमा पर्वत विषमी वाट,
विषमाभरण सम्भारो,
समुद्रतीरि जातां उल्हास, धामिणि[९] कामिणि खेलइं रास,
भास गाइं गुणसार ७

कहि[१] नाचइं कहि गाइं वाइं, इसी परि प्रभु मारगि जाइं,
माइं हरख न अङ्गे,
दन्तउ[१०] रातउ वाहिणि बइसी, तत खिणि आविउ गामि **अगासी**,
भवियण नयण सुरङ्गे, ८

युगादीस नयणे जव दीठउ, दुकय कम्मसम्भव तव नीठिउ,
ऊबीठउ[११] संसारो,
सेत[१२] वानि लेपमय मूरति, जिणि दीठइं भाजइ मन आरति,
वारइ ति विसमीवार, ९

तउ मझ मन उल्हसिउं आणन्दिइं, भावपूरित भावि सुनिअ छन्दि,
वन्दिसु प्रभुपयकमलो,
भले फूलि **आदीसर** पूजइं, सयल मनोवाञ्छित तीहं[१३] पूजइं,
कीजइ मणूभव सफलो, १०

रास-भास-लकुटारसि[१४]-गीतिं, नादभेदि पूजइं ईणि रीतिइं
प्रीतिं धरी उछाहो,
कामिततीरथ **जीवितसामी**, वडइं पुण्य प्रभु दरिसण पामी,
धामी[१५] ध्याउ नाहो, ११

सिद्धिरमणि मुगताफलहारो, दुखदावानलजलदो सारो,
धारो सुहसम्भारो,
माय-ताय तूं गुरु आधारो, राखि[१६] राखि प्रभु एह सम्भारो,
तारि तारिजि अमारो, १२

महातीरथ **सोपारा** जामलि, अवर तीरथ नत्थी महिमण्डलि,
कलियुग ए जगदीस,
राजरिद्धि-सुररिद्धि न मागउं, एक चित्ति तुह नामिइं जागउं,
लागउं तुह पय सीस १३

मइं वीनविउ जीवितसामी, उपक्रम[१७] घणे चलह तुह पामी,
सामी जगदाधारो,
त्रिणि काल जे समरइं भाविइं, घरि बइठां हुइ जात्र स्वभाविइं,
आवइं सुखभण्डारो १४

॥ इति श्रीसोपारा विज्ञप्तिका ॥ शुभं भवतु ॥ श्रीः ॥ श्रीः ॥

उपा. श्रीगुणविनयजी गणि कृत
बे अप्रगट स्तुतिटीका

-सं. मुनिसुजसचन्द्र-सुयशचन्द्रविजयौ

भक्तिमार्गने पुष्ट करवा माटे पूर्वाचार्योए विविध प्रकारनां अनुष्ठानो आपणने बताड्यां छे. तेना मुख्य भेद द्रव्यपूजा अने भावपूजा. अहीं ए बे पूजा प्रकारमांथी प्रभुसन्मुख देवनन्दनस्वरूप भावपूजामां बोलाती ४ स्तुति (थोई)ना जोटारूप २ अप्रगट स्तुतिनी टीका जोईशुं ।

स्तुतिनुं स्वरूप :

अहिगयजिण पढमथुई, बीया सव्वाण तइअ नाणस्स ।
वेयावच्चगराणं, उवोअगत्थं चउत्थ थुई ॥१॥

चैत्यवन्दन भाष्यनी उपरोक्त गाथामां पूर्वाचार्य महर्षि स्तुतिरचनानुं बंधारण समजावे छे. सामान्यथी प्रथम स्तुति कर्ताना इष्टदेवनी, बीजी सर्व सामान्ये जिननी, त्रीजी श्रुतज्ञाननी अने चोथी वैयावच्च करनार देवी-देवतानी थाय छे.

कृति परिचय :

प्रस्तुत कृतिद्वयमां कविए पूर्वाचार्यमहर्षिनी उपरोक्त वात ध्यानमां राखी कृतिनी रचना करी छे. प्रथम कृतिमां इष्टदेवनी स्तुति करता कविए विविध तीर्थोना अधिपति जिनेश्वर परमात्मानी स्तुति करी छे. टीकाकारश्रीए अहिं स्तम्भनपार्श्वनाथ प्रभुनी स्तुतिटीका करता 'खरतरगगनाङ्गणमणिकरणि (किरण?) श्रीमदभयदेवसूरिप्रकटीकृतं' ए पद द्वारा नवाङ्गीवृत्तिकार श्रीअभयदेव-सूरिजीने पोताना गच्छना जणाववानो प्रयत्न कर्यो छे. जोके पुण्यविजयजी म. जेवा श्रेष्ठ विद्वानोना मते तो नवाङ्गीवृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरि म.सा. चन्द्रगच्छना ज छे. आ बाबतने पुष्ट करतो एक धातु प्रतिमानो अप्रगट लेख अहीं रजू कर्यो छे. जेमां पण अभयदेवसूरिजी माटे 'चन्द्रगच्छे नवाङ्गवृत्तिकार' ए विशेषण वापर्युं छे.

संवत् १२९१ वर्षे आसाढ वदि ८ शुक्रे श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० आसु

सुत पारि० कुंअरसिंहेन निज भगिनी तूदा श्रेयोर्थं बिम्बं कारितं प्रतिष्ठितं श्री चन्द्रगच्छे नवाङ्गवृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिसन्ताने श्रीमुनिचन्द्रसूरिभिः ॥ बीजी कृतिमां कविए अढी द्वीपमां रहेला भावार्हन्तोने नमस्कार कर्या छे. सामान्यजिनस्तुति ए रीते ओळखाती बीजी स्तुति करता कविए बन्ने कृतिमां शाश्वत अने अशाश्वत जिननी स्तुति करी छे.

श्रुतनी आराधनारूप त्रीजी स्तुतिमां कविए परमात्मानी वाणीनी अद्‌भुत स्तुति करी छे. प्रथम कृतिमां कविए द्वादशाङ्गीने नदीनी उपमा सुन्दर रीते घटावी छे. टीकाकारश्रीए पण दरेक पदना अर्थो एटलीज सुन्दर रीते रजू कर्या छे. तो बीजी कृतिमां कविए नैयायिकोना तेमज साङ्ख्यमतना उच्छेदन करनारा पद मूकी परमात्मानी वाणीने वखाणी छे. अहीं पण टीकाकारश्रीए व्याख्यामां तेटलीज सरळ रीते पदार्थो खोल्या छे.

जेमनी स्तुति करवाथी तेओ श्रीसंघना कार्योमां सदा सहाय करनारा थाय, उपद्रवो दूर करनारा थाय, शासननी शोभा वधारनारा थाय एवुं विशेष प्रयोजन छे तेवा देवी-देवताओनी स्तुति करता कवि प्रथम कृतिमां शुक्र, चन्द्र, रवि, ब्रह्मशान्ति, अम्बिका आदि देवी देवतानी स्तुति करे छे. ज्यारे बीजी कृतिमां वर्धमानस्वामीनी अधिष्ठायिका सिद्धायिका देवीनी स्तुति करे छे. एकंदरे मूळ अने टीका बन्ने विद्वद्‌वर्गने वांचवा लायक छे.

मूळकर्ता-टीकाकारनो परिचय :

मूळ कविना कर्त्ता कोण छे तेनी कृतिमां कशी ज नोंध नथी. परंतु कृतिना शब्दो ज कृति कोइ प्राचीन कर्तानी हशे तेवुं अनुमान करवा प्रेरे छे. टीकाकारश्री गुणविनयजी खरतरगच्छना एक समर्थ विद्वान छे. तेमणे प्रस्तुत स्तुतिनी टीका जिनचन्द्रसूरिनी प्रेरणाथी करी छे. तेम टीकाना मङ्गलाचरणमां जणाव्युं छे. नलदमयन्तीचम्पूकाव्य टीका जेवा केटलाय ग्रन्थोनुं तेमणे सर्जन कर्युं छे. तेमना विशेष परिचय माटे 'नलदमयन्ती चम्पू काव्य और गुणविनयजी एक अध्ययन' पुस्तक जोवा विद्वानोने विनंती.

प्रत परिचय :

लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृत विद्यामन्दिर ग्रन्थभण्डारमांथी प्राप्त थयेल ५ पत्रनी प्रस्तुत प्रत भेट विभाग नं. ३४७९नी छे. लेखनशैली जोता प्रायः १७मी शताब्धि आसपासनी ज हशे एम अनुमान थाय छे. पत्रनी

वच्चे सुशोभन छे. लेखन दोषो छे. परंतु अन्य प्रत न मळे त्यां सुधी एक ज आधारभूत प्रत छे.

(१)

अर्हं नमः **ऐँ नमः**

॥ ए ६० ॥

श्रीशत्रुञ्जयमुख्यतीर्थतिलकं, श्रीनाभिराजाङ्गजं,
नेमिं रैवतदैवतं जिनपतिं, चन्द्रप्रभं पत्तने ।
तारङ्गेऽप्यजितं जिनं भृगुपुरे, श्रीसुव्रतं स्तम्भने,
श्रीपार्श्वं प्रणमामि सत्यनगरे, श्रीवर्धमानं त्रिधा ॥१॥

श्रीमद्युगप्रधानश्री-**जिनचन्द्र**गुरोर्गिरा ।
स्तुतीनां विदधे व्याख्या, सूत्रादर्शानुसारतः ॥१॥

व्याख्या : अहं **श्रीनाभिराजाङ्गजं** - श्रीनाभिभूपपुत्रम्, **त्रिधा**-मनोवाक्कायैः, **प्रणमामि** -नमस्करोमि । किंभूतम् ? **श्रीशत्रुञ्जयमुख्यतीर्थतिलकं**-श्रीशत्रुञ्जयः-पुण्डरीकगिरिरेव, मुख्यं-प्रधानम्, तीर्थं-अन्यतीर्थेभ्योऽस्य प्रधानत्वम्, यदत्र भावत आरूढानां नरकतिर्यग्गतिविच्छेदश्रवणात्, बहूनां मुनीनां सिद्धिप्राप्तेः, बहुश ऋषभदेवस्पृष्टत्वाच्च, तत्र तिलक इव-विशेषक इव विभूषकत्वात्, तम् । तथा **नेमिं** प्रणमामि । किंभूतम् ? **रैवतदैवतं**-रैवतस्य-उज्जयन्तस्य, दैवतं-देवं तत्र हारितद्विहारस्य विद्यमानत्वात् । तथा **चन्द्रप्रभं जिनपतिं पत्तने**-देवकपत्तने प्रणमामि । तथा **तारङ्गेऽपि अजितं** द्वितीयं जिनं प्रणमामि । तथा **भृगुपुरे**-भृगुकच्छे, **श्रीसुव्रतं**-श्रीसुव्रतस्वामिनं विंशं जिनं प्रणमामि । तथा **स्तम्भने श्रीपार्श्वं** खरतरगणगगनाङ्गमणिकरणि(किरण)श्रीमद**भयदेवसूरि**-प्रकटीकृतं प्रणमामि । तथा **सत्यनगरे** सत्यपुर्याम्, **श्रीवर्धमानं**-श्रीमहावीरं प्रणमामि ॥१॥

वन्देऽनुत्तरकल्पतल्पभवन-ग्रैवेयकव्यन्तर-
ज्योतिष्कामरमन्दराद्रिवसतींस्तीर्थङ्करानादरात् ।
जम्बू-पुष्कर-धातकीषु रुचके, नन्दीश्वरे कुण्डले,
ये चाऽन्येऽपि जिना नमामि सततं,तान् कृत्रिमाऽकृत्रिमान् ॥२॥

व्याख्या : अहं **आदरात्**-मनोभिलाषात्, **तीर्थङ्करान्**-जिनान् **वन्दे** । किं भूतान् ? न विद्यते उत्तरा येभ्यस्ते **अनुत्तराः**-विजयादयः । तथा इन्द्रादिदशया कल्पनात् कल्पः समुदायसन्निवेशो विमानमात्रपृथ्वीप्रस्तारः, तत्र तल्पं-उत्पत्ति शय्या येषां ते **कल्पतल्पाः**-द्वादशकल्पवासिनः । तथा '**भवन**' पदेन पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् भवनपतयः, भामा सत्यभामेतिवत् । तथा **ग्रैवेयकाः**-चतुर्दशरज्वात्मकलोकपुरुषस्य ग्रीवाप्रदेशविनिविष्टाः ग्रीवाभरणभूताः ग्रैवेयकाः, तद्वासिनो देवा अपि ग्रैवेयकाः । तथा विविधेषु शैलकन्दरान्तरवनविवरादिषु प्रतिवसन्तीति **व्यन्तराः**, पिशाचादयोऽष्टौ । तथा **ज्योतिष्काः** । ततो द्वन्द्वः, ते च ते **अमराश्च**-देवाः, आधाराऽऽधेययोरभेदोपचारात् तन्निवासस्थानानि । तथा **मन्दराद्रिश्च** मेरुः, तत्र **वसतिः**-निवासो येषां ते, तान् । तथा **जम्बिवति**-जम्बूद्वीपम्, **पुष्करेति**-पुष्करार्धम्, **धातकीति**-धातकीखण्डम्, ततो द्वन्द्वः,तासु। तथा रुचके-त्रयोदशे द्वीपे । तथा **नन्दीश्वरे**-नन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनभवन-मण्डिते। तथा **कुण्डले**-कुण्डलगिरौ-चक्रवालपर्वते । **चः** समुच्चये । ये **अन्ये**ऽपि **जिनाः**-तीर्थकृतः, **तान् कृत्रिमाऽकृत्रिमान्**-शाश्वताऽशाश्वतान्, **जिनान्**-स्थापनार्हतः, **सततं**-निरन्तरं **नमामि** । तत्र रुचकादिषु शाश्वतान्येव जिनबिम्बानि, जम्ब्वादिषु चाऽशाश्वतान्यपि तेन कृत्रिमादि युक्तम् ॥२॥

श्रीमद्वीरजिनास्यपद्महृदतो निर्गत्य तं गौतमं,
गङ्गावर्तनमेत्य या च बिभिदे मिथ्यात्ववैताढ्यकम् ।
उत्पत्ति-स्थिति-संहृतित्रिपथगा ज्ञानाऽम्बुधावध्वगा,
सा मे कर्ममलं हरत्वविकलं श्रीद्वादशाङ्गी नदी ॥३॥

व्याख्या : **सा श्रीद्वादशाङ्गी**-द्वादशानामाचारादीनामङ्गानां समाहारो द्वादशाङ्गी,श्रिया-ज्ञानलक्ष्म्या युक्ता द्वादशाङ्गी श्रीद्वादशाङ्गी । **नदी**-सरित् । अत्र त्रिपथगेति विशेषणात् गङ्गेति लभ्यते । प्रौढविशेषणादनुक्तेऽपि विशेष्ये विशेष्यप्रतिपत्तिः, पथा ध्यानैकतानमनसो विगतप्रचाराः पश्यन्ति यं कमपि निर्मलमद्वितीयमित्यत्र ध्यानैकतानमनसो विगतप्रचारा इति प्रौढविशेषणसामर्थ्याद्योगिन इति विशेष्यस्या-ऽनुक्तस्याऽपि प्रतिपत्तिः । **मे**-मम । **अविकलं**-अन्यूनं-समस्तम् । **कर्ममलं**-कर्माण्येव मलः-पापम्, तम् । ''मलस्त्वघे, किट्टे कदर्ये विष्ठायाम्'' [द्विस्वरकाण्ड श्लो. ४९४] इत्यनेकार्थः । **हरतु**-स्फेटयतु यत्तदोर्नित्याऽभिसन्धान्धात् । **या**

श्रीमद्वीरजिनास्यपद्महृदतः-श्रीमद्वीरजिनस्य-श्रीमद्वर्धमानस्वामिनः आस्यं-मुखमेव पद्महृदः-हिमवद्गिरिमध्यवर्ती ह्रदविशेषः, तस्मात् । पञ्चम्यास्तसिल् [पाणिनी० ५।३।७] ह्रदिकसंयोगे पुरः स्थिते पादादावपि लघोर्गुरुत्वाभावः । यथा-

तव ह्रियाऽपह्रियो मम ह्रीरभू-च्छशिगृहेऽपि द्रुतं न धृता ततः ।
बहुलभ्रामरमेचकतामसं, मम प्रिये क्व समेष्यति तत्पुनः ॥१॥ [ ]

इतिवदत्र ह्रयोगे पूर्वस्य लघुता बोध्या । क्वचिन्नदत इति पाठस्तत्र न कोऽपि शङ्कापिशाचिकाऽवकाशः । **निर्गत्य**-निःसृत्य । तं **गौतमं**-गौतम-गोत्रीयं इन्द्रभूतिम् । **गङ्गावर्तनं**-गङ्गावर्तननामकं कूटम् । **एत्य**-प्राप्य । **मिथ्यात्ववैताढ्यकं**-मिथ्यात्वं-तत्त्वाऽश्रद्धानमेव वैताढ्यं-वैताढ्यनामा गिरिः, तम्, स्वार्थे कः, मिथ्यात्ववैताढ्यकम् । **बिभिदे** - अभिनत् । भिदृंपी विदारणे, उभयपदी [धातुपारायण-६/५] । यदुक्तं **श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्याम्** - ''कहि णं भंते जंबूदीवे दीवे चुल्लहिमवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते । गोयमा ! हेमवयस्स वासस्स दाहिणेणं भरहस्स वासस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं इत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे चुल्लहिमवंते नामं वासहरपव्वए पण्णत्ते । पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुडे पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे एगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं पणवीसं जोयणाइं उव्वेहेणं एगं जोयणसहस्सं बावण्णं च जोयणाइं दुवालस य एगूणवीसइमे भाए जोयणस्स विक्कंभेण[१]..... [सूत्र. ७२]

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए इत्थ णं एगे महं पउमद्दहे णामं दहे पण्णत्ते-पाईणपडीणयाए उदीणदाहिणविच्छिण्णे इक्कं जोयणसहस्सं आयामेणं पञ्च जोयणसयाइं विखंभेणं दस जोयणाइं उव्वेहेणं
.....[सूत्र ७३]

तस्स णं पउमदहस्स पुरत्थिमिल्लेणं तोरणेणं गंगा महानई पवूढा समाणी पुरत्थाभिमुही पञ्च जोयणसयाइं पच्चएणं गंता गंगावत्तणकूडे आवत्ता समा पञ्च तेवीसे जोयणसए तिण्णि य एगूणवीसइमे भाए जोयणस्स दाहिणाभिमुही

१. टीकाकारश्रीअे सूत्रनो अमुक ज भाग अहीं साक्षीपाठ तरीके मुक्यो छे. अमोए पण ते सूत्रना नंबर साथे तेटलो ज पाठ उतार्यो छे. आधार आगम सुत्ताणि-मुनि दीपरत्नसागरजी.

पव्वएणं गंता महया घडमुहपवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेगपवाएणं पयडइ गंगा महानई जओ पवडइ [इत्थ णं..... पवडइ]इत्थ णं महं एगे गंगप्पवायकुंडे नाम कुंडे पण्णत्ते [सट्ठिं जोयणाइं....नामधेज्जे पण्णत्ते] तस्स णं गंगप्पवायकुंडस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं गंगा महानई पवूढा समाणी उत्तरड्ढभरहवासं पज्जेमाणी पज्जेमाणी सत्तहिं सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी आपूरेमाणी अहे खण्डप्पवायगुहाए वेयड्ढपव्वयं दालइत्ता दाहिणड्ढभरहवासं पज्जेमाणी पज्जेमाणी दाहिणड्ढभरहवासस्स बहुमज्झदेसभागं गंता पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी चउदसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइत्ता पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ.... [सूत्र. ९४] ॥ किंभूता द्वादशाङ्गी नदी ? **उत्पत्तिस्थितिसंहृतित्रिपथगा**-उत्पत्तिश्च स्थितिश्च संहृतिश्च उत्पत्तिस्थितिसंहृतय: । उपण्णे वा विगमे वा [धुवे वा] इत्यागमवचन-श्रवणात् । उत्पाद: केवलो नास्ति, स्थिति-विगमरहितत्वात्, कूर्मरोमवत् । तथा विनाश: केवलो नास्ति, स्थित्युपप(त्प)त्ति-रहितत्वात्, तद्वत् । एवं स्थिति: केवला नास्ति, विनाशोत्पादशून्यत्वात्, तद्वदेव । इत्यन्योन्यापेक्षाणामुत्पादादीनां वस्तुनि सत्त्वं प्रतिपत्तव्यम् । तथा च कथं नैकं त्र्यात्मकम्, यदूचे –

प्रध्वस्ते कलशे शुशोच तनया मौलौ समुत्पादिते,
पुत्र: प्रीतिमुवाह कामपि नृप: शिश्राय मध्यस्थताम् ।
पूर्वाकारपरिक्षयस्तदपराकारोदयस्तद्द्वया-
धारश्चैक इति स्थितिं(तं) त्रयमयं, तत्त्वं तथाप्रत्ययात् ॥१॥
[स्याद्वादमुक्तावली, श्लो. १८]

ता:, एवं त्रिपथं-त्रयाणां पथां समाहारस्त्रिपथम् । 'ऋक्यूरब्भू: पथामानक्षे' [पाणिनी० ५।४।७४] इति अप्रत्यय: समासान्त:, तद् गच्छति प्राप्नोतीति उत्पत्तिस्थितिसंहृतित्रिपथगा । अन्याऽपि प्रथमं वामनावतारोर्ध्वचरणक्षेपो-परितनब्रह्माण्डकटाहनखाघातस्फोटननि:सृतब्रह्मजलानन्तरधातृकमण्डलुजल रूपधर्मवामनचरणप्रवाहीभूतगङ्गा श्रीमहादेवेन धृता । सा च भगीरथप्रार्थनया श्रीमहादेवेन जटाया: सकाशात् स्वर्गमार्गेण हिमाचलमागता मुक्ता, जह्नुना नृपेण पाता, तमो जङ्घामार्गेण मुक्ता, सा च काश्यादौ हरिद्वारादौ च स्थिता । स्वर्गे मन्दाकिनी, अत्र जाह्नवी, पाताले भोगवतीति त्रिपथगा भवत्येव । तथा या **ज्ञानाम्बुधौ**-ज्ञानसमुद्रे, अध्वगेवाध्वनीनेव **अध्वगा** ज्ञानसमुद्रं प्राप्तेत्यर्थ: । अन्याऽपि

गङ्गा समुद्रगामिनी भवतीति छायार्थः ॥३॥

शक्रश्चन्द्ररवी ग्रहाश्च धरणेन्द्रब्रह्मशान्त्यम्बिका,
दिक्पालाश्च कपर्दिगोमुखगणाश्चक्रेश्वरी भारती ।
येऽन्ये ज्ञानतपःक्रियाव्रतविधिश्रीतीर्थयात्रादिषु,
श्रीसङ्घे सुतरां चतुर्विधसुरास्ते सन्तु भद्रङ्कराः ॥४॥

व्याख्या : **शक्रः**-इन्द्रः, **चन्द्ररवी**-शशिभास्करौ, **ग्रहाः**-मङ्गलाद्याः, **चः** समुच्चये, **धरणेन्द्रब्रह्मशान्त्यम्बिकाः**-धरणेन्द्रश्च भुजगपतिः, ब्रह्मशान्तिश्च अम्बिका च, ताः । तथा **दिक्पालाः**-दिगीशाः, सोमयमवरुणकुबेराः, **च**-पुनः, **कपर्दि गोमुखगणाः**-कपर्दिश्च-श्रीशत्रुञ्जयाधिष्ठाता, गोमुखश्च गणाश्च-तदनुचराणां समूहाः अभीच्यादयो वा । तथा **चक्रेश्वरी भारती** - सरस्वती । तथा **ये अन्येऽपि** शब्दाध्याहारादपरेऽपि **चतुर्विधसुराश्च**तुर्निकायवासिदेवाः सन्ति **ते सङ्घे सुतरां**-अतिशयेन **ज्ञानतपःक्रियाव्रतविधिश्रीतीर्थयात्रादिषु**-ज्ञानं च-शास्त्राऽधिगमः, तपश्च षष्टाष्टमादि, क्रिया च साधुकरणीयम्, व्रतविधिश्च देशसर्वविरतिविधानम्, श्रीतीर्थयात्रा च शत्रुञ्जयादितीर्थनमस्करणप्रवृत्तिः, ता आदौ येषाम्, जिनशासनोद्योतविधीनाम्, ते तथा तेषु, **भद्रङ्करः**-कल्याणकारिणः **सन्तु**-भवन्तु ॥४॥

(२)

अर्हं नमः **ऐँ नमः**

द्वीपे जम्ब्वाह्वये ये जितमदनबला केवलालोकभाजो,
द्वीपे ये च द्वितीये सुखमयविषये पुष्करार्धे तथा ये,
भावार्हन्तो जयेयुः समवसरणगाः धर्मरत्नं दिशन्त-
स्तेभ्यो भूयादजस्त्रं त्रिकरणविहितो मामकीनः प्रणामः ॥१॥

व्याख्या : **तेभ्यः**-जिनेभ्यः, **मामकीनः**-ममाऽयं मामकीनः, 'तवकममकावेकवचने' [पाणिनी० ४।३।३] इति अस्मदः खञ् । **त्रिकरणविहितः**-वाग्मनःकायजनितः, **प्रणामः**-नमस्कारः, **अजस्त्रं**-निरन्तरम्, जसु(च)मोक्षणे [धातुपारायण ३/८०] नञ्पूर्वः नञिकपीति रः(?), **भूयात्**-भवतु । तेभ्य इति यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धात् **ये जम्ब्वाह्वये द्वीपे**-जम्बूद्वीपे, **भावार्हन्तः**-भावजिनाः, जयेयुः-सर्वोत्कर्षेण वर्त्तेरन्, अतीताऽनागतानामपि भावार्हत्त्वकल्पनयैव वन्द्यत्वम्, एते च साक्षाद् भावार्हन्तस्ततः किं वाच्यम् ? । किंभूताः ? **ये जितमदनबलाः**-जितं-

पराभूतम्, मदनबलं-कामसैन्यं यैस्ते । तथा केवलालोकं-केवलज्ञानं भजन्तीति **केवलालोकभाजः**-केवलिनः । चः समुच्चये । **ये द्वितीये द्वीपे**-धातकीखण्डे भावार्हन्तो जयेयुः । किंभूते द्वीपे ? **सुखमयविषये**-सुखमयाः-सुखप्रचुराः, प्राचुर्ये मयट् । विषयाः-देशा यस्मिंस्तत्, तस्मिन् । तथा **पुष्करार्धे**-इतस्तृतीये द्वीपे भावार्हन्तो जयेयुः । किंभूताः ? **ये समवसरणगाः**-समवसरणं-द्वादशपर्षदवस्थानभूमिः, तद् गच्छन्ति-प्राप्नुवन्तीति समवसरणगाः समवसरण-मध्यस्थिताः ।

नामजिणा जिणनामा, ठवणजिणा पुण जिणिंदपडिमाओ ।
दव्वजिणा जिणजीवा, भावजिणा समवसरणत्था ॥[चैत्यवन्दनकभाष्य गा. ५१]
अत एव । किं कुर्वन्तः ? धर्मरत्नं-धर्माणां मध्ये यो रत्नमिव वर्तते जिनप्रणीतो देशविरति-सर्वविरतिरूपो धर्मस्तद् धर्मरत्नम्,तत् दिशन्तः ददानाः ॥१।

पाताले श्रीविशाले भवनपतिसुधान्धोनिवासान्तराले,
तिर्यग् द्वीपेषु ताराग्रहवनगिरिषु व्यन्तराणां पुरेषु ।
ऊर्ध्वं वैमानिकानां निरुपमगृहगाः स्थापनार्हत्समूहाः,
विद्यन्तेऽनेकधा ये त्रिभुवनतिलकास्तान्नमस्कुर्महेऽत्र ॥२॥

व्याख्या : **तान्**-जिनान् वयं **अत्र**-चैत्यवन्दनाधिकारे **नमस्कुर्महे**-प्रणामः, 'नमस्पुरसोर्गत्योः' [ ] इति विसर्गस्य सः । अथ स्थाननियमनायाऽऽह — यत्तदोर्नित्ययोगात् **ये पाताले**-अधोलोके, सुधैव अन्धः-भोज्यं येषां ते सुधान्धसः-देवाः, भवनपतय एव सुधान्धसो **भवनपतिसुधान्धसः**, तेषां ये **निवासाः**-निवासस्थानानि, तेषा**मन्तराले**-मध्ये **स्थापनार्हत्समूहाः**-स्थापनाजिनवृन्दानि शाश्वतानि-ऋषभवर्धमानचन्द्राननवारिषेणनाम्ना **अनेकधा**-अनेकप्रकारेण **विद्यन्ते** 'सगकोडि-बिसयरिलक्ख ७७२००००० भवणेसु' [शाश्वतचैत्यस्तव-देवेन्द्रसूरि] इति वचनात् । किंभूते पाताले ? **श्रीविशाले**-श्रिया-जिनगृहलक्ष्म्या, विशाले-विस्तीर्णे । तथा ये **तिर्यक्द्वीपेषु**-तिर्यक्-क्षेत्रवर्तिनन्दीश्वरादिद्वीपेषु 'बावन्ना नंदीसरवरंमि, चउचउर कुंडले रुअगे' [शाश्वतचैत्यस्तव-देवेन्द्रसूरि श्लो. २] इत्यागमोक्तेषु स्थापनार्हत्समूहाः विद्यन्ते । तथा ये **ताराग्रहवनगिरिषु**-ताराग्रहपदेन सकलज्योतिष्कोपलक्षणम्, तेन चन्द्रार्कनक्षत्रतारास्विति ध्येयम्, 'जोइवणेसु असंखा [शाश्वतचैत्यस्तव देवेन्द्रसूरि श्लो. १] इत्युक्तेः ताराश्च ग्रहाश्च वनानि च-

नन्दनवनादीनि 'मेरुवणि असीइ' [शाश्वतचैत्यस्तव देवेन्द्रसूरि श्लो. १४] इति वचनात् । गिरयश्च वक्षस्कारादयः 'वक्खारेसु असीइ' [शाश्वत चैत्यस्तव-देवेन्द्रसूरि श्लो. १४] इति वचनात् । तेषु स्थापनार्हन्तो विद्यन्ते । तथा ये व्यन्तराणां पुरेषु 'जोइवणेसु असंख्या' [शाश्वतचैत्यस्तव-देवेन्द्रसूरि श्लो. १] इत्युक्तेः स्थापनाजिनाः सन्ति । तथा ये **ऊर्ध्वं**-ऊर्ध्वलोके, **वैमानिकानां**-विमानवासिदेवानां **निरुपमगृहगाः**-असमानविमानस्थिताः स्थापनार्हत्समूहा विद्यन्ते। 'चुलसीलक्ख-सगनवइसहस्स तेवीसु ८४९७०२३ वरिलोए' [शाश्वतचैत्यस्तव-देवेन्द्रसूरि श्लो. १२] इति वचनात् । किंभूताः स्थापनार्हन्तः ? **त्रिभुवनतिलकाः**-त्रिभुवने-विष्टपे तिलका इव शोभाकारित्वात् ये, ते तथा ।

कृत्स्नं यत्राऽस्ति वस्तु प्रणिगदितमिदं द्रव्यपर्यायरूपं,
ज्ञानं स्वान्यप्रकाशि प्रदलितसकलादीनवाचं प्रमाणम् ।
कर्ता भोक्ता प्रमाता चतसृषु गतिषूत्पत्तिमांश्चित्स्वरूपं,
श्रीसिद्धान्तं नितान्तं जिनपतिगदितं तं भजामः स्मरामः ॥३॥

व्याख्या : **श्रीसिद्धान्तं**-श्रीजिनागमं 'वयम्' इत्यनुक्तोऽप्यस्मत्प्रयोगोऽध्येयः, **नितान्तं**-अतिशयेन, **भजामः**-अपूर्वाऽध्ययनेन सेवामहे, शास्त्राध्ययनमेव सेवा। तथा **स्मरामः**-स्मृतिविषयीकुर्मः, एतेनाऽधीतस्य शास्त्रस्य चिरस्थायित्वं स्मरणेनैव भवतीति ध्वनितम् । किंविशिष्टं जिनसिद्धान्तम् ? **जिनपतिगदितं**-जिनपतिना-सर्वज्ञेन, प्रणिगदितं-अर्थतः प्रणीतम्, सकलज्ञानावरणविलयोत्थाविकल-केवलालोकेन सकललोकालोकादिवस्तुवेत्तृत्वात् सर्वज्ञस्येति, तत्प्रणीतः सिद्धान्तः प्रमाणमेव भवतीति ज्ञापितम्, अथवा जिनाः-श्रुतकेवलिनः, तेषां पतिः-स्वामी, सुधर्मा पञ्चमगणधरः,तेनाऽऽत्मागमतः सूत्रतः प्रणीतत्वात् । पुनः किंविशिष्टम् ? **चित्स्वरूपं**-ज्ञानस्वरूपम् । द्रव्यश्रुतस्योपयोगरूपभावश्रुतकारणत्वात् कारणे कार्योपचारात् उपयोगात्मकत्वं सिद्धान्तस्य सिद्धम् । अथ तच्छब्दयच्छब्दमपेक्षते [?] इति वचनात् । **यत्रे**ति निर्दिशति - **यत्र** श्रीसिद्धान्ते, **कृत्स्नं**-समग्रम्, **इदं**-सर्वतत्त्ववित्प्रत्यक्षम्, **द्रव्यपर्यायरूपं** तत्र गुणानामाश्रयो द्रव्यम्, 'गुणाणमासओ दव्व'मिति वचनात् [संग्रहशतक श्लो. ३५] गुणः सहभावी धर्मः, यथाऽऽत्मनि विज्ञानव्यक्तिशक्त्यादिरिति, पर्यायश्च क्रमभावी, यथा तत्रैव सुखदुःखादिरिति । द्रव्याणि च पर्यायाश्च, तद्रूपं-तत्स्वभावं तदात्मकमिति यावत्। **वस्तु**-

अनन्तधर्मात्मकम्, **प्रणिगदितं**-प्ररूपितम्, **अस्ति**-विद्यते । च-पुनः । यत्र श्रीसिद्धान्ते **स्वान्यप्रकाशि**-स्वं आत्मा, ज्ञानस्य स्वरूपं अन्यः स्वस्मादपरोऽर्थ इति यावत्, तौ प्रकाशते-प्रकटीकरोतीत्येवं शीलः स्वान्यप्रकाशि, स्वपरव्यसायीति भावः । **ज्ञानं**-प्रमाणम्, प्रकर्षेण संशयाद्यभावस्य भावेन मीयते परिच्छिद्यते वस्तु येन तत् प्रमाणं प्रतिगदितम्, अत्र ज्ञानमिति विशेषणमज्ञानस्य व्यवहार-मार्गानवतारिणः सन्मात्रगोचरस्य स्वसमयसिद्धस्य दर्शनस्य सन्निकर्षादेश्चाऽचेतनस्य नैयायिकादिकल्पितस्य प्रामाण्यपराकरणार्थं । तत्र जैनानां मते द्वे प्रमाणे, प्रत्यक्ष-परोक्षलक्षणे ''यदुक्तम्'' ।

प्रत्यक्षं च परोक्षं च, द्वे प्रमाणे तथा मते ।
अनन्तधर्मकं वस्तु, प्रमाणविषयस्त्विह ॥१॥

[षड्दर्शन समुच्चय श्लो. २]

किंभूतं ज्ञानम् ? **प्रदलितसकलादीनवाचं**-प्रदलिताः-प्रध्वस्ताः, सकला **दीनवाचं**-कुवादिप्रथितनित्यानित्यत्वैकान्तवादादिदोषा येन तत् । तथा यत्र श्रीसिद्धान्ते **प्रमाता**-स्वपरव्यवसितिक्रियासाधकः, आत्मा । **कर्त्ता**-शुभाऽशुभकर्मणां मिथ्यात्वाऽविरतिकषाययोगैः कुलाल इव मृद्दण्ड-चक्रवीवरादिभिर्घटस्य कारकः । तथा **भोक्ता**-स्वकृतकर्मफलास्वादकः । अनेन साङ्ख्यमतमपाकृतम् । तेषां हि मते कर्त्री प्रकृतिरेव, तस्याः प्रकृतिस्वभावत्वात् । आत्मा पुनः प्रकृतेश्चतुर्विंशति-तत्त्वरूपायाः पृथग्भूतः अकर्त्ता विगुणो भोक्ता नित्यचिदभ्युपेतश्चेति । जैनमते यस्यैव कर्तृत्वं तस्यैव भोक्तृत्वमित्यावेदितम् । तथा **चतसृषु गतिषु**-सुरनरनरकतिर्यग्रूपासु, **उत्पत्तिमान्**-प्रस्तरिकर्त्ता(?) विभक्तिपरिणामात् प्रणिगदितः । यदुक्तम्-

देवो नेरइउत्ति य, कीड पयंगुत्ति माणुसो एसो ।
रूवस्सी य विरूवो, सुहभागी दुक्खभागी य ॥१॥
राउत्ति य दमगुत्ति य, एस सवागुत्ति एस वेयविऊ ।
सामी दासो पुज्जो, खलोत्ति अधणो धणवइत्ति ॥२॥
नवि इत्थ कोइ नियमो, सकम्म-विणिविट्ठसरिसकयचिट्ठो ।
अन्नुन्नरूववेसो, नडुव्व परिअत्तए जीवो ॥३॥

[उपदेशमाळा श्लो. ४५।४६।४७]

एतावता आत्मनो द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वम्, पर्यायार्थिकनयेन चाऽनित्यत्वं निवेदितम् ॥३॥

देवश्रीवर्धमानक्रमकमलयुगाऽऽराधनैकाग्रचित्ता,
या देवी दिव्यरूपा करतलविलसच्चक्रचापा विपापा ।
श्रीसर्वज्ञप्रणीतं सुकृतमनुपमं कुर्वतां प्राणभाजां,
विघ्नव्यूहं समन्ताद्दलयतु नितरामाशु सिद्धायिका सा ॥४॥

व्याख्या : **सा सिद्धायिका**-श्रीवीरशासनाधिष्ठात्री देवी, **आशु**-शीघ्रम्, **नितरां**-अतिशयेन, **समन्तात्**-समन्ततः, **प्राणभाजां**-प्राणिनाम्, **विघ्नव्यूहं**-अन्तरायसमवायम्, **दलयतु**-विभेदय-स्फेटयतु । दल(ण्)मि(वि)भेदे (विदारणे) धातुपारायणं-९/१८४) । किं कुर्वता प्राणभाजाम् ? **श्रीसर्वज्ञप्रणीतं**-श्रीमदर्हदुक्तम्, **अनुपमं**-असदृशम्, **सुकृतं**-पुण्यं **कुर्वताम्** । यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धात् या **देवश्रीवर्धमानक्रमकमलयुगाराधनैकाग्रचित्ता**-श्रीवर्धमानक्रमकमलयुगस्य-श्रीवीरचरणपद्मद्वन्द्वस्य, यदाराधनं-उपास्तिः, तत्रैकाग्रं-एकतानं चित्तं यस्याः सा । पुनः किंभूता ? **दिव्यरूपा**-दिव्यं-वल्गु, रूपं-आकारो यस्याः सा दिव्यरूपा, 'दिव्य वल्गु लवङ्गयोः' [द्विस्वरकाण्ड. श्लो. ३५७] इत्यनेकार्थः । पुनः किंभूताः ? **करतलविलसच्चक्रचापा**-करतलयोः-पाण्योः, विलसन्तौ-शोभमानौ, चक्रचापौ-चक्रधनुषी यस्याः । तथा **विपापा**-पापरहिता ॥४॥

श्रीमत्**यणहिल्लपत्तन**पुरे व्यधायि स्तुता स्तुतिव्याख्या ।
श्री**जयसोम**गुरूणां शिष्यै**र्गुणविनय**गणिभिरियम् ॥१॥

ठे. जैन धर्मशाला
पोलिस चोकी सामे,
पो. तलाजा तीर्थ ३६४१४०

श्रीभैरवचंद-कृत
श्रीटंकशालमध्ये श्रीश्रेयांसजिनचैत्यसम्बन्धः ।।

- विजयशीलचन्द्रसूरि

राजनगर ए अमदावादनुं जैनो द्वारा आपवामां आवेलुं नाम छे. त्यांना टंकशाल विस्तारमां शेठ हठीसिंह केसरीसिंहनां पत्नी शेठाणी हरकुंवर तथा तेमना पुत्र शेठ उमाभाईए. करावेला, श्रेयांसनाथ (११मा तीर्थंकर)ना देरासरना निर्माण तथा तेनी प्रतिष्ठानी विगत वर्णवतां आ ढाळियां छे. आम तो एक धार्मिक रचना मात्र छे, परन्तु तेमां केटलीक जाणवा योग्य अने ऐतिहासिक हकीकतो पण नोंधायेली होई, रसप्रद रचना छे.

सात ढाळ, १४६ कडी, १० दोहरा = १५६ कडीओमां आ रचना पथराई छे. आवी रचनाने 'रास' संज्ञा आपवाने बदले 'ढाळियां' तरीके ओळखवामां आवे छे. दा.त. शेठ मोतीशाहनां ढाळियां के शेठ हठीसिंहनां ढाळियां. कर्ताए आ रचनाने सातमी ढाळमां 'संघविलास' (कडी १५) तरीके अने पुष्पिकामां 'चैत्य सम्बन्ध' तरीके वर्णवेल छे.

देरासर सं. १९१५मां बन्युं छे; प्रतिष्ठा पण ते वर्षे थई छे; अने आ रचना पण ते ज वर्षनी छे, तेथी आंखे देख्या हेवाल जेवी आ रचना होई तेमां वर्णवायेली विगतो विश्वसनीय गणी शकाय तेवी छे. कर्ता पोतानो परिचय आ प्रमाणे आपे छे :

''धर्मघोषसूरिना गच्छमांथी, निकसी साखा सुराणो जी ।
दोलतचंद शीश मोतीचंद-शिष्य भैरवचंद जाणोजी ॥''

जैन संघना ८४ गच्छो पैकी एक गच्छ 'धर्मघोषगच्छ' पण हतो. ते गच्छनी यति-परम्परा २०मा शतक पर्यन्त चालु रही छे, तेवुं आ उपरथी प्रमाणित थाय छे. ते परम्पराना यति दोलतचंद, तेना शिष्य मोतीचंद, अने तेना शिष्य भैरवचंदे आ ढाळियां रच्यां छे. 'सुराणो' शब्द परथी ते गच्छनी 'सुराणा' शाखानी आ यति परम्परा हशे तेम लागे छे. कविनी भाषा गुजराती छे तेम जणाय. जोके हिन्दीना ने मारवाडीना शब्दो ते वापरे छे खरा. कवि

मूळे हिन्दीभाषी के मारवाडी होय तो बनवा जोग गणाय.

समग्र रचनामां आवती केटलीक विगतो नोंधीए :

१. राजनगरमां ते समये १०५ जैन मन्दिरो हतां. (दूहो ५). २. नगरमां विचरता जैन साधुओ पीत वस्त्रवाळां (संवेगी) तेमज श्वेतवस्त्रवाळां (यति)-बन्ने प्रकारना हता (दूहो ६). ३. नगर 'साबर' नदीना किनारे वसेलुं, अने तेना किनारे अनेक बाग तथा वाडी हतां (१/२-३).

४. अहम्मदाबादनो स्थापक अहमदशाह पादशाह हतो. ते पोतानी टंकशाळ क्यां करवी ते माटे जग्या शोधतो हतो, पण मन ठरतुं नहोतुं. तेने रात्रे पीरे स्वप्नमां 'टंकशाल'नी जमीन देखाडी, वखाणी. तेथी तेणे ते ठेकाणे टंकशालनी स्थापना करी. (१/५-६). ५. आ शहेरमां देरासरो घणां हतां, पण मोटा भागनां भूगर्भ-चैत्यो हतां; शिखरबद्ध नहि. (मुस्लिमो द्वारा ध्वंस थवानी बीके ते समये बहार देरासरनो देखाव करतां लोको डरतां) (१/७)

६. हठीसिंह शेठनी बे पत्नी. तेमां नानां पत्नी (कवि नाम लखता नथी)ना पुत्रनुं नाम उमाभाई. (१/११, २/२-३). उमाभाई पण बे हशे तेम जणाय छे (२/३-४). ७. मोतीशाह शेठे (तेमना पुत्रे), शत्रुंजय तीर्थे करावेल देरासरनी प्रतिष्ठा वखते, श्रेयांसनाथनी प्रतिमा भरावी; (ते प्रतिमा हठीसिंह शेठना नामे करावी होवानी सम्भावना छे). ते प्रतिमा राजनगरे लावीने परोणा(महेमान) गते फतासा पोळमां राखी (२/५-६, १०). ८. अहीं पण कविना कथन प्रमाणे शेठाणीने स्वप्नमां देव द्वारा संकेत मळे छे के 'टंकशालमां चैत्य बनावी तेमां आ भगवान स्थापजो.' (२/१३, ३/२). आ कथन कविनो कल्पनाविहार हशे के वास्तविक वर्णन, ते नक्की थवुं मुश्केल छे. शेठाणीने ज टंकशालमां करावववानो मनोरथ होय तो बनवाजोग छे. ९. टंकशाल ए राजानी-राजसत्ता के सरकारनी कचेरीओ के रहेठाणनो भाग हशे ते पण अहीं जाणवा मळे छे (३/३). १०. आ समय कम्पनी सरकारना शासननो छे. तेथी विलायत कम्पनी सरकारमां अरजी करी हशे, तेना जवाबमां कम्पनी सरकारे देरासर माटे उमाभाईने जमीन फाळववानो स्थानिक वहीवटकारने आदेश मोकल्यो हशे, तेम पण जणाय छे. (३/११-१२-१३-१४-१५).

११. संवत् १९१५ना वैशाख सुदि सातमे पञ्चशिखरी जिनालयनुं खातमुहूर्त थयुं. (३/१७-१८-१९). १२. देरासरनी आजुबाजुनो परिचय : दक्षिणे कन्याशाळा छे, जेमां नगरनी बालिकाओ भणे छे. तेना प्रवेशभागे सरस वाडी (बगीचो) अने तेनी मध्यमां फुवारो छे. शाळानी आसपास रुद्रयक्षनुं देरुं तथा पीरनी मजार छे. (३/२३-२४-२५).

१३. अषाड वद ९ थी प्रतिष्ठा शरु थाय छे (५/३), अने बहारनी वाडीए जलयात्रा माटे जाय छे (५/५). भगवानने टंकशाले लावे छे, त्यारे पहेलां पोताना बंगलामां भगवाननी पधरामणी करावे छे (५/१६). १४. उमाभाईनां पत्नी प्रधान वहु (६/२) पोंखणां करे छे. श्रावण शुदि सातमे प्रतिष्ठा करी, अने शुदि तेरशे अष्टोत्तरी स्नात्र तेमज धारावाडी करी छे (६/३-४-५-६, ११).

१५. आ पछी शेठाणीने भाव थतां अक्षयनिधि तप करे छे अने तेमनी साथे ३२० बहेनो पण ते तप आदरे छे (७/२-३). तेनी क्रियादिनुं वर्णन घणुं मजानुं छे. खास तो तेनो वरघोडो नीकल्यो त्यारे मेघे महेर करीने वरसाद पड्यो तेनुं वर्णन घणुं मजानुं छे (७/१६-१७).

१६. तपगच्छना गच्छपति श्रीपूज्य विजयदेवेन्द्रसूरि ते वर्षे राजनगरमां छे, अने तेमनी निश्रामां प्रतिष्ठा तथा तपस्या थयानो पण निर्देश जडे छे (७/२०-२१). १७. शेठाणीने बीजुं मोटुं देरुं बंधाववानो, ९९ यात्रा करवानो, ४५ आगमनुं तप ने ऊजमणुं करवानो मनोरथ हतो तेवुं पण कवि वर्णवे छे (८/८-९).

आ तो थई हकीकतो. कल्पनानो विहार पण कवि यथाशक्ति सरस करतां जणाय छे. पहेली ज ढाळमां शेठाणीनी उदारतानुं वर्णन करतां कवि एक नवतर रूपक प्रयोजे छे : मेरुपर्वत ऊपर दश जातिनां कल्पवृक्षो भेगां मळीने विचारे छे के बळ्युं, आ मेरु ऊपर आम ने आम, कोईने कांई आप्या विना पड्या रहेवुं एमां आपणो समय नकामो जाय छे ! आपणने आपवुं ज बहु गमे. आम, अहीं व्यर्थ जीवन गुजारवामां शी मजा ? अने ए दशे कल्पवृक्ष मळीने झंपापात करी आपघात करे छे, अने त्यांथी मरीने हरकुंअर शेठाणीना बे हाथनी १० आंगळी तरीके अवतरे छे. तेने लीधे ज आ शेठाणी रात-

दहाडो दान दीधां ज करे छे ! (१/१३-१७). केवी सरस कल्पना !

सं. १९१५मां रचायेल आ रचनानी सं. १९१६मां लखायेली प्रतिनी जेरोक्सना आधारे आ सम्पादन थयुं छे, एक स्थाने अर्धी कडी तूटी छे, बाकी आखी कृति अखण्ड छे. श्रेयांसनाथनुं आ देरासर आजे पण टंकशाळमां विद्यमान छे अने शेठ उमाभाईना वंशजो द्वारा ज तेनुं संचालन थाय छे.

श्रीटंकशालमध्ये श्रीश्रेयांसजिनचैत्यसम्बन्धः ॥

श्रीश्रेयांसनाथाय नमः ॥

श्रीअर्हादिक पञ्च पद, बंदू बे कर जोड ।
नमतां निजगुरुचरणकज, पूगे वंछित कोड ॥१॥
शारदमात मया करी, शुद्ध अक्षर द्यो सार ।
संघतणां गुण गायवा, मुज मन थयुं ऊदार ॥२॥
सकलदेशमांहे शिरे, **गुज्जर** धर गुणगेह ।
सकल नयरी शिरशेहरो, **राजनयर** पुर एह ॥३॥
च्यार वरण करी शोभतो, नयरी मांही निवास ।
सहु धरमी धनवंत छे, विलसे लिलविलास ॥४॥
तस पूर श्रीजिनचैत्य वर, **ईक शत पञ्च** उदार ।
अमर-भुवनसम झलहले, वंदू वारंवार ॥५॥
गीतारथ गुणवंत तिहां, महामुनीश्वर जांन ।
पीत-श्वेत अंबरधरा, निवसे विहरत आंन ॥६॥
आर्या श्रावक श्राविका, चउविह संघ महंत ।
तास निवास थकी सदा, पुरनी शोभा अत्यंत ॥७॥

ढाल १ ली ॥ विमलाचल विमला प्राणी - ए देशी ॥

छे नयरी घाट सुघाट, भलां भुवन शोभे वली हाट ।
ते विच विचमां वरवाट, जे जोयानुं बहु ठाट ॥१॥
रसीला, राजनयर पुर सोहे, जस देखत हि मन मोहे ॥र०॥ आंकणी ॥

साबर नदी गुणगेहरी, जेहनी शुभ शीतल ल्हेरी ।
तस तट शोभा अधिकेरी, र० ।रा०॥२॥
वर बाग वाडी विश्राम, तस पुर निकटे ठांम ठांम ।
जेहथी शोभे अभिराम, ते नयरी महागुणधाम ॥र०।रा०॥३॥
तसू नृपति **बाहादस्या** जांणो, **अम्हंदस्यां** नाम वखाणो ।
चित्ते छे हर्ष भरांणो, शुचि भूमी जोवा सू निहाणो ॥र०।र०॥४॥
सहु नयरमां फिरी फिरी जोई, नृपने मन न गमी कोई ।
वारु छे **टंकशाल**नी भूइं, ते सकल गुणे छे विसोही ॥र०।रा०॥५॥
पीरे सुहणामां वखाणी, ए भूमी महागुणखाणी ।
तिहां शक्को पड्यो वर जाणी, तेहथी टंकशाल कहाणी ॥र०।रा०॥६॥
ते पुर जिनभुवन घनेरा, पिण भूमां चैत्य अधिकेरां ।
ते वंदू उट्ठ शवेरा, प्रभु मेरा करो सूल जेरा ॥र०।रा०॥७॥
ते नयरमांही बडभागी, श्रावकजन सर्व सोभागी ।
साचा शासनना रागी, वाकी पूंन्यदशा बहु जागी ॥र०।रा०॥८॥
तेहमां ईक **शाह निहाल**, तेहने सुत **चंद कुशाल** ।
तेहनो सुत गुणमणीमाल, **केशरीसींह** रूप रसाल ॥र०।रा०॥९॥
वर **सूरीजदे** तसु नारी, तेहने उर शोभा वधारी ।
हठीसिंह नाम मनूहारी, जिनशासनमां अधिकारी ॥र०।रा०॥१०॥
हठीसिंहनी उभयो नार्य, **हरकुंअर** सुगुण भंडार ।
पत्नी व्रत धर्मनी धार, छे अमरकुंमरीउं निहार ॥र०।रा०॥११॥
जसू सुंदर रूप सुचंग, पिण दानपणे दृढ रंग ।
निवश्यो जस अंगोअंग, जेहथी जशवास अभङ्ग ॥र०।रा०॥१२॥
कल्पतरुनी दशा(श)जात, मेरु गिर ऊपर विख्यात ।
सहु मिलि चिंति इम वात, ईहां काल निरर्थक जात ॥र०।रा०॥१३॥
आपणने घटे बहु देवो, वंछित दान सदैवो ।
लेनारनं एक हुं एवो, तो जीवत मृत्यु गिणेवो ॥र०।रा०॥१४॥
एवुं जाणी खादी झंपापात, चवी ऊपनां विश्वविख्यात ।
हरकुंअर शेठाणीने हात, दश पल्लव दश तरु जात ॥र०।रा०॥१५॥

निशि वासर वंछित दान, ईहां देस्यूं महागुणखाण ।
ते निवस्यां एवुं जांण, दश पल्लव दश तरु आण ॥र०।रा०॥१६॥
तेथी दातापणो खास, शेठाणीने हाथे उल्लास ।
पूओ पूरव पूंन्य विलास, कहे **भेरवचंद** विकास ॥र०।रा०॥१७॥

सोरट्ठा ॥

ते तो आठो जाम, तन मन वचन सू द्रव्यथी ।
साजें धर्मनुं काम, आगम अनुसारे करी ॥१॥

ढाल ॥ प्रभू पासनुं मूखडुं जोवा - ए देशी ॥

तूंमे सुणज्यो सुगुण सनेहा भलां पुन्यनी कारण एहा ।
हठीसींहनी पूर्व पून्याई सब शुद्ध मीली जोगवाई ॥ तुमे० ॥
ए आंकणी ॥१॥
लघु रामा अछे गुणखाणी, जिनी सुंदर मधुरी वाणी ।
तसु समकितमां दृढ रंग, तेहनी मति धर्ममां चंग ॥ तु० भ० ॥२॥
तन दान दयामां भीनो, जस मन जिनमतमां लयलीनो ।
हठीसींहनी गादी वखाणो, **उमाभाई शेठ** सुजाणो ॥ तु० भ० ॥३॥
हठीसींह थ कीनो प्रधानो, वली वृद्ध **उंमाभाई** जानो ।
हवे निसुणो एक चरित्र, सूंणतां थस्ये श्रवण पवित्र ॥ तु० भ० ॥४॥
मोतीस्हा प्रभु पधराया, तिणे केहिक बिंब भराया ।
विमलाचल गिरि पर सार, **श्रीयांस** त्रिजगदाधार ॥ तु० भ० ॥५॥
त्यांथी परुणागत आंणी, ठव्या **राजनयर** गुणखाणी ।
ते श्रीयांस जिणंदा नृप विष्णुतणे कुल चंद(दा) ॥ तु० भ० ॥६॥
माता विष्णुने उर अवतरीया, सींहपुर नयरे गुण भरीया ।
षडग लंछन प्रभु सोहे, ज्ञाने करी भवि पडिबोहे ॥ तु० भ० ॥७॥
आयु लख वर्ष चोरासी, परिशाटन प्रकृति पञ्चासी ।
सम्मेतशिखर जई सिद्धा, शिवनाथ थया सुप्रसीद्धा ॥ तु० भ० ॥८॥
तिहां ज्योतिमां समाई,ते वंदूं शीश नमाई ।
हिवे मेटो मेरा भवफेरा, स्वामी कीजे वेग नीवेरा ॥ तु० भ० ॥९॥

परुणागत थाप्या उच्छहे, **फत्तास्हानी पोल**मांहे ।
केई दिवस वतीता आंम, चिंते रक्षपालक ताम ॥ तु० भ० ॥१०॥
क्रीडा केलिकरणने उल्लासे, मनमां ईम देव विमासे ।
प्रभू ठववा जोवुं ठाम, निपजावी नवो जिनधाम ॥ तु० भ० ॥११॥
सहु नयरनी भूमि विलोकी, **टंकशाल** जोई निरदोषी ।
क्रीडा केलि इहां बहु थास्ये, तस कारक जोवे उल्लासे ॥ तु० भ० ॥१२॥
जोयुं नयरमां दानी जीव, **हरकुंअर शेठाणी**नो देव ।
रजनीमें सूहणे आयो, **चंद भेरव** देव उमाह्यो ॥ तु० भ० ॥१३॥

ढाल ३ ॥ जिम जिम ए गिरि भेटीये रे - ए देशी ॥

पून्य फले जगमां सदा रे, पून्ये वंछित थाय सलूणा ।
पून्य थकी सुख भोगवे रे, पून्ये पाप पुलाय सलूणा ॥ पून्य फले० ॥१॥
ए आंकणी ॥

सूहणामां सबहि कथा रे, कहि सूणावे देव स० ।
ठवज्ये प्रभू **टंकशाल**मां रे, भुवन करावज्यें हेव स० ॥पू०॥२॥
ते निसुणी विस्मय थई रे, ए नृपनो आवास स० ।
किम करी प्रभु ठवणां तणी रे, पूगे माहरी आश स० ॥पू०॥३॥
देव कहे चिंता म कर रे, कहुं छुं नृपने धाय स० ।
तूज्झने घर बेठा थकां रे, थास्यें नृप सुपसाय स० ॥पू०॥४॥
तुजने **कुंप्पनी** प्रसन्न थई रे, देश्ये ए टंकशाल स० ।
ए छे उत्तम भौमीका रे, निरुपम गुणमणिमाल स० ॥पू०॥५॥
तिहां जिनचैत्य करावज्ये रे, ठवज्ये श्रीसीयंश स० ।
ईम कही देव अदृश्य थयो रे, एह स्वप्न निःशंश स० ॥पू०॥६॥
रयण विहाणी प्रह थयो रे, जाग्यां नगरनां लोक स० ।
शेठाणी मन चिंतवे रे, भागा भव भय शोक स० ॥पू०॥७॥
श्रीजिनचैत्य करावशुं रे, पावन करस्यूं देह स० ।
मूह मांग्यां पाशा ढल्या रे, मनमां हर्ष अछेह स० ॥पू०॥८॥
उमाभाईने तेडीने रे, शेठाणी पभणंत स० ।
रजनी सुहणांनो सवी रे, निसुंणायो विरतंत स० ॥पू०॥९॥

उमाभाई हर्ष्या हिये रे, सूरतरु फलीयो आज स० ।
ईम करतां दिन निगमे रे, वरते सुख समाज स० ॥पू०॥१०॥
ईतरे **विलायत** देशथी रे, **कुंप्पनी** लिखियो लेख स० ।
राजनयरमां आपज्यो रे, शेठाणीने विशेष स० ॥पू०॥११॥
जे भूंमी **टंकशाल**नी रे, दीज्यो मनने उल्लशे स० ।
आदर दीज्यो अतिघणो रे, राजवीनी परि जास स० ॥पू०॥१२॥
कुंप्पनी सेवक सहु मिली रे, आव्यां शेठाणीने गेह स० ।
स्वामीनूं हुकम सूधारवा रे, मन धरी हर्ष अछेह स० ॥पू०॥३॥
उंमाभाई आदर दीयो रे, नृप आदेशक जांण स० ।
भूप परस्परनी परें रे, मिलिया करी मंडाण स० ॥पू०॥१४॥
आदरमांन्य अतिघणो रे, **उंमाभाई**ने दीध स० ।
टंकशाल परमार्थथी रे, दीधी विश्वप्रसिद्ध स० ॥पू०॥१५॥
श्रीजिनचैत्य बंधावावा रे, जोशी तेडाया जांम स० ।
खात्यमुहूरत तिणे दीयो रे, त्यांहां मूक्यो धनठांम स० ॥पू०॥१६॥
नंद शशी पण इंदूनां रे, अंक संवत्सर जोड स० ।
सुदी वैशाख सुसप्तमी रे, पूरवा मननां कोड स० ॥पू०॥१७॥
खात्यमुहूरत कीया पछे रे, मांड्यो देरानो काम स० ।
शोभनीक सबहि कीयो रे, सुंदर श्रीजिनधाम स० ॥पू०॥१८॥
मूलगभारो मनोहरु रे, देवसभा परि सार स० ।
रंगमंडप रलीयामणो रे, शीखर पञ्च उदार स० ॥पू०॥१९॥
पांच महाव्रत गुण महीरे, पांचुं शिखर उत्तंग स० ।
पञ्च पञ्च गुण छे घणां रे, निवश्यां ते मयी चंग स० ॥पू०॥२०॥
सिहरबंध ते नयरमां रे, अचरज देहरो एक स० ।
अमरभुवनसम ए थयुं रे, शी शोभा कहुं शेष स० ॥पू०॥२१॥
घोंमट चित्रामण करी रे, पूर्यां विविध प्रकार स० ।
पूतलीयो नाटिक करे रे, स्वर्ग रंभा परि सार स० ॥पू०॥२२॥
देहराथी दक्षिणदिशा रे, कुंमरी पठन निशाल स० ।
रुद्रयक्ष पुन पीर छे रे, ए दोनुं रक्षपाल स० ॥पू०॥२३॥

शास्त्राभ्यास निशालमां रे, नयरीनी सकल कुंमार स० ।
म्हेतो तास पठाववा रे, राख्यो देई पगार स० ॥पू०॥२४॥
ति निशाल मुख आगले रे, वाडी जोवा जोग स० ।
मध्यभाग जल फूंआरो रे, बेठक च्यार मनोंग स० ॥पू०॥२५॥
ईत्यादिक बहु उपमां रे, देरासरनी जांण स० ।
भेरवचंद कीसी परे रे, थाये तास वखाण स० ॥पू०॥२६॥

ढाल ४थी ॥ हुं तो मोही छुं तुंमारा रूपने रे लो० ॥ ए देशी ॥

निशालना मुख आगले रे लो०, फूआराथी जल उछले रे लो० ।
गोल आकारे वाडी फूटरी रे लो०, सार च्यार द्वार ते अलंकरी रे लो० ॥१॥
च्यारे द्वारो पें जाली वांसनी रे लो०, लता छाई लडालुंब द्राक्षनी रे लो० ।
फिरतां छे वृक्ष बहु जातीनां रे लो०, देशी विदेशी भांति भांतिनां रे लो० ॥२॥
उत्तम अनेक तरू जाणीये रे लो०, चंपो ने मोगरो वखाणीये रे लो० ।
जाई जासूज फूल फूटरां रे लो०, दमणो दाडीम दीसें सुंदरा रे लो० ॥३॥
चंबेली अनार जार शोभतां रे लो०, भलां मान पांन मन्न मोहतां रे लो० ।
केलपत्र केतकीने केवडो रे लो०, सुरंगा गुलाब वृक्ष छे खडा रे लो० ॥४॥
वाडी देखत मन गहगहे रे लो०, पुष्प सुगंधित महमहे रे लो० ।
फलभारे तरूशाखा नमी रे लो०, देखी सहुने मने गमी रे लो० ॥५॥
पक्षी आईने क्रीडा करे रे लो०, जोई अपर वाडी विसरे रे लो० ।
चकवा चकोर ने पारेवडां रे लो०, तरुशाखे कोयल टहुकडां रे लो० ॥६॥
मेना मयूर शोर शब्दथी रे लो०, पाखंती हवेल्यो सहु गर्जती रे लो० ।
सुंदर वाडी छे सोहामणी रे लो०, रूपे रूडी ने रलीयामणी रे लो० ॥७॥
तस द्वेषथी आराम बाग वेगलो रे लो०, गयो नाशी लंकागढ सांभलो रे लो० ।
नींब पेंपल दोई निर्मलां रे लो०, दक्षिण दिशे जाणो भला रे लो ॥८॥
देरा सामी लघु बंगली रे लो०, बेठां दर्शन थाये वली रे लो० ।
दाहिणे छे बंगलो शिरे रे लो०, हेठे द्रवज्जे थई फिरे रे लो० ॥९॥
आगल वरंडो ओपतो रे लो०, सांमी साटुं शोभतो रे लो० ।
ते मांहि झाड मोटां दीसतां रे लो०, बारीये थईने पेसतां रे लो० ॥१०॥

रसोडो डाबो ने डेलो दक्षणे रे लो०, भली भूंमी शवि शुभ लक्षणे रे लो० ।
वली देरा पूंठे दक्षण दिशे रे लो०, बंगलो अनोखो नवो थस्ये रे लो० ॥११॥
हेठे द्रवज्जो मुख्य राखस्ये रे लो०, जोई कविजन भांख्यस्ये रे लो० ।
वाडी अछे मध्य स्हेरमां रे लो०, कोट कर्यो छे चउ फेरमां रे लो० ॥१२॥
कोटने फीरती चउ पाखती रे लो, हवेलीयो बहु छाजती रे लो० ।
सावण सुद सातम भली रे लो०, आवे निकट पोंचे मननी रली रे लो० ॥१३॥
पूर्वोक्त सीमां क्रिया करे रे लो०, कुमति कंद कर्मशत्रू थरहरे रे लो० ।
पिण तिहां रचना कीधी घणी रे लो०, **भेरवचंद** थोडी भणी रे लो० ॥१४॥

ढाल ५मी ॥ गोकुलनी गोवालणी महो वेचवा चाली - ए देशी ॥

ते बागायत बीचमें सुंदर छे स्वरूप ।
मंदिर मोटो मोहनो कीनो नवल अनूप ॥
मणि न शोभे कुन्नण विनां शशी विना जिम रात ।
देवरहित देवल जथा, सूता विना जिम मात ॥१॥
बाग नयर जिनघर विना, शोभे न लिगार ।
आभूषण पुर बागनो जिनमंदिर सार ॥
तेहथी बागमांही रच्यो जिनभुवन विसाल ।
जोयां कुमति अनादिनी, नाशो ततकाल ॥२॥
आषाढ वदी नवमी दीने, जलजात्राने काजे ।
वरघोडो शिणगारीयो, वाजां बहु वाजे ॥
भेरी भूंगल नालने वली, ताल कंसाल ।
झांझ झल्लरी शरणाईनां, वर नाद विशाल ॥३॥
हय गय ने रह पालखी, बहुविधि परिवरीया ।
अश्व गाडी अभीनव नवी कुंमरादिक चढीया ॥
विजयपताका जयवती, वर इन्द्रध्वजानी ।
छत्र चामरधर शोभतां वर तई इन्द्रानी ॥४॥
अमरकुंवरी परि सहु बनी, वरघोडे आया ।
अमर विमान सा रथमांहि, प्रभुने पधराया ॥

नारी शिर ठवी कुंभ ते सोहासणिं लीधा ।
वाडी बाहिरली आयनें, भलां उछव कीधां ॥५॥
बली बाकुल दीयो देवने, नूंतरियां माटे ।
सर्वोपसर्गे निवारवा सुखशांतिने साटे ॥
नमण करायो नाथने निज निर्मल काजे ।
स्नात्र महोत्सव साचवी, आव्या निज दरवाजे ॥६॥
हिवे विष्णुनृप-नंदने, तेडवाने काजे ।
शेठ **उंमाभाई** उंमह्या, सामईयो साजे ॥
फत्ताशाहनी पोलमां, जईये मनरंगे ।
शाजन जन सहु को मील्यां मन हर्ष उमंगे ॥७॥
हय गय ने वली पालखी, मिलीया छे वृंदे ।
अश्वगाडी रथनी छबी, अविलोकी आनंदे ॥
भामिनी मंगल गावती, सजी भूषण अंग ।
वाजित्र विविध प्रकारनां, वाजंत सुचंग ॥८॥
शेठ उंमाभाई इंम सजी, आव्या प्रभु आगे ।
विधिपूर्वक वंदन करी, ललि ललि पाय लागे ॥
विनवे प्रभु आगल रही, उभयो कर जोरी ।
अहो देवाधिदेवजी, सूणो अरजह अमारी ॥९॥
तुं तिहुंअण जन तारणो, करुणारस दरियो ।
परम निरंजन जगगुरू, भवि तारी तरीयो ॥
भवजलपोत समान छो, साचा विश्वनां तारू ।
भव-परिभ्रमण निवारणो प्रभु बिरुद तुमारुं ॥१०॥
शक्र सहस रसना करी, प्रभु तुम गुण गावे ।
स्तवतां पूरवकोडि लगि, तोहि पार न आवे ॥
तो हुं स्यूं स्तवना करूं, जगबंधु दयाल ।
मुज अवगुण नवि देखीये, निजबिरूद संभाल ॥११॥
इम स्तवीने पुन विनवे, वृथा काल निगमीयो ।
तुम दरिसण विण स्वामी हुं, भववनमां भमीयो ॥

हिवे **टंकशाले** पधारवा, प्रभु ढील न करवी ।
सेवक जाणी स्वामीने, दया दिलमां धरवी ॥१२॥
रात दिवस हृदया थकी ईक छिन न विसारे ।
स्वामीने शेठाणी सदा, बहुविधि संभारे ॥
ईम कहीने तीर्थोदके प्रभुने न्हवराया ।
केसर मृगमद घसी घणा, चरचे प्रभू पाया ॥१३॥
कनक-मढित हिरण्यनो, रूडो रथ लाया ।
अमरविमान शो तेहमां, प्रभूजी पधराया ॥
सारथी **उंमाभाई**नो लघु बंधव जाणो ।
इन्द्र बन्यो रथ खेडवा, हृत हृदय भराणो ॥१४॥
वासित शुद्धजले करी, भूमि छंटकावे ।
चालतां आडंबरे, पोलमां प्रभू आवे ॥
पोल मूकीने पधारीया, राज्य पंथ विचाले ।
एटले दीध वधामणी, जईने **टंकशाले** ॥१५॥
एहवे प्रभुजी पधारीया, **टंकशालने द्वारे** ।
मणि माणिक लई भेटणां, शेठाणी वधावे ॥
प्रथम करी पधरामणी, प्रभुनी बंगलामां ।
प्रभु बेसण युगतो अछें, बंगलो सघलामां ॥१६॥
ग्रह दिग्पाल सुथापीया, नंदव्रत पूजे ।
विधियुत ध्वज आरोपतां कर्मादिक धूजे ॥
अह्वानन विधि देवनी मंत्रा युत सार ।
बिंब प्रवेशित जोईये, सामग्री तयार ॥१७॥
रातिजगा रंगे करे, स्तवनां गुण गान ।
अशुभ कर्म उन्मूलवा, नीत नवलां जान ॥
ए विधि सबहि वरणतां, मासे पार ना आवे ।
भेरवचंद ते जोईने, लवलेशे गावे ॥१८॥

ढाल ६ट्ठी ॥ दधिसूत वेनतडी सूणज्यो रे, श्रीयुगमंधिरजीने कहीज्यो-ए देशी ॥

एहथी मीटे आवागमणां, भवि सूणीयो प्रभुनी ठवणां ।
ठवणां भवजल निस्तरणां रे, जिनठवणां दुःखनिहरणां रे ।
भवि सूणज्यो ॥१॥ आंकणी ॥

प्रभूने पूंखे मनने रंगे, जल लूण ऊतारें दील चंगे ।
प्रधांन वहु सखीया संगे रे । भवि०॥२॥

श्रावण सुदी सप्तमी दिवसे, चउविधि संघ मिल्यो उलसें ।
चहुं दिसि नरवृंदे दीसे रे । भवि०॥३॥

बार घडी दाढो चढते, पेंतीस पु(प)ल ऊपर वधतें ।
स्वातिनक्षत्रे सुमुहूर्ते रे । भवि०॥४॥

कन्या लगन कल्याणकारी, चन्द्रजोग आव्ये मनुहारी ।
मंगल गावे नरनारी रे । भवि०॥५॥

बेई उंमाभाई थई भेलां, तखत ठव्यां प्रभु तिणि वेलां ।
नरभव जास थयां सफलां रे । भवि०॥६॥

प्रभु पधरायां बडभागी, पूरव पूंन्य दि(द)शा जागी ।
कुमतिलता कंपी भागी रे । भवि०॥७॥

श्रीयांस मूलनायक छाजे, कांतिये इंदू अरक लाजें ।
पाखतिं चउ पडिमा राजे रे । भवि०॥८॥

पञ्चमी गति दायक पांचो, सेवो भवि मन करी सांचो ।
मणि तजी काचे क्यौं राचो रे । भवि०॥९॥

अष्टादश अभिषेक करीया, नोतन नवपदयंत्र भरीया ।
शेष पूजामां बसो त्रेंण धरीयां रे । भवि०॥१०॥

श्रावण सुदि तेरस भली, भणी स्नात्र अट्ठोत्तरी निर्मली ।
करी पुर फिरती धारा वली रे । भवि०॥११॥

वीरौपासक तेमां अ गवाणी, पभणिं पूज उल्लट आंणी ।
अमदावादी गुणखाणी रे । भवि०॥१२॥

भण्यां गुण्यां सहू पून्यवंता, पडिमारागी जयवंता ।
धर्मना सूरा मतिमंता रे । भवि०॥१३॥

[इम] ठवणां कीध विधिशेती, विधि बहु कीध[कहुं]हुं केती ।
अल्प कथी कीधी जेहथी । भवि०॥१४॥
सहु ईम करो उत्तम करणी, ए छे शुद्धी शिवनिश्रेणी ।
चउगति दुःखनी कातरणी रे । भवि०॥१५॥
जिनपडिमा विधिस्यूं ठवणी, तिहुंअणनायक पिण पभणि ।
निश्चें लहे ते शिवरमणी रे । भवि०॥१६॥
साहामीवच्छल सांमीनी भक्ते, करी प्रभावना बहु युक्ते ।
पिण कवियण थोडी व्यक्ते रे । भवि०॥१७॥
करस्यें तेहनां नाम रेस्ये, परभव सुरनां सुख लेस्ये ।
भेरवचंद भणे एस्ये रे । भवि०॥१८॥

दूहा सोरठा ॥

विधिसहित मनरंग, ईम प्रभुनी ठवणां करी ।
आठो जाम उमंग, हर्ष हिये मावे नहि ॥१॥
देई मान सन्मान, सज्जन सहू संतोषिया ।
दीधो वंछित दान, जाचकने जुगतो भलो ॥२॥
शेठाणीने खंत्य, ईम करतां मन ऊपनी ।
मेटण भवभयभ्रंत्य, तप मांडुं कोइ रूअडो ॥३॥

ढाल सातमी ॥ इकवीशानी देशी तथा त्रूटकनी देशी ॥

शेठाणी रे, मनमां विचार ईस्युं करे ।
भवि प्राणी रे, दान दया दीलमां धरे ।
उमाभाईने, तेडी भणे मधुरे स्वरे ।
तप मांडुं रे, अक्षयनिधि सहुमां शिरे रे ॥१॥

त्रूटकनी चाल – सिरे सहुमां अक्षयनिधितप अक्षयपद लेवा भणी,
आदरे बहुमानसेती हियमां उल्लस(से) घणी ।
साचवे विधिसहित तप निज करे नित्य एकासणां
अक्षयनिधि पद अक्षयदाता हुं जाउं तस भामणां ॥२॥
तपनी विधि रे, निसूणी नयरमां घर घरे,

केई नार्यो रे, तप करवा मनसा करे ।
निज घरमां रे, पूछी पूछीने टोले मली,
इम करतां रे त्रण्यसो वीश थई मेली ॥३॥

त्रू० भली तपनी करणहारी धर्म तत्त्वनी जाण ए,
मुख्य शेठाणी सविमां कर्युं तास प्रमाण ए ।
भौमी शय्या ब्रह्म पाले दोष टाले अणुव्रता
उभयकाले प्रतिक्रमवा पाप शमावा तीव्रता ॥४॥
काउसग्ग वली रे, दीज्ये प्रमाण खमासणां
त्रिहुं काले रे, देवाधिदेवने वांदणां ।
भली पूजा रे, नव अंगी प्रभुनी करे,
जिन आणा रे, पक्ष एक लगी शीर धरे ॥५॥

त्रू० धरें प्रभुनी आणा शिशे भणे विविधे पूजा(ज)ए,
इत्यादि तपविधि-सहित करतां कर्म नाशे धूजए ।
वदि श्रावण चोथथी संवत्सरी लगी राखीये,
सकल सावज काम तजीने सत्य मुख ते भाषीये ॥६॥
इण विधिस्यूं रे, एकण पक्ष अतिक्रम्यां
पण इंदू रे(१५), दिवस भली परे निगम्यां ।
तप पूरण रे, विधिसहिते करीने रह्यां,
तप कारक रे, सहुनां मन बहु उमट्यां ॥७॥

त्रूट० उमट्यां सहूनां मन सूचंगा भक्तिगुण हृदये भर्यां
जाणीए जिनराजने वचने तप करी केई निस्तर्यां ।
हिवे महिमाकरण काजे सजे वरघोडे शिरे
कलश त्रण्य शत वीश उज्वला अक्षय अक्षत लेई भरें ।
कुंकुमादिक थकी पूजी पूंगीफल मांहि धरे
तेह ऊपर ठवि श्रीफल वस्त्र आच्छादन करे ॥८॥
नीलां पीलां रे, रातां वस्त्र हीरागली,
कुंभ कुंभ प्रत रे, जाणो एकेकसू मन रली ।
ग्रैवासूत्रनी रे, कलशने बांधी राखडी,
सोहासणी रे चतुरा कलश शीशे धरी ॥९॥

त्रू० धर्यां शिशे कुंभ एटले सजन जन सहु को मिल्यां
बाल पुंन गोपाल बाला निसूणी जोवा खलभल्यां ।
वरशक मंगलतूर वाजे भेरी भूंगल नाल ए,
मरद्दंग मादल झांझ झल्लरी ताल पुन कंशाल ए ॥१०॥
वाजी परे रे धूंश निशांणनी घोषनां
वली वाजित्र रे केहिक देश विलायतनां ।
इंगरेजीरे करी दरवेश ते नवनवां
ते वजावे रे, वाजित्र थईने इकमनां ॥११॥

त्रू० ईक मना थईने सहु वजावे सकलजन हरखित भयो
सजित भूषण हयगयादिक रूप्प कनकादिकमयो ।
भट सुभट थट घनघरट जोधा प्रबल सामंत सूर ए
गारदी तूरकी अश्वपाला चढ्यां चाले पूर ए ॥१२॥
वली कौतल रे हय थई थई करी चालतां
वारू गयवर रे, सूंड प्रचंड उल्लालतां ।
जरकशनां रे, कशित पल्लाण सोहामणां
गावे गौरी रे मंगल हर्ष वधामणां ॥१३॥

त्रू० वधामणां गावंती गोरी जडितकनकाभूषणं
ते पहेरी बाला अतिविशाला हैममण्डितकंकणं ।
नयरनां शेठ्या मोटामोटा अमरसूतसम बनी करी
कुंमर कुंमरी रथे बेसे केइक चढिया गज तूरी ॥१४॥
म्यांना पालखी रे, रथ बगी च्यारठ सोहता
छबीवंता रे, वरघोडे मन मोहता ।
चढी जोवे रे, जाली गोख झरोखथी
लटकाली रे, केई नर जोवे मोजथी ॥१५॥

त्रू० मनमोज शेंती कियो उच्छव गयण गर्जारव थयो
तेह उच्छव पेखवाने मेघ पिण चढी आवीयो ।
मेघ तव आदेश दीधो श्रमशमन छाया करो
घन घटारूपें छव्यो अंबर वरसीयो सुख जलधरो ॥१६॥

त्रू० ते देखी रे, सुर सहु अनमेखिक थया
सुरनां सुख रे, दुःख करीने तिणे लेखव्यां ।
वर नरभवे रे, धन्य करी मांन्यो खरे
नरभवनी रे, देखी देव इच्छा करे ॥१७॥

त्रू० करे इच्छा अन्य जण पिण महोत्सव देखीने
धन धन श्रावकधर्म एहवो अपरथी कहो किम बने !
इणि छबीथी नयरमां फिरी गयां **माणिक चोक**मां
एम उत्सव कर्यो मोटो सुजश वाध्यो लोकमां ॥१८॥
घेर आवी रे, वारु कीध प्रभावना
श्रीफलनी रे, शुद्ध पतासां सोहामणां ।
साहामीवत्सल रे भाव थकी कीधो वली रे
खींनखापनी रे दीधी उभय भली कोथली ॥१९॥

त्रू० कोथल्यो दीधी शोभ लीधी चिनाई प्यालां फिरी
रत्नत्रयी-शुद्धिने काजे त्रिण प्रभावना करी ।
तिण समे **तपगच्छत**णां मंडण **श्रीदेवेन्द्रसूरीश्वरु**
चउमास ठायो राजनयरे पंडितां अलवेशरु ॥२०॥
तिहां राख्यां रे, संघ बहु आग्रह करी
ठवणामां रे, शेठाणी हर्षे करी ।
तेने तेड्यां रे, ढोल निशांण सू राजते
वासखेपनां रे, मंत्र सहित करी छाजतें ॥२१॥

त्रू० छाजते श्रीसंघ चउविधि सवि देश विदेशमां
करो एहवां काम उत्त्यमा ना पडो संक्लेशमां ।
श्रीजिनप्रतिष्ठा तपोत्सव विधि करी छे हुंसे घणी
वरणतां तो पार न आवे लेश **भेरवचंद** भणी ॥२२॥

ढाल ८मी ॥ लालगुलाल आंगी बनी रे- ए देशी ॥
सोरठा ॥

– – – – – – – – – – – – – –

निसूण्यो पूर्वसम्बन्ध तेहथी शेठाणी कर्यो ॥१॥[१]

१. सोरठानो पूर्वार्ध लखवानो रही गयो लागे छे.

सुकृतकमाई भवि कीजीये रे, तेहमां तप दृढरंगो लाल ।
सुंदरीनी परि पामस्यो रे, श्रीजिनधर्म अभङ्गो ला० ॥१॥ सुकृत० ।
ए आंकणी ॥

राजगृही पुर जाणीये रे, मागध देश मझारो लाल ।
संवर शेठ वसे तिहां रे, तेहनी पुत्री उदारो हो लाल ।सु०॥२॥
सुंदरी नाम सोहामणो रे, जिनमततत्त्वनी जाणो लाल ।
पूर्व-सूतपना प्रभावथी रे, प्रगट्यां अक्षयनिहाणो लाल ।सु०॥३॥
श्रीनाणी गुरुजीने पूछीयो रे, प्रगट निहाण स्वभावो लाल ।
गुरुजी बतावे ज्ञाने करी रे, अतीत अनागत भावो लाल ।सु०॥४॥
गत त्रिण भवनां बतावियां रे, सुख दुःख पून्य ने पापो लाल ।
अक्षयनिधि तपथी थयो रे, प्रगट निहाण प्रतापो लाल ।सु०॥५॥
अपरकथा एहनी घणी रे, धर्म विनोद विलासो लाल ।
तेह थकी तपस्यूं कीयो रे, पूरवा मनडानी आशो लाल ।सु०॥६॥
वली **जिनशाला** मांडी भली रे, ज्ञानआराधन काजो लाल ।
फत्तासाहनी पोलमां रे, बांधी पुन्यनी पाजो लाल ॥सु०॥७॥
मोटो बीजा देरातणो रे, चाले काम अपारो लाल ।
जेहनी हुंश अछे घणी रे, तेहनां हियडा मझारो लाल ।सु०॥८॥
जात्रा नवाणुं करवा तणी रे, वली मन मोटी छे खंत्यो लाल ।
फिरी पण च्यार(४५) आगम तणां रे, उजमणांनी अत्यंतो लाल ।सु०॥९॥
ए सवि तेहनां पूरस्ये रे, वंछित शासनदेवो लाल ।
पिण तेहने एहिज आवीयो रे, उदये धर्मनो मेवो लाल ॥सु०॥१०॥
आजनी काले छे संघमां रे, दीपक मान उजासो लाल ।
भेरवचंद जेहनो अछे रे, प्रगट अखण्ड परकाशो लाल । सु०॥११॥

ढाल कलशनी ॥सम दम खंतीतणां गुण पूरां-ए देशी ॥
राग धन्यासिरी ॥

सेवो श्रीजिनधर्म सोभागी रे, छांडो सकल प्रमादोजी ।
आणा सहित करो शुद्ध करणी, जिम गुणठाणे वाधोजी ॥१॥
श्री जिनधर्म सोभागी । ए आंकणी ॥

कर जोरी कहुं धरमी सजनां, सूणीयो अरज चित्त लाय जी ।
भोलपमें गुणवंत सुज्ञानी, काल व्यतीतो जाय जी ॥२॥ सेवो० ॥
छीजत छीनछीन आयु सदा हि, अंजलिजल जिम पीतजी ।
कालचक्र त(ते)रे शीश भमत हे, सौवत कहा तुं अभीतजी ॥३॥से०॥
समय मात्र परमाद निरंतरे, धर्मसाधना मांहि जी ।
अथिर रूप संसार लखीने, सज्जन करीये नाहिं जी ॥४॥ से०॥
मेरामेरा म करो वल्लभ, तेरा हे नहि कोईजी ।
भ्राताजी परिवारतणां ए, मेला हे दीन दोय जी ॥५॥ से०॥
तन धन जोबन अथिर कारमा, संध्यारंग समानो जी ।
सकल पदारथ छे संसारिक, स्वप्नरूप चित्त जानोजी ॥६॥ से०॥
एसा भव निहारीने नित्य, कीजे ज्ञानविचारजी ।
न मीटे ज्ञानविचार विना कछूं, अंतरभावविकारजी ॥७॥ से० ॥
भव परिभ्रमण करतां तुजने, मुशकिल मिलियो छे वेतजी ।
हिये समज कछु हो तुमारे तो, चेत शके तो चेतजी ॥८॥से० ॥
धन धन **शेठ हठीसिंह** संघमां, धन धन जसू घर नारीजी ।
धन धन **राजनयर**नां श्रावक, शासननां हितकारी जी ॥९॥ से०॥
शेठ प्रेमाभाई तिलक ते पुरनो, **उभय उंमाभाई** जाणोजी ।
जेसिंघभाई पुन **शेठ श्रीमाली, मगनभाई** परि(र)माणोजी ॥१०॥ से०॥
सूत्र सिद्धांतनां जाण सुबुद्धी, श्रीजिनपडिमाना रागीजी ।
निवड निपुण धोरी जिनमतनां, दृढरंगी बडभागीजी ॥११॥ से०॥
सकल संघ जयवंत प्रवर्तो, **राजनयर**नो विशेषोजी ।
आजने काले शासन दीपावे, मन धरी अधिक जगीशोजी ॥१२॥ से०॥
में पण सुजश सुण्यो ए पुरनो, तेहवुं परतीक्ष दीठुं जी ।
शर्कर पय मिश्रितथी अधिको, लागो मूजने मीठुं जी ॥१३॥से०॥
धर्मघोषसूरिनां गच्छमांथी, निकसी **साखा सुराणो** जी ।
दोलतचंद शीश **मोतीचंद**, शिष्य **भेरवचंद** जाणोजी ॥१४॥ से०॥
संवत नंद शशी पण इंदू (१९१५), भाद्रव कृष्ण सुमासोजी ।
तिथि एकादशमी गुरुवारे, विरच्यो **संघविलासो** जी ॥१५॥ से०॥

मंदमति कलिकालतणो हुं, अल्पबुद्धि गुणहीण जी ।
तेहथी भूलचूक कछूं होय तो, शुद्ध कीज्यो परवीण जी ॥१६॥ से०॥
हीनाधिक कथना कछु यामें, कवियणपणाथी कीधी जी ।
तास मिच्छामिदुक्कड मुजने, थाज्यो प्रसिद्ध प्रसिद्धजी ॥१७॥ से०॥
जे ए भणस्यें गुणस्यें भावे, लेस्यै ते रंगसालाजी ।
संघसहित श्रीजिनगुण गातां, नीत नीत मंगलमालाजी ॥१८॥ से०॥

इति श्रीराजनयरपुरे टंकशालमध्ये श्रीश्रीयांसजिननौत[न]चैत्यः(त्यं) शेठ उमाभाई करापितं, तस्य सम्बद्धं सम्पूर्णम् । समाप्तम् । दूहा । गाथा । सर्वगाथा सम्पूर्णम् ॥ श्रीरस्तु । मंगलं भवतु । संवत १९१६ना वर्षे कार्तिक मासे कृष्णपक्षे तीथौ त्रयोदश्याम् । भौमवासरे लिपी समाप्तम् ॥ लिपीकृतं बाबा बालगिरजी । लेखकपाठकश्चिरं जीयात् ॥

श्रीमतिकीर्त्युपाध्यायविरचिता स्वोपज्ञवृत्तिविभूषिता गुणकित्त्व-षोडशिका

- म. विनयसागर

गुणकित्त्व-षोडशिका व्याकरण के एक लघु-अंश पर विचार-विमर्श करती है । व्याकरण शब्दों पर अनुशासन करता है अर्थात् शब्दों के उद्‌गम स्थान से लेकर उच्चारण पर्यन्त इसका अनुशासन चलता है । इन्हीं वर्णों से मन्त्र और तन्त्रों का भी निर्माण होता है । इसीलिए महाभाष्यकार भगवान पतञ्जलि भी कहते हैं कि - 'एक शब्द के भी शुद्ध उच्चारण से समस्त प्रकार का मङ्गल होता है और स्वर या वर्ण का अशुद्ध उच्चारण शत्रु की तरह अनर्थकारी होता है ।' वैयाकरणों की यह मान्य परम्परा रही है कि वे शब्दों के लाघवमात्र से पुत्रजन्मोत्सव की तरह उत्सव मनाते हैं ।

लेखक-परिचय :

मतिकीर्ति खरतरगच्छ की परम्परा में क्षेमकीर्ति शाखा में महोपाध्याय श्रीजयसोम के प्रशिष्य और गुणविनयोपाध्याय के शिष्य हैं । इनका कोई ऐतिहासिक परिचय प्राप्त नहीं होता है, किन्तु मतिकीर्ति में 'कीर्ति'नन्दी को देखते हुए दीक्षा समय का अनुमान किया जा सकता है। युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि स्थापित ४४ नन्दियों में 'कीर्ति'नन्दी का क्रमाङ्क ४०वाँ है । कीर्ति नामांकित सहजकीर्त्ति द्वारा सं० १६६१ में रचित सुदर्शन चौपाई, पुण्यकीर्ति द्वारा सं० १६६२ में रचित पुण्यसार रास, विमलकीर्त्ति द्वारा सं० १६६५ में रचित यशोधर रास आदि कृतियों के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि 'कीर्त्ति'नन्दी की स्थापना सं० १६५२-५५ के लगभग हुई होगी । अतः मतिकीर्त्ति का दीक्षाकाल भी यही है ।

गुणविनयजी के सहयोग के रूप में इनका उल्लेख सर्वप्रथम सं० १६७१ में मिलता है । 'निशीथचूर्णि' प्रति का संशोधन गुणविनयजी ने मतिकीर्त्ति की सहायता से किया था । उल्लेख इस प्रकार है :-

''संवत् १६७१ जैसलमेरदुर्गे श्रीजयसोममहोपाध्यायानां शिष्य-

श्रीगुणविनयोपाध्यायैः शोधितं स्वशिष्य-पं० मतिकीर्त्तिकृतसहायकैर्निशीथचूर्णि-द्वितीयखण्ड ।''

– शाहरुशाह भण्डार, जेसलमेर

सं० १६७३ में प्रणीत 'प्रश्नोत्तरमालिका' में तथा सं० १६७४ में रचित 'लुम्पकमततमोदिनकर चौपाई' में गुणविनयजी ने मतिकीर्त्ति का सहायक के रूप में उल्लेख किया है ।

साहित्य-रचना :

मतिकीर्ति-प्रणीत साहित्य का अवलोकन करने से स्पष्ट है कि ये जैनागमों के प्रौढ विद्वान् थे, शास्त्रीय चर्चा में भी अग्रगण्य थे । व्याकरण-शास्त्र के भी ये अच्छे अभ्यासी थे, और राजस्थानी भाषा पर भी इनका अच्छा अधिकार था । इनका साहित्य-सर्जन काल सं० १६७४ से १६९७ के मध्य का है । इनकी प्रणीत १२ कृतियाँ प्राप्त है, जो निम्नांकित है :-

१. दशाश्रुतस्कन्धसूत्र-टीका – रचना संवत् १६९७, श्लोक परिमाण-१८००० । इसकी एक मात्र प्रति जैनशास्त्र-माला-कार्यालय, लुधियाना में प्राप्त है । महोपाध्याय समयसुन्दरजी ने आपने 'कथाकोश' में इसका उद्धरण भी दिया है । सुना है कि कोई आचार्य महोदय इस टीका का सम्पादन कर रहे हैं ।

२. निर्युक्तिस्थापन – इसका प्रसिद्ध नाम 'प्रश्नोत्तरशास्त्र' है । आवश्यकनिर्युक्ति के विसंवादपूर्ण वक्तव्यों को १० प्रश्नों के माध्यम से आगमों के प्रमाणों द्वारा सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । इसकी रचना संवत् १६७६ के पश्चात् की गई है ।

३. २१ प्रश्नोत्तर – साधु लखमसी कृत २१ प्रश्नोत्तर के प्रत्युत्तर दिये गए हैं । गणिपंद का उल्लेख होने से रचना संवत् १६७६ के पश्चात् की गई है ।

४. भाष्यत्रय-बालावबोध – रचना संवत् १६७७, स्थल जैसलमेर है । भणसाली-गोत्रीय शाहरुशाह, जैसलमेर के आग्रह से हुई है ।

५. सम्यक्त्वकुलक-बालावबोध – इसकी संवत् १६५५ की लिखित प्रति प्राप्त है ।

६. गुणकित्त्व-षोडशिका - परिचय आगे दिया जाएगा ।

७. अघटकुमार-चौपाई - रचना संवत् १६७४ में जिनसिंहसूरि के राज्य में हुई है ।

८. धर्मबुद्धि-सुबुद्धि-चौपाई - रचना संवत् १६९७, राजनगर ।

९. ललितांग-रास

१०. लुम्पक-मतोत्थापक-गीत - इसमें लोकाशाह के मत का खण्डन किया गया है ।

११. पञ्चकल्याणकस्तव-बालावबोध

१२. सप्तस्मरण-स्तबक

इन कृतियों का परिचय देखें - **खरतरगच्छ-साहित्य-कोश** ।

गुणकित्त्व-षोडशिका

इसमें मूल श्लोक १६ हैं । गुण और कित्त्व पर विचार होने के कारण गुणकित्त्व-षोडशिका नामकरण किया गया है । इस पर स्वोपज्ञ टीका है । यह ग्रन्थ व्याकरण शास्त्र से सम्बन्ध रखता है । धातुरूपों में किस अवस्था में कित्त्व या गुण होता है इस पर सम्यक् रीति से विचार किया गया है । फक्किका स्वरूप इसकी रचना है । टीका में पाणिनि-व्याकरण के सूत्र और धातुपाठ देते हुए इसका सम्यक् प्रकार से प्रतिपादन किया है।

प्रशस्ति में रचना संवत् प्राप्त नहीं है, किन्तु ''श्रीजिनसिंहसूरि-विजयिराज्ये'' उल्लेख होने से स्पष्ट है कि श्रीजिनसिंहसूरि का साम्राज्यकाल १६७० से १६७४ का है, अतः इसकी रचना भी इसी मध्य में हुई होगी ।

प्रतिलिपिकार :

प्रान्त पुष्पिका में ''पं० श्रीजिवकीर्त्तिगणि-लिखितं'' लिखा है । इसमें लेखन-संवत् नहीं दिया है । जीवकीर्त्ति में 'कीर्ति'नन्दी को देखते हुए यह अनुमान किया जा सकता है कि मतिकीर्ति के साथ ही इनकी दीक्षा हुई होगी या उसी संवत् के आस-पास हुइ होगी । मतिकीर्ति के साथ या उसके पश्चात् दीक्षा होने से यह स्पष्ट है कि ये भी श्रीगुणविनयोपाध्याय के शिष्य थे । इसके द्वारा रचित साहित्य प्राप्त नहीं है, किन्तु गुणविनयोपाध्याय-रचित भाव-

विवेचन, नल-दमयन्ती-प्रबन्ध और मूलदेव-चौपाई की लिखित प्रतियाँ प्राप्त हैं ।

इसकी एकमात्र ७ पत्रों की प्रति श्रीखरतरगच्छ ज्ञानभण्डार, शिवजीराम भवन, जयपुर में २०६/५५९ में सुरक्षित है । मैंने इसी प्रति के आधार से सन् १९४५ में प्रतिलिपि की थी । इस भण्डार के अधिकारियों से कई बार अनुरोध करने पर भी यह प्रति पाठमिलान के लिए प्राप्त नहीं हो सकी ।

शब्दानुशासन सम्बन्धी यह लघुकाय ग्रन्थ व्याकरण अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा ।[१]

ठे. प्राकृतभारती,
जयपुर

१. **नोंध :** आ कृति-लेख घणो अशुद्ध हतो. तेमां पूर्ति अने सुधारा तथा टिप्पणो पण आवश्यक हतां. अे बधुं कार्य, मूल प्रतना अभावमां घणुं कठिन अने श्रमसाध्य हतुं. वळी, पाणिनीय व्याकरण पर आधारित रचना होवाथी पण घणी महेनत करवी पडे तेम हतुं. ए बधुं श्रमभर्युं काम मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजयजीए यथामति-शक्ति करी आप्युं छे, अने ए रीते कृति सम्पादन-कार्यमां तेमणे सिंहफाळो आपेल छे, एटलुं वाचको-सम्पादकनी जाण सारु. - **शी.**

गुणकित्त्व-षोडशिका

सर्वत्रेको गुणः प्रोक्तो, विद्भिः सार्व(र्वार्द्ध)धातुके ।
उपधाया लघोरेव, पुगन्तस्याऽलघोरपि ॥१॥

व्याख्या : **सर्वत्रे**ति निर्विशेषणे **सार्वार्द्धधातुके इकः**- इगन्तस्याऽङ्गस्य धातोः **विद्भिः**- शब्दानुशासनरहस्यबोधकैः **गुणः प्रोक्तः**- कथितः ।[१] अकारै-कारौकारा भवन्तीत्यर्थः । तत्र 'तिङ्शित् सार्वधातुकं' [३/४/११३] तिडिति लट् लुट् लृट् लेट् लोट् लङ् लिङ् आशिषिव्यतिरिक्तस्य ग्रहणं, लिङ्-लृटामष्टादशाऽऽदेशा गृह्यन्ते । शितस्त्वमी- शप्, श्लु, श्यन्, श्नु, श, श्नम्, श्ना, शतृ, शानच्, चानश् इति । शेषमार्द्धधातुकं लडादि ।[२] तत्र सार्वधातुके उदाहरति- तरति, नयति, भवति, एति । आर्द्धधातुके- कर्त्ता, चेता, स्तोता । सार्व[र्वार्द्ध]धातुके इति किं ? अग्नित्वम् । अग्नित्वमित्यत्र धातोरित्यनधिकृत्य विहितत्वान्नाऽऽर्द्धधातुकसञ्ज्ञा । अग्निकाम्यति । यदि हि प्रत्यये सतीत्युच्येत तदा इहाऽपि स्यात् ।

उपधाया लघोरेवेति उपधाया यदि गुणो भवति तदा लघोरेव ।[३] यथा- भेदनं, छेदनं, तोषणम् । न च भेत्ता, छेत्तेत्यत्र संयोगे गुरुरिति, गुरुत्वात् कथं गुण इति शक्यम् ? 'त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः' [३/२/१४०] 'हलन्ताच्च' [१/२/१०] ति क्नु-सनोः कित्त्वकरणेन ज्ञापितत्वात्, प्रत्ययादेरङ्गावयवस्य च हलोरानन्तर्यत्वे सत्यपि लघूपधायां गुणो न व्यावर्त्यत इति । यदि गुरुत्वादेव गुणो न स्यात् तदा कित्करणमनर्थकमेव स्यात् ।

पुगन्तस्याऽलघोरपीति दीर्घस्याऽपि गुणो भवति । यथा- श्लेपयति, ह्रेपयति, क्नोपयति ॥१॥

---

१. सार्वधातुकार्धधातुकयोः - ७/३/८४
२. आर्धधातुकं शेषः - ३/४/११४
३. पुगन्तलघूपधस्य च - ७/३/८६

तथाऽन्त्यस्याऽञ्णिति प्रोक्तो-ऽविचिण्णल्ङित्सु जागरेः ।
अभ्यस्तस्योपधाया नो, अचि पित्सार्वधातुके ॥२॥

व्याख्या : **अन्त्यस्य**- अवसानवर्त्तिनः इक**स्तथे**ति ह्रस्वस्य दीर्घस्य च गुणो **अञ्णिति प्रोक्त** इति, ञिति णिति प्रत्यये गुणो न भवति, तत्र वृद्ध्या तस्य बाधितत्वात् ।[१]

अविचिण्णल्ङित्सु जागरे इति जागृ इत्यस्याऽङ्गस्य गुणो भवति अविचिण्णल्ङित्सु परतः ।[२] इदं बाधकबाधनार्थं, न क्ङिती[१/२/५]त्यस्य ञिति णिति परेऽन्त्यवृद्धेश्च बाधनार्थमित्यर्थः । तथा च जागरयति, जागरकः, साधु जागरी, जागरं जागरं, जागरो(घञ्)वर्त्तते इत्यादौ वृद्ध्या न बाधः । कृते च गुणे 'अत उपधाया' [७/२/११६] इति वृद्धिः प्राप्नोति सा न भवति । यदि हि स्यादनर्थक एव गुणस्स्याच्चिण्णलोश्च प्रतिषेधवचनमनर्थकम् । विचिण्णल्ङित्सु यथाप्राप्तं कृगृजागृभ्यः क्वनः कित्वाद् गुणाभावो- जागृविः, चिण्- अजागारि, णल्- जजागार, अत्रोभयत्र वृद्धिः, ङित्- जागृतः, जागृथः, ङित्त्वाद् गुणाभावः । वीति केचिदिकारं उच्चारणार्थं वर्णयन्ति, तेन क्वसावपि वकारादौ गुणो न भवति- जजागृवान् । येषां तु नोच्चारणार्थस्तन्मते- जजागर्वानिति रूपम् । अजागरुः, अहं जजागर इत्यत्र गुणस्य प्रतिषेधः प्राप्नोति, नाऽप्रतिषेधात् । अविचिण्णल्ङित्सु इति पर्युदासोऽयम् । ततश्चाऽयमर्थः- विचिण्णल्ङि-व्यतिरिक्ते प्रत्यये गुणो भवति । विनादौ तु न विधिर्न प्रतिषेधः न गुणानुज्ञा । यदि केनापि प्राप्नोति तदा प्राप्नोत्येव । तेन जुसि चेति [७/३/८३] गुणोऽजागरुरित्यत्र । णलि तु णिद्भावपक्षे 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' [७/३/८४] इति गुणस्तेन जजागरेति सिद्धम् । अथवा जाग्र इति या प्राप्तिरसावानन्तर्याद् विचिण्णल्ङित्सु इति प्रतिषिध्यते । कित्यप्राप्तं प्राप्यः(प्य) प्राप्तं प्रतिषेधयति ।

अभ्यस्तस्येति अभ्यस्तसंज्ञकस्याऽङ्गस्य **उपधाया** इक इउऋऌनां [अचि] इत्यजादौ **पिति सार्वधातुके नो** इति गुणाभावः गुणो न भवतीत्यर्थः ।[३] नेनिजानि, अनेनिजं, वेविजानि, अवेविजं, परिवेविषाणि, पर्य्यवेविषम् । अभ्यस्तस्येति किं? वेदानि । अचीति किं ? नेनेक्ति । पिद्ग्रहणमुत्तरार्थम् ।

---

१. अचो ञ्णिति - ७/२/११५ २. जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु - ७/३/८५
३. नाऽभ्यस्तस्याऽचि पिति सार्वधातुके - ७/३/८७

सार्वधातुक इति किं ? निनेजः । उपधाया इति किं ? जुहवानि, अजुहवम् । बहुलं छन्दसीति वक्तव्यं, जुजोषदिति यथा स्यात् ॥२॥

भूसुवोस्तिङ्युतो वृद्धि-र्लुकि हलि सार्वधातुके ।
विभाषोर्णोर्गुणोऽपृक्ते, न क्ङिति क्वचनाऽपि हि ॥३॥

व्याख्या : भूसुवोस्तिङि इति । नो इति वर्त्तते । ततश्चाऽयमर्थः- **भूसुवो** इत्येतयोः **तिङि** सार्वधातुके गुणो न भवति ।[१] अभूत्, अभूः, अभूवं, सुवै, सुवावहै, सुवामहै । सूतेर्लुग्विकरणस्येदं ग्रहणं, सुवति-सूवत्योर्विकरणेन तिङे व्यवधानात् । विकरणस्यैव च ङित्त्वाद् गुणाभावः सिद्धः । तिङ्ग्रहणं विकरणव्युदासार्थं, तेन तत्र गुणो भवत्येव यथा भवति । सार्वधातुक इत्येव- व्यतिभविषीष्ट । लिङाशिषीत्यार्द्धधातुकसंज्ञत्वाद् गुणो वृत्तः । अथ बोभवीति यङ्लुकि गुणप्रतिषेधः कस्मात् न भवति, ज्ञापकाद्, यदयं बोभूत्विति गुणाभावार्थं निपातनं करोति ।[२] यदि यङ्लुक्यपीदं भूसुवोस्तिङीति प्रावर्त्तिष्यत् तदा गुणाभावार्थं बोभूत्विति निपातनं नाऽकरिष्यत्, तत्तु कृतं तेन यङ्लुकि गुणः सिद्धः । प्राप्तमेव प्रतिषिध्यत इति वचनाद् नाऽभ्यस्तस्येत्यनुवर्त्तनाद्वाऽभ्यस्तस्य न गुणप्रतिषेधः ।

उतो वृद्धिर्लुकि हलीति [७/३/१८९] । पितीत्यनुवर्त्तते । इदमपि प्राप्तगुणे प्रतिषेधार्थम् । उकारान्तस्याऽङ्गस्य वृद्धिर्भवति लुकि सति हलादौ पिति सार्वधातुके । यौति, यौषि, यौमि, नौति, नौषि, नौमि, स्तौति, स्तौषि, स्तौमि । उत इति किं ? एति, एषि, एमि । लुकि इति किं ? सुनोति, सुनोषि, सुनोमि । हलीति किं ? यवानि, रवाणि । पितीत्येव- युतः, रुतः । अपि स्तुयाद्राजानं इत्यत्र हि ङित् पिन्न भवति, पिच्च ङिन्न भवतीति प्रतिषेधाद् वृद्धेरभावः । अत्राऽयं भावस्तपः पित्त्वाद् वृद्धौ प्राप्तायां यासुटो ङित्त्वेन सा प्रतिषिध्यते ।[३] ननु लिङो ङित्त्वात् तदादेशेषु स्थानिवद्भावेन तिङां ङित्त्वादेव वृद्धेरभावः सिद्धस्तत्किमर्थमिदमुच्यते ? मैवं, यासुट एव ङित्करणात् ज्ञायते लाश्रितं ङित्त्वं लादेशेषु न प्रवर्त्तते । यदि हि समुदाये 'स्थानिवद्' [१/४/१६] भावेन ङित्कार्यमभविष्यत् तदा यासुटो ङित्त्वं न व्यधास्यत् । विहितं च तत् ज्ञापयति

---

१. भूसुवोस्तिङि - ७/३/८८ २. दाधर्ति-दर्धर्षि-बोभूतु० - ७/४/६५
३. यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च - ३/४/१०३

ङिति यत् कार्यं तल्लादेशेषु न भवतीति ङितो यत् कार्यं 'नित्यं ङित' [३/४/९९] 'इतश्चे' [३/४/१००] त्यादिकं तद् भवत्येव । नाभ्यस्तस्येति एतदिहानुवर्त्तते, योयोति, नोनोति इत्येवमाद्यर्थम् ।

विभाषोर्णोरिति[१] वृद्धिरित्यनुवर्त्तते हलादौ पिति सार्वधातुके लुकि इति च । ततश्च हलादौ पिति सार्वधातुके लुकि सति ऊर्णोतेर्विभाषा वृद्धिर्भवतीत्यर्थः । प्रोर्णौति, प्रोर्णोति, प्रोर्णोषि, प्रोर्णौषि, प्रोर्णोमि, प्रोर्णौमि । हलीत्येव- प्रार्णवानि ।

गुणोऽपृक्ते इति [७/३/९१] ऊर्णोतेर्द्धातोरपृक्ते पिति हलि सार्वधातुके गुणो भवति । प्रौर्णोत्, प्रौर्णोः । हलीत्यनुवर्त्तमाने यत् पृक्तग्रहणं क्रियते तेन तज्ज्ञाप्यते, भवत्येषा परिभाषा यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे इति पूर्वेण विभाषाबाधे नित्यार्थमिदम् ।

न क्ङिति क्वचनाऽपि हीति । क्ङितीति निमित्तसप्तम्येषा, क्ङिन्निमित्तो यो गुणः प्राप्नोति स न भवति ।[२] चितं, चितवान्, स्तुतं, स्तुतवान् । ङिति खल्वपि[३]- चिनुतः, चिन्वन्ति । गकारोऽप्यत्र चर्त्वभूतो निर्दिश्यते । 'ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः' [३/२/१३९], जिष्णुः ॥३॥

विहायैतान् वक्ष्यमाणान्, जुसीगन्तं मिदि शिति ।
तथा ङ्यृदृशं लिटि च, संयोगादिमृतं तथा ॥४॥

व्याख्या : **विहायैतान् वक्ष्यमाणा**निति । योऽयं 'न ङ्क्ङिती'ति निषेधः सः वक्ष्यमाणानपवादान् विहाय- परित्यज्य । तानेवाऽऽह-

जुसीगन्तमिति । जुसि प्रत्यये परतः इगन्तमङ्ग विहाय, तस्मिन् गुणो भवतीत्यर्थः ।[४] अजुहवुः, अबिभयुः, अबिभरुः । अथ विनुयुः, सुनुयुरित्यत्र कस्मान्न भवति, अत्र द्वे ङित्त्वे सार्वधातुकाश्रयं यासुडाश्रयं च । तत्र नाऽप्राप्ते सार्वधातुकाश्रयङित्त्वनिमित्ते प्रतिषेधे जुसि गुणः आरभ्यमाणस्तमेव बाधते । यासुडाश्रयङित्त्वनिमित्तं तु न बाधते, तत्र हि प्राप्ते चाऽप्राप्ते चाऽऽरभ्यत इति ।

मिदि शितीति मिदि- मेद्यति शिति प्रत्यये विहाय । तत्र हि शिति प्रत्यये परतो मिदेरङ्गस्येको गुणो भवति ।[५] यथा- मेद्यतिः, मेद्यन्ति । शितीत्येव-

१. ऊर्णोतेर्विभाषा - ७/३/९० २. क्ङिति च - १/१/५
३. खल्वपीति समस्तमव्ययं यथार्थे - ह.टि. ४. जुसि च - ७/३/८३
५. मिदेर्गुणः - ७/३/८२

मिद्यते । **तथा ऋदृशमिति** । अडिवात्(ङि)ऋवर्णान्तं दृशं च विहायेति सम्बन्धः ।[१] तत्र न ङितीति न प्रवर्त्तते इत्यर्थः, किन्तु ऋवर्णान्तानां दृशेश्चाऽपि ङिपरतो गुणो भवतीत्यर्थः । शकलाङ्गुष्टकोऽकरत् अहं तेभ्योऽकरं नमः (?)। असरत्, आरत्, जरा । दृशेः- अदर्शत्, अदर्शतां, अदर्शन्निति ।

लिटि च संयोगादिमृतं तथेति । लिटि च परोक्षे संयोगादि-संयुक्तादिमृतं- ऋकारान्ताङ्गमपहाय न ङितीति निषेधः प्रवर्त्तते । तत्र तु 'ऋतश्च संयोगादेर्गुणः' [७/४/१०] इति गुणो भवति । यथा- स्वृ शब्दोपतापयोः [पाणि. धा. ९९८]- सस्वरतुः, सस्वरुः । धृ कौटिल्ये [पाणि धा. १००५]- दध्वरतुः, दध्वरुः । स्मृ स्मरणे [पाणि धा. ८५९]- सस्मरतुः, सस्मरुः । ऋत इति किं ? चिक्षियतुः, चिक्षियुः । संयोगादेरिति किं? चक्रतुः, चक्रुः । वृद्धिविषये तु वृद्धिरेव भवति । विप्रतिषेधेन संयोगोपधस्याऽपि लिटि गुणो भवतीति विज्ञेयं- संचस्करतुः, संचस्करुः । अत्र हि पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते, पश्चादुपनतोपसर्गेणेत्यत्र दर्शने लिटि कृते तदाश्रये च द्विर्वचने पश्चादुपसर्गयोगे सत्यङ्ध्यासव्यवायेऽपीति [पाणि. वा. २५३९] सुडिह क्रियते । एवंकृत्वा संस्कृषीष्टेत्यत्र सुटो बहिरङ्गलक्षणस्याऽसिद्धत्वात् 'ऋतश्च संयोगादे'रिति[७/२/४३] इडागमो न भवति ॥४॥

ऋच्छत्यृतश्च याद्येषु, लिङ्-यङ्यक्षुपरेषु च ।
संयोगादिं तथाऽर्त्तिं च, दिधीवेव्योरिटश्च न ॥५॥

व्याख्या : **ऋच्छत्यृतश्चे**त्येतान् विहायेति प्राग्वत् । चकारेण लिटीत्य-नुकृष्यते । ततश्च लिटि परोक्षे ऋच्छतेरङ्गस्य ऋ-इत्येतस्य ऋकारान्तानां च गुणो भवतीत्यर्थः ।[२] ऋच्छ- आनर्च्छ, आनर्च्छतुः, आनर्च्छुः । ऋ- आर, आरतुः, आरुः । ऋकारान्तानां- कृ विक्षेपे [पाणि. धा. १५०२]- निचकरतुः, निचकरुः । गृ निगरणे [पाणि. धा. १५०३]- निजगरतुः, निजगरुः । ऋच्छेरलघूपधत्वात् सर्वथाऽप्राप्तो गुणो विधीयते । ऋतां तु न ङितीति प्रतिषेधे । वृद्धिविषये पूर्वविप्रतिषेधेन वृद्धिरेवेष्यते- निजगार ।

याद्येषु लिङ्यङ्यक्षु परेषु च संयोगादिं तथाऽर्तिं चेति च- पुनः याद्येषु लिङ्-यङ्-यक्षु परेषु संयोगादिं तथार्तिं च परित्यज्य न ङितीति

---

१. ऋदृशोऽङि गुणः - ७/४/१६ २. ऋच्छत्यृताम् - ७/४/११

प्रतिषेधः प्रवर्त्तते इति सण्टङ्कः । अर्त्तेः संयोगादेश्च ऋतः निषेधं प्रतिषिध्य गुणो भवतीत्यर्थः ।[१] लिङीति आशीषिविहितलिडादेशा आर्धधातुकसंज्ञका गृह्यन्ते । लिङि– अर्यात् । संस्क्रियते, संस्क्रियात् । इह सुटो बहिरङ्गलक्षणस्याऽसिद्धत्वात् अभक्तत्वाद् वा संयोगादित्वं नाऽस्तीत्यङ्गस्य गुणो न प्रवर्त्तते । यङि– अरार्यते, सास्वर्यते, दीध्वर्यते, सास्मर्यते । अर्त्तेरङ्यर्त्त्यश्रृणोतीनामुपसंख्यानामिति यङ्नन्द्राः संयोगादय इति द्विर्वचनप्रतिषेधो यकारपरस्य नेष्यते इति (?) । यकि– अर्यते, स्मर्यते । याद्येष्विति संभवाद् व्यभिचाराच्च विशेषणं भवतीति। लिङो व्यभिचाराद् विशेषणम्, आत्मनेपदे सीष्टादौ लिङादेशत्वेऽपि यादित्वाभावाद् गुणो न प्रवर्त्तते । यङ्यकोः संभवाद् विशेषणं, व्यभिचाराभावात् ।

न क्ङितीत्यस्याऽपवादाः– **दीधीवेव्योरिटश्च ने**ति । दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः [पाणि धा. ११५२] वेवीङ् वेतिना तुल्ये [पाणि धा. ११५३]। इट'श्चाऽऽर्धधातुकस्येड्वलादेः' [७/२/३५] इत्यादिना प्रकरणेन विहित आगमस्तस्य च गुणवृद्धी न भवति(तः), निमित्तानुपादानात् सर्वत्रेति भावः ।[२] वृद्धिरिटो न संभवति, [परं] यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गमिति परिभाषया इटोऽप्यङ्गेऽन्तर्भावात् अकारिषमित्यादौ लघूपधगुणः प्राप्तः, सोऽनेन प्रतिषिध्यते। श्वः कणिता, श्वो रणितेत्यादावन्त्यस्य गुणे प्राप्ते निषेधः । आदीध्यनं, आदीध्यकः, आवेव्यनं, आवेव्यकः । गुणवृद्ध्योरभावादेरनेकाचोऽङ्गस्य यण् ।[३] 'इको गुणवृद्धी' [१/१/३] इत्यतो गुणवृद्धीति पदमनुवर्त्तते ॥५॥

सर्वत्र न धातुलोपे, स[४] भवेदार्धधातुके ।
परस्मैपदे सिचीगन्ते, वृद्धिर्भवति बाधिका ॥६॥

व्याख्या :– **ते** इति गुणवृद्धी **सर्वत्र धातुलोपे आर्धधातुके**– तिङ्शिद्व्यतिरिक्ते प्रत्यये न भवेत्, निमित्ते सत्यपि । क्ङिद्व्यतिरिक्ते सार्व-धातुकार्धधातुकप्रत्यये निमित्तं, तस्मिन् सत्यपि तद्विधायकं सूत्रं न प्रवर्त्तते इत्यर्थः । धातुलोप इति अवयवे समुदायोपचाराद् धात्वेकदेशो धातुस्तस्य लोपो

---

१. गुणोऽर्त्तिसंयोगाद्योः – ७।४।२९ २. दीधीवेवीटाम् – १/१/६

३. एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य – ६/४/८२

४. टीकायां 'स' स्थाने 'ते' इति प्रतीकोपादानम्, पुनः तत्सम्बन्धि क्रियापदं 'भवेत्' इत्येव निर्दिष्टमित्यसमञ्जसता कथं समाधेयेति विद्वद्भिश्चिन्तनीयम् ।

यस्मिन्नार्द्धधातुके तदार्धधातुकं धातुलोपं, तत्र ये गुणवृद्धी प्राप्नुतस्ते न भवति इति गर्भार्थः ।[१] यथा- लोलुवः, पोपुवः, मरीमृजः । लोलूयादिभ्यो यङन्तेभ्यः पचाद्यचि विहिते यङोऽचि च [२/४/७४] इति यङ्लुकि कृते तमेवाऽचमाश्रित्य ये गुणवृद्धी प्राप्ते तयोः प्रतिषेधः । धातुग्रहणं किं ? लूञ्, अनुबन्धलोपे भवत्येव, यथा- लविता । धातुग्रहणादेव प्रत्ययलोपे भवत्येव । यथा- रेट्, रिषे हिंसार्थस्य [पाणि. धा. ७३९] । विच्प्रत्ययलोपे उदाहरणम् । आर्धधातुकग्रहणात् सार्वधातुके भवत्येव । यथा- बोभोति, वरीवर्त्ति । इक इत्येव- अन्यत्र पापाचकः, अभाजि, रागः । पापाचक इत्यत्र यङो धात्ववयवस्य लोपे; अभाजि, राग इत्यत्र अनुस्वारस्य धात्ववयवस्य लोपेऽपि इग्लक्षणवृद्धेरभावा'दत उपधाया' इति [७/२/११६] वृद्धिर्भवत्येव ।

परस्मैपदे सिचीगन्ते वृद्धिर्भवति बाधिका इति **परस्मैपदे सिचि** परतः **इगन्ताङ्गे वृद्धिर्बाधिका भवति** अर्थाद् गुणस्य ।[२] अवैषीत्, अनैषीत्, अलावीत्, अवावीत्, अकार्षीत् । अन्तरङ्गमपि गुणमेषा वृद्धिर्ज्ञापकत्वाद् बाधत इत्यर्थः । अन्तरङ्गत्वं पुनर्गुणस्याऽऽर्द्धधातुकमात्रापेक्षत्वात् । वृद्धेस्तु आर्धधातुकविशेष-परस्मैपदपर-सिचमपेक्षमाणाया बहिरङ्गत्वं च । ज्ञापकं त्विदम्- यद्यन्तरङ्गो गुणो वृद्धेः प्राक् प्रवर्त्तेत तदा सर्वत्राऽयादेशे कृते यान्तत्वादेव 'ह्म्यन्तक्षणे'ति [७/२/५] वृद्धिनिषेधे सिद्धे, तत्रैव णिश्रि-ग्रहणं न कुर्यात्, तत्तु कृतं, तत्करणाज्ज्ञायते अन्तरङ्गमपि गुणं वृद्धिर्बाधत इति । परस्मैपद इति किं ? अच्योष्ट, अश्लोष्ट । इगन्त इति किं ? अदेवीत्, असेवीत् । इगुपधस्य गुणो भवत्येव ॥६॥

जागृणिश्चीन् विहायैवा-ऽनिटां चैवाऽविशेषतः ।
बाधते वृद्धिरत्यन्तं, मृजेर्वृद्धिर्गुणाद् भवेत् ॥७॥

व्याख्या : **जागृणिश्चीन् विहायैवेति** एतान् परित्यज्य वृद्धिर्बाधिका भवति, एतेषु गुण एव भवतीत्यर्थः । जागृ- अजागरीत् । अत्र जागृ-ई इति स्थिते पूर्वं यण् प्राप्तस्तं सार्वधातुकगुणो बाधते, तं सिचि वृद्धिस्तां जागर्त्ति गुणस्तत्र कृते हलन्तलक्षणा वृद्धिः । अङ्गवृत्त इत्येतत्तु निष्ठितत्वाच्च दुर्ज्ञानत्वादनाश्रित्य यदि, तर्हि गुणे रपरत्वे च कृति लक्षणान्तरेण वृद्धिर्भवति तदा जागरक इत्यादावजन्तलक्षणां वृद्धिं बाधित्वा गुणे प्रवृत्ते रपरत्वे च 'अत

१. न धातुलोप आर्धधातुके - १/१/४ २. सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु - ७/२/१

उपधाया' [७/२/११६] इति वृद्धिः प्राप्नोति, नैष दोषः, चिण्णमुलोर्गुण-प्रतिषेधाल्लिङ्गादुपधालक्षणवृद्धिर्न भवति इत्यवसीयते । अन्यथा चिण्णमुलोः गुणरपरत्वयोः कृतयोरुपधालक्षणया वृद्ध्या सिध्यति रूपमिति प्रतिषेधं न विदध्यात् ।[१] 'यदि तु गुणे कृते वृद्धिमात्राप्रवृत्ते लिङ्गं चेण्णमुलोः प्रतिषेध आश्रीयते तदा जागृग्रहणं शक्यमकर्तुं, सो 'नेटि' इत्यनेन [७/२/४] प्रतिषिध्यते तस्यां च प्रतिषिद्धायां 'अतो हलादे'रिति [७/२/७] विकल्पः प्राप्नोति, तमपि बाधित्वा'दतो ल्रान्तस्ये'ति [७/२/२] नित्या वृद्धिः । तां बाधितुं जागृणिश्वी[ति] जागृग्रहणम् । तथोक्तम्-

''गुणोवृद्धिर्गुणो वृद्धिः, प्रतिषेधो विकल्पनम् ।
पुनर्वृद्धिर्निषेधोऽतो, यण्पूर्वाः प्राप्तयो न वा ॥'' इति

क्ङित्यचि मृजेर्वृद्धिर्वेष्यते[२], तेन मृजन्ति, मार्जन्तीति रूपद्वयसिद्धिः, सा तु गुण(णा)विषयकत्वान्नोक्ता । णि- ऊनयीत्, एलयीत् । श्वि- अश्वयीत् ।

अनिटां चैवाऽविशेषतः बाधते वृद्धिरत्यन्तमिति च पुनरनिटां धातूनां अविशेषत एव सामान्यत एव अन्ते उपधायां चेत्यर्थः, अत्यन्तमपवादराहित्येन वृद्धिर्बाधते ।[३] अकार्षीत्, अहार्षीत्, अभैत्सीत्, अच्छैत्सीदिति ।[४]

मृजेर्वृद्धिः [७/२/११४] **गुणाद् भवेत्** इति गुणाद् गुणनिमित्ताद् गुणकारणात् क्ङिद्भर्जसार्वधातुकार्द्धधातुकादिति, यावदर्थाद् गुणं बाधित्वा वृद्धिर्भवति निरवकाशत्वात् । मार्ष्टा, मार्ष्टव्यं, परिमार्ष्टि ॥७॥

तथैव शीङः सर्वत्र, गुणः स्यात् सार्वधातुके ।
सिच् ऊ(च्यू)र्णोतेर्विकल्पेन, गुणस्य विषयस्त्वयम् ॥८॥

व्याख्या :- **तथैव शीङः सर्वत्र गुणः स्यात् सार्वधातुके** इति शीङः सर्वत्र सार्वधातुके गुणस्स्यात् ।[५] सर्वत्रग्रहणं न क्ङितीति निषेधबाधनार्थम्, तेन तत्रापि गुणो भवतीत्यर्थः । शेते, शयाते, शेरते । सार्वधातुक इति किं ?

१. चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम् - ६/४/९३
२. मृजेरजादौ सङ्क्रमे विभाषा वृद्धिरिष्यते - वा० ।
३. 'नेटि' [७/२/४] इत्यनेन सूचितमिदम् ।
४. सिचि वृद्धि० - ७/२/१, वदव्रजहलन्तस्याऽचः - ७/२/३
५. शीङः सार्वधातुके गुणः - ७/१/२१

शिश्ये। लिडादेशानां तिङ्शितां 'लिङ्चे'ति [३/३/१५९] सूत्रेणाऽऽर्द्धधातुकत्वप्रतिपादनात् प्रत्युदाहरणम् ।

सिचीति **ऊर्णोतेः** इडादौ सिचि परस्मैपदे परे परतो विकल्पेन गुणो भवति ।[१] प्रौर्णवीत् । पक्षे वृद्धिः- प्रौर्णावीत् । 'विभाषोर्णोः' [१/२/३] इत्यङित्त्वपक्षे वृद्धिविकल्पोऽयम् । ङित्त्वपक्षे तु गुणवृद्ध्योरभावे तु उवङ् भवति- प्रौर्णुवीत् । **अयं**- पूर्वोक्तो **गुणस्य विषयः** - गोचरं, प्रोक्तः इति गम्यते, तुः पादपूर्त्तौ ॥८॥

कुटादिभ्योऽञ्णितः सर्वे, गाङश्चाऽपि ङितः स्मृताः ।
विज इड् विभाषोर्णोते-स्तथाऽपित् सार्वधातुकम् ॥९॥

व्याख्या : **कुटादिभ्योऽञ्णितः सर्वे गाङश्चापि ङित स्मृता** इति। गुणप्रतिषेधविषये 'न क्ङिति क्वचनाऽपिही'त्युक्तम् । तत्रौपदेशिकस्य सुखाभिगम्यत्वादातिदेशिकं ङित्त्वं दर्शयन्नाह- कुट कौटिल्ये [पाणि. धा. १४५४] इत्यत आरभ्य यावत् कुङ् शब्दे [पाणि. धा. १४९३] एते कुटादयो गृह्यन्ते, तेभ्यस्तथा गाङः इति ङकारस्याऽनन्यार्थत्वादिङादेशो गृह्यते, न गां गता [पाणि. धा. १०१६] इति धातुः, तस्माच्च मे(परे)ऽञ्णितो ञिणि-तद्ध्यतिरिक्ताः सर्वे समस्ताः प्रत्यया ङितः स्मृता इति ङिद्वद् भवन्तीत्यर्थः ।[२] कथं पुनरन्तरेण वर्तिवत्यर्थो गम्यते ? उच्यते- अन्तरेणाऽपि वर्ति- वत्यर्थो गम्यते । यथा- सिंहो माणवकः, यथा वा अब्रह्मदत्तं ब्रह्मदत्त इत्याह (इत्युक्ते) ब्रह्मदत्तवदयं भवतीति प्रतीयते, एवमिहाऽपि अङितं ङिदित्याह, ङिद्वद्भवतीति गम्यते । कुटादिभ्यः- कुटिता, कुटितुं, कुटितव्यम्। गाङ्- अध्यगीष्ट, अध्यगीषातां, अध्यगीषत् । अञ्णित इति किं ? उत्कोटयति, उत्कोटकः, उत्कोटो वर्त्तते । व्यचेः कुटादित्वमनसीति वक्तव्यं[वा०]- विचिता; विचितुं, विचितव्यम् । अनसीति किं ? उरुव्यचाः ।

विज इडिति । ओविजी भयचलनयोरस्मात् पर इडादिप्रत्ययो ङिद् भवति।[३] उद्विजिता, उद्विजितुं, उद्विजितव्यम्। इडिति किं ? उद्वेजनीयम् ।

विभाषोर्णोतेरिति । इडित्यनुवर्त्तते। ऊर्णुञ् आच्छादने [पाणि. धा.

---

१. ऊर्णोतेर्विभाषा - ७/२/६ २. गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् - १/२/१
३. विज इट् - १/२/२

१११४] अस्मात् पर इडादिप्रत्ययो विभाषा- विकल्पेन ङिद्भवति ।[१] प्रोर्णुविता, प्रोर्णविता । इडित्येव- प्रोर्णवनं, प्रोर्णवनीयम् ।

तथाऽपित् सार्वधातुकमिति तथा अपित् सार्वधातुकं ङिद्वद् भवति ।[२] इडिति निवृत्तम् । कुरुतः, कुर्वन्ति, चिनुतः, चिन्वन्ति । सार्वधातुकमिति किं ? कर्त्ता, कर्त्तुं, कर्त्तव्यम् । अपिदिति किं ? करोति, करोषि, करोमि ॥९॥

लिङ् वाऽसंयोगतः कित् स्यात्, तथेधेर्भवतेः परः ।
क्त्वा मृडादिगणात् सेट्को, रुदादिभ्यः सना युतः ॥१०॥

व्याख्या : **लिङ् वाऽसंयोगतः कित् स्या**दिति वा-शब्द एवकारार्थः । असंयोगत एव- असंयोगादेव धातोः परो लिट्प्रत्ययः अपित् किद् भवति ।[३] बिभिदतुः, बिभिदुः, चिच्छिदतुः, चिच्छिदुः, ईजतुः, ईजुः । असंयोगादिति किं ? सस्रंसे, दध्वंसे । केचितु संयोगाल्लिटः कित्त्वं विकल्पयन्ति । तन्मते- ममथतुः, ममथुः ममन्थतुः, ममन्थुः । अपिदित्येव- बिभेदिथ । पूर्ववदत्राऽपि वतिमन्तरेणाऽपि वत्यर्थो गम्यते ।

तथेधेर्भवतेः पर इति । तथा इधेर्भवतेश्च परे लिट्प्रत्ययः किद् भवति ।[४] समीधे दस्युहतमम् । पुत्र ईधे अथर्वणः । भवतेः खल्वपि- बभूव, बभूविथ । इन्धेः संयोगार्थं ग्रहणम्, भवतेः पिदर्थं, तेन बभूवेत्यत्राऽऽतिदेशिककित्त्वेन स्वनिमित्तौपदेशिकणित्त्वस्योपहतत्वाद् वृद्धिसूत्रं न प्रवर्त्तते । गुणस्त्वविशेषविहितत्वेन तत्रापि प्रवर्त्तते एवेति तन्निवृत्तिर्न क्ङितीतित्यनेन ।

यत्तु कृष्णपण्डितेन- ''ननु इग्लक्षणयोर्गुणवृद्ध्योः क्ङिति चेति निषेध इत्युक्तं, तत्कथमज्लक्षणाया वृद्धेर्निषेधः ? न च कित्त्ववैयर्थ्यं, थलि उत्तमे णलि च गुणनिषेधार्थत्वेनोपपत्तेः, सत्यं, कित् ङिदित्युभयमत्राऽनुवर्त्तते । तत्र कित्त्वेनैव सिद्धे ङित्त्वविधेरज्लक्षणाया अपि निषेधो भवती''त्युक्तं तत्तु न सम्यक् प्रतिभाति, कित्त्वेन णित्त्वबाधात् किति तु विधिसूत्राभावादेव वृद्धेरभावस्ततो न क्ङितीति सूत्रेण तत्प्रतिषेधविधानं व्यर्थमेव । यदि विधायकसूत्राभावेऽपि वृद्धेः प्रतिषेधः क्रियेत, तदा भवतीत्यादौ पित्यपि प्रसजन्ती वृद्धिः कथं वार्या स्यात् ? कित् ङिदित्युभयमनुवर्त्तते इति यदुक्तं, तदपि न, अधिकारान्तरेणा-

---

१. विभाषोर्णोः - १/२/३
२. सार्वधातुकमपित् - १/२/४
३. असंयोगाल्लिट् कित् - १/२/५
४. इन्धिभवतिभ्यां च - १/२/६

ऽधिकारस्य बाध इति किदधिकारेण ङिदधिकारस्य बाधितत्वात्। उभयानुवृत्तौ हि वचिस्वपियजादीनां जागर्त्तेश्च संप्रसारणगुणयोर्विकल्पः प्रसज्येत।

ननु कृताकृतप्रसङ्गत्वेन नित्यत्वाद् वुगेव गुणवृद्धी बाधिष्यते तत् किं कित्त्वेन प्रतिषेधार्थेन ? न च कृतयोर्गुणवृद्ध्योरेजन्तस्य प्राप्नोत्यकृतयोस्तूदन्तस्येति शब्दान्तरप्राप्त्या वुकोऽनित्यत्वम् । एकदेश विकृतस्याऽनन्यत्वेन शब्दान्तर-प्राप्त्यभावात् । सत्यं, तदेतद् वार्त्तिककारस्य मतम् । यदाह- 'इन्धेः छन्दो-विषयत्वाद् भुवो वुको नित्यत्वात्, ताभ्यां लिटः किद्वचनानर्थक्यमिति । सूत्रकारस्तु मन्यते वुगनित्य इति । तद्विधौ हि 'ओः सुपि' [६/४/८३] इत्यतः ओरित्यनुवर्त्तते। उवर्णान्तस्य भुवो वुग् यथा स्यात्, बोभावेति यङि लुकि मा भूदिति । तत्र हि इन्धिभवतिभ्यां च इति श्तिपा निर्देशेन कित्त्वं व्यावर्त्यते, तेन वृद्धिरेव भवति । एवं च यथा तत्राऽनुवर्णान्तत्वाद् वुग् न भवति, एवं बभूवेत्यत्रापि वृद्धौ कृतायां न प्राप्नोतीत्यनित्यो वुक् परया वृद्ध्या मा बाधीत्यारम्भणीयं कित्त्वम् । एष एव च कित्त्वे श्तिपा निर्देशं लुकि च तदभावं कुर्वतः सूत्रकृतोऽभिप्रायः । अत्रेष्टिः(त्र)श्रन्थिग्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनामिति वक्तव्यम् (वा०) । ग्रेथतुः, ग्रेथुः, देभतुः, देभुः, परिषस्वजे, परिषस्वजाते ।

क्त्वा मृडादिगणात् सेट्क इति । मृड् मृद् गुध् कुष् क्लिश् वद् वस् एते मृडादयः । एभ्यः परः सेट्क्त्वाप्रत्ययः किद्भवति ।[१] 'न क्त्वा सेडि'ति [१/२/१८] प्रतिषेधं वक्ष्यति, तस्याऽयं पुरस्तादपकर्षः, अपवाद इति यावत्। गुधकुषक्लिशानां तु 'रलो व्युपधा'दिति विकल्पे प्राप्ते नित्यार्थं वचनम्। मृडित्वा, मृदित्वा, गुधित्वा, कुषित्वा, क्लिशित्वा ।

रुदादिभ्यः सना युतः इति। रुदादिभ्य इति रुदादिगणात्, रुद् विद् मुष् ग्रहि स्वपि प्रच्छ इत्येतेभ्यः सना युतः क्त्वा, सन्प्रत्ययेन सहितः क्त्वाप्रत्ययः किद्भवति ।[२] रुदविदमुषाणां 'रलो व्युपधा'दिति विकल्पे प्राप्ते नित्यार्थं वचनं ग्रहे विध्यर्थमेव, स्वपिपृच्छ्योः सनर्थं ग्रहणं, किदेव हि क्त्वा। रुदित्वा, रुरुदिषते, विदित्वा, विविदिषते, मुषित्वा, मुमुषिषति, गृहीत्वा, जिघृक्षति, सुप्त्वा, सुषुप्सति, पृष्ट्वा, पिपृच्छिषति । ग्रहादीनां कित्त्वात् संप्रसारणं भवति।[३] 'किरश्च पञ्चभ्यः' [७/२/७५] इति पृच्छेरिडागमः ।

---

१. मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा - १/२/७

२. रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च - १/२/८ ३. ग्रहिज्यावयिव्यधि० - ६/१/१६

इगन्तादिगुपान्त्याच्च, झलादिसन् किदिष्यते ।
झलादी लिङ्सिचावात्म-नेपदेष्विगुपान्त्यतः ॥११॥

व्याख्या : **इगन्तादिगुपान्त्याच्च झलादिः सन् किदिष्यत** इति ।[१] सन्ग्रहणात् क्त्वेति निवृत्तम् । चिकीर्षति, जिहीर्षति । इगन्तादिति किं ? पिपासति, तिष्ठासति । कित्त्वाभावाद् घुमास्थेतीत्वाभावः [६/४/६६] । झलादिरिति किं ? शिशयिषते । इगुपान्त्याद्- बिभित्सति, बुभुत्सते । इगुपान्त्यादित्येव- यियक्षति । अकित्त्वात् सम्प्रसारणाभावः । झलादीत्येव- विवर्द्धिषते । इटा व्यवहितत्वात् सनो न कित्त्वं, तेनोपधागुणः । पाणिनीयसूत्रापेक्षया हल्- ग्रहणस्य जातिवाचकत्वात् सिद्धं- धिप्सति ।

झलादी लिङ्सिचावात्मनेपदेष्विगुपान्त्यत इति । इक उपान्त्यन्तस्थ- समीपे यस्य स इगुपान्त्यः- इगुपध इत्यर्थः । तस्मात् परौ झलादी लिङ्सिचौ आत्मनेपदेषु परतः कितौ भवतः ।[२] भित्सीष्ट, भुत्सीष्ट । सिचि [३]खल्वपि- अभित्त, अबुद्ध । इगुपान्त्य इति किं ? यक्षीष्ट, अयष्ट । अकित्त्वात् संप्रसारणा- भावः । आत्मनेपदेष्विति किं ? अस्राक्षीत्, अद्राक्षीत् । अत्र कित्त्वाभावात् 'सृजिदृशोर्झल्यमकिति' [६/१/५८] इत्यमागमः ।

ऋवर्णान्ताद् वा गमश्च, हनः सिच् गन्धने यमः ।
दक्षो दाक्षीसुतश्चख्यौ, वा चोपात् पाणिपीडने ॥१२॥

व्याख्या : **ऋवर्णान्तादि**ति । ऋवर्णान्ताद् धातोः परौ लिङ्- सिचावात्मनेपदेषु झलादी कितौ भवतः ।[४] कृषीष्ट, हृषीष्ट । सिचि खल्वपि- अकृत, अहृत । 'ह्रस्वादङ्गा'[८/२/२७]दिति सिचो लोपः । झलीत्येव- वरिषीष्ट, अवरिष्ट ।

वा गमश्चेति चकारो लिङ्सिचोरनुकरणार्थः । ततोऽयमर्थः- वेति विकल्पेन गमः परौ लिङ्सिचौ आत्मनेपदेषु झलादी कितौ भवतः ।[५] संगसीष्ट,

---

१. इको झल् - १/२/९, हलन्ताच्च - १/२/१०
२. लिङ्सिचावात्मनेपदेषु - १/२/११
३. खल्वपीति यथार्थेऽव्ययम् - ह. टि.
४. उश्च - १/२/१२ ५. वा गमः - १/२/१३

समगत, समगंस्त। संगंसीष्ट, अत्र कित्त्वपक्षेऽनुनासिकलोपो भव'त्यनुदात्तोपदेशवन-तितनोत्यादीना'[६/४/३७]मित्यनेन ।

हनः सिच् [१/२/१४] इति हन्तेर्धातो परः सिच् किद् भवति । आहत, आहसातां, आहसत । सिचः कित्त्वादनुनासिकलोपः । सिज्ग्रहणं लिङ्निवृत्यर्थं, उत्तरत्राऽनुर्वृत्तिर्मा भूत् । आत्मनेपदग्रहणमुत्तरार्थमनुवर्त्तते, इह तु परस्मैपदेषु हन्तेर्वधभावस्य नित्यत्वात् कित्त्वस्य प्रयोजनं नास्ति ।[१]

गन्धने यम इति सिचावात्मनेपदेष्विति वर्त्तते । यमेर्धातोर्गन्धने वर्त्तमानात् परः सिच्प्रत्ययः किद् भवति आत्मनेपदेषु परतः ।[२] गन्धनं सूचनं परेण प्रच्छाद्यमानस्याऽवद्यस्याऽऽविष्करणम् । अनेकार्थत्वाद् धातूनां यमिस्तत्र वर्त्तते । उदायत, उदायसातां, उदायसत । सूचितवान् इत्यर्थः । सिचः कित्त्वादनुनासिक-लोपः ।

तथा **दक्षो दाक्षीसुतः**-पाणिनि**श्चख्यौ**- अचीकथत् । किं? **वा चोपात् पाणिपीडने** इति यमः सिश्चात्मनेपदेष्विति वर्त्तते । यमेर्धातोः परः सिच्प्रत्ययो विभाषा किद् भवति आत्मनेपदेषु परतः ।[३] उपायत कन्यां, उपायंस्त कन्याम्। उपायत भार्यां, उपायंस्त भार्याम् । पाणिपीडनं विवाहनं दारकर्मेति यावत् । उपाद्यमः स्वकरणे [१/३/५६] इत्यात्मनेपदम् ॥१२॥

स्थाघ्वोरिच्च विभाषा क्त्वा, थफान्तान्नोपधाच्च सेट् ।
[४]वञ्चिलुञ्चिऋतश्चाऽपि, काश्यपस्य तृषेर्मृषेः ॥१३॥

व्याख्या :- **स्थाघ्वोरिच्चे**ति [१/२/२७] सिजात्मनेपदेष्विति वर्त्तते। तिष्ठते-धातोर्घुसंज्ञकानां च इकारोऽन्तादेशः सिच्च किद् भवति आत्मनेपदेषु परतः। उपास्थित, उपास्थिषातां, उपास्थिषत । घुसंज्ञकानां- अदित, अधित । कित्त्वादन्त्यस्य न गुणः ।

विभाषा क्त्वा थफान्तान्नोपधाच्च सेडिति । नकारोपधाद् धातोः थकारान्तात् फकारान्ताच्च परः क्त्वा प्रत्ययः सेड् वा किद् भवति ।[४] ग्रथित्वा, ग्रन्थित्वा, श्रथित्वा, श्रन्थित्वा, गुफित्वा, गुम्फित्वा । नोपधादिति किं ?

१. हनश्च वधः - ३/३/७६
२. यमो गन्धने - १/२/१५
३. विभाषोपयमने - १/२/१६
४. अत्र समाहारद्वन्द्वे पञ्चमी - ह.टि.
५. नोपधात् थफान्ताद् वा - १/२/२३

रेफित्वा, गोफित्वा । ''रलो व्युपधादि'त्यपि[१/२/२६] विकल्पोऽत्र न भवति, नोपधाग्रहण-सामर्थ्यादिति स्थित''मित्युक्तं कृष्णेन । तत्र नोपधाग्रहणस्य कीदृशं सामर्थ्यं ? किं रलो व्युपधेति सर्वत्र नोपधाऽनोपधयोरविशेषेण कित्त्वप्राप्ते इदमारभ्यते ?, येन सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः इति सामर्थ्यं स्यात् ? यतो नोपधग्रहणेनैव व्युपधत्वस्य व्यवहितत्वाद् रलो व्युपधेति विकल्पस्य सर्वथा बाधितत्वाद् व्यर्थ-मेवेदम् । अत एवाऽभिन्नविषयत्वात् व्युपधाभावेऽपि 'श्रथित्वा, श्रन्थित्वे'-त्युदाह्रियते । अत एव भाष्यकृद्भगवता बाध्यबाधकभावोऽपि नाऽऽविश्चक्रे। तेन सामर्थ्यान्तराभावाद् रिफित्वा, रेफित्वा, गुफित्वा, गोफित्वेति विकल्पेन भाव्यं, तथा चार्फित्वेति प्रत्युदाहर्तुं युज्यते । तथा तु नो प्रत्युदाहृतं वामनाचार्येण । तेन तदभिप्रायं सम्यग् नावसीयते । हैमधातुपारायणे रिफत् कथन-युद्ध-हिंसा-दानेषु [सिद्ध. धा. १३७६]-रिफति, रिरेफ, रेफिता, रिफितः, न्युपान्त्य इति व्यावृत्तिबलात्, ऋत्तृषमृषेति [सिद्ध. ४/३/२४] वौ व्यञ्जनादेरिति [सिद्ध. ४/३/२५] च वा कित्त्वाभावे क्त्वेति [सिद्ध. ४/३/२९] नित्यमकित्त्वे रेफित्वेत्युक्तं तदपि विचार्यमाणं विशीर्यते । थफान्तादिति किं ? संस्रित्वा, ध्वंसित्वा ।

वञ्चिलुञ्चिऋतश्चाऽपि इति वञ्चि लुञ्चि ऋत इत्येतेभ्यः परे क्त्वाप्रत्ययः सेड् वा किद् भवति ।[१] वचित्वा, वञ्चित्वा, लुचित्वा, लुञ्चित्वा, ऋतित्वा, अर्तित्वा । 'ऋतेरीयङ्' [३/१/२९]आर्द्धधातुके विकल्पितः[२], स यत्र पक्षे नाऽस्ति तत्रेदमुदाहरणम् । सेडित्येव- वर्क्तृवा ।

काश्यपस्य तृषेर्मृषेः ॥१३॥

कृशो हलादेर्व्युपधा-द्रलन्तात् संस्तथैव च ।
अतिदेश-क्ङितः प्रोक्ताः सुबोधा उपदेशिकाः ॥१४॥

व्याख्या :- **कृश** इति काश्यपस्याऽऽचार्यस्य मतेन तृषेर्मृषेः कृशश्च परः सेट् क्त्वाप्रत्ययो वा किद् भवति ।[३] तृषित्वा, तर्षित्वा, मृषित्वा, मर्षित्वा, कृशित्वा, कर्शित्वा । काश्यपग्रहणं पूजार्थम् । वेत्येव वर्त्तते ।

हलादेर्व्युपधाद्रलन्तात् संस्तथैव चेति । उश्च इश्च वी, वी उपधे

१. वञ्चिलुञ्च्यृतश्च - १/२/२४ २. आयादय आर्धधातुकेवा - ३/१/३१
३. तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य - १/२/२५

यस्य धातुगणस्य स व्युपधः, तस्मादुकारोपधादिकारोपधाच्च धातोर्हलादेः रलन्तात् परः संश्च क्त्वा च सेटौ कितौ भवतो वा ।[१] द्युतित्वा, द्योतित्वा, दिद्युतिषति, दिद्योतिषति, लिखित्वा, लेखित्वा, लिलिखिषति, लिलेखिषति । रल इति किं? देवित्वा, दिदेविषति । व्युपधादिति किं ? वर्त्तित्वा, विवर्त्तिषति । हलादेरिति किं ? एषित्वा, एषिषिषति । सेडित्येव- भुक्त्वा, बुभुक्षते ।

अतिदेशक्ङितः प्रोक्ता इति स्वरूपेण(णाऽ?)क्ङितोऽपि सन्तः अतिदेशेन तद्वत्करणेन क्ङित्कार्यभाक्त्वेन क्ङितः अतिदेशक्ङितः प्रोक्ताः- पूर्वं प्रतिपादिताः ।

सुबोधा उपदेशिका इति उपदेशपाठः तत्र भवाः उपदेशिकाः क्त्वादयः सुबोधाः- सुखज्ञेयाः ॥१४॥

सुबोधा इत्युक्तं तदेवाऽपवादविषयं प्रदर्शनेन स्पष्टयति न क्त्वा सेट्क इत्यादिना सार्द्धश्लोकेन -

न क्त्वा सेट्कस्तथा निष्ठा, धृष्शीङ्भ्यां स्विन्मिदिक्ष्विदः ।
मृषस्तितिक्षावचनात्, तथा भावादिकर्मणोः ॥१५॥
उदुपान्त्याद् विकल्पेन, तथा पूङः कितौ मुनेः ।

व्याख्या :- **न क्त्वा सेट्क** इति सह इटा वर्त्तते यः स सेट्कः । सेट्कः क्त्वाप्रत्ययः किन्न भवति ।[२] देवित्वा, सेवित्वा, वर्त्तित्वा । सेट्क इति किं ? कृत्वा, धृत्वा । क्त्वाग्रहणं किं ? जिगृहीतिः, उपस्निहितिः, निकुचितः ।

धृष्शीङ्भ्यां स्विन्मिदिक्ष्विद इत्येतेभ्यः परा- धृषादिपरा **निष्ठा** किन्न भवति ।[३] तथेति सेट्का निष्ठा 'क्तक्तवतू' [१/१/२५] रूपा किन्न भवति । धृष्- प्रधर्षितः, प्रधर्षितवान् । शीङ्- शयितः, शयितवान् । स्विदि- प्रस्वेदितः, प्रस्वेदितवान् । [मिदि-] प्रमेदितः, प्रमेदितवान् । [क्ष्विदि-] प्रक्ष्वेदितः, प्रक्ष्वेदितवान् । सेडित्येव- स्विन्नः, स्विन्नवान् । स्विदादीनां 'आदितश्चे'[७/२/१६]ति निष्ठायामिट् प्रतिषिध्यते । 'विभाषा भावादिकर्मणो'रिति पक्षे [७/२/१७] इडनुज्ञायते स विषयः कित्त्वप्रतिषेधस्य ।

---

१. रलो व्युपधाद्धलादेः सँश्च - १/२/२६ २. न क्त्वा सेट्- १/२/१८
३. निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः - १/२/१९

मृषस्तितिक्षावचनादिति । मृषेर्धातोः तितिक्षावचनात् तितिक्षार्थात् सेड्निष्ठा किन्न भवति इति।[१] मर्षितः, मर्षितवान् । तितिक्षावचनादिति किं ? अपमृषितं वाक्यमाह । तितिक्षा- क्षमा, क्षान्तिरिति यावत् ।

तथा भावादिकर्मणोः उदुपान्त्याद् विकल्पेनेति, उदुपान्त्यात्- उकारोपधात् परा भावादिकर्मणोः सेण्निष्ठा वा किन्न स्यात् ।[२] द्योतितं, द्युतितं, तेन प्रद्युतितः, तेन प्रद्योतितः । मुदितमनेन, मोदितमनेन, प्रमुदितः, प्रमोदितः । उदुपधादिति किं ? स्वेदितमनेन । भावादिकर्मणोरिति किं ? रुचितं कार्षापणम् । सेडित्येव- प्रभुक्त ओदनः । व्यवस्थितविभाषा चेयं तेन शब्विकरणानामेव भवति । गुध् परिवेष्टने [पाणि. धा. ११९५] गुधितमित्यत्र न भवति । कर्मक्रिया एकफलोद्देशप्रवृत्ताऽनेकक्षणसमूहरूपा, तस्या आदिक्षणः आदिकर्म । आद्यक्षणे प्रवृत्ते धात्वर्थभूता क्रिया नाऽप्रवृत्तेति वचनम् । अथवा न्यायसिद्धोऽयमर्थः, आदिक्षणमात्रे क्रियात्वारोपात्, तदुक्तम्-

''समूहः स तथाभूतः, प्रतिभेदं समूहिषु ।
समाप्यते ततो भेदे, कालभेदस्य सम्भवः ॥'' इति ।

तथा पूङः कितौ इति पूङः परः क्त्वाप्रत्ययः निष्ठा च सेड् न किद् भवति ।[३] पवितः, पवितवान् ।

मुनेः- पाणिनेः सूत्रानुसारर्य्ययं गुणातिदेशिकविचारः ।

श्रीमद्गुरोः प्रसादेन प्रापञ्चि मतिकीर्तिना ॥१६॥

श्रीयुगप्रधानश्रीमच्छ्री**जिनसिंहसूरि**विजयिराज्ये श्रीमदुरूणां श्री**जयसोम**-महोपाध्यायानां प्रसादेनाऽनुभावेन **मतिकीर्त्तिना** पाठकश्री**गुणविनय**विनेयेन प्रापञ्चि- प्रपञ्चितो विस्तारितः । श्लोकबन्धेन पाणिनिसूत्रानुसारेण शब्दानुशासन-निष्णातमतीनां विदुषां पुरः प्रकाशितः इत्यर्थः ।

इति श्रीगुणकित्त्व-षोडशिका ॥ पं० श्रीजीवकीर्त्तिगणि-लिखितं ॥

---

१. मृषस्तितिक्षायाम् - १/२/२०
२. उदुपधाद् भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् - १/२/२१
३. पूङः क्त्वा च - १/२/२२

श्रीमुरीबाई–तेरमास (हरख्खासुत–शिवराजकृत)

– संपा. रसीला कडीआ

वि.सं. १८९२मां रचायेल 'श्रीमुरीबाई–महासतीना तेरमास'नी हस्तप्रत 'श्री कोडाय जैन महाजन भण्डार'मांथी प्राप्त थयेल हती. कुल ५२ गाथामां आ तेर मास निरूपाया छे. मागशर सुद १३ने गुरुवारना रोज तेनी रचना थयेली छे. रचनाकार श्रीशिवराज (सवराज) लोंकागच्छनो श्रावक छे. ते सायलानो निवासी छे. तेना पितानुं नाम हरखा छे.

जैन गुर्जर कवि भा. ६, पृ. ३१२–३१३ पर आ कृतिनी नोंध 'मूलीबाईना बारमास–५२ गाथा' अेम मूकी छे. प्रस्तुत कृतिनो 'तेरमास'थी उल्लेख छे. जै.गू.क. मां कृतिना आरम्भ–अन्त आ प्रमाणे छे :

आदि :–

हुं तो नमुं सिद्ध भगवंत, मुकी मन आमलो रे
गुण गाउं मुलीबाई सती, सहुको सांभलो रे
सती श्रावण सुंदर मास, कैसे रे वखाणुं रे
जेहनी साख सिद्धांत मोझार, वदवा न जाणुं रे

अंत :–

संवत अढार बांणुअे, जोड्या मागसीर मास रे
तीथि तेरस नें गुरुवार, पख अजवास रे
मूलीबाई तणो महिमा, चउ दस गाजे रे
भणे हरखासुत सवराज, सायलामां बिराजे रे

आ प्रत राजकोटना प्राणजीवन मोरारजी शाह पासे होवानुं नोंधायुं छे. आ प्रतमां मुरीबाईनो उल्लेख मुलीबाई छे. तेरमासनी प्रतमां पण क्यांक मुलीबाई तरीके उल्लेख छे. वळी, 'आदि'मांनी ४थी पंक्ति 'वदवा न जाणुं' अने प्रस्तुत कृतिमां 'वढवाण जाणुं रे'नो तफावत ध्यान खेंचे छे. बीजी गाथामां 'तिहां क्रीडा करे नरनार' वांचतां अहीं 'वढवांण' शहेरनो उल्लेख साचो जणाय छे. अंते कविअे पोतानो 'सवराज' तरीके उल्लेख कर्यो छे ज्यारे प्रस्तुत 'तेरमासा'मां

'सिवराज' तरीके उल्लेख छे. 'बारमास'नी प्रत मळी नथी तेथी बन्नेना वधु पाठ-भेद नोंधी शकाता नथी.

शीर्षक सूचवे छे तेम आ कृतिमां लोंकागच्छना (स्थानकवासी) साध्वी-महासतीजी-मुरीबाईना तप-शीलना गुण गाती जीवन झरमरने बार-मासी स्वरूपमां आलेखाई छे. लिप्यन्तर करती वखते 'ष'नो ज्यां ख थतो होय त्यां सीधो 'ख' करवामां आव्यो छे. शब्दान्ते अनुनासिक होय तो आगलो वर्ण अनुस्वार ले छे, (जेमके- रतन-रतंन/जाणुं-जांणुं) अे भाषाकीय वलण नोंधनीय छे.

मध्यकालीन गुजराती साहित्यमां 'फागु'नी पेठे बारमासी स्वरूप खूब ज खेडायुं छे. अधिक मासवाळुं वर्ष होय तो ते 'तेरमासा' तरीके पण ओळखाय छे. मोटे भागे जैन कविओअे नेम-राजुल के स्थूलिभद्र-कोशाना जीवनवृत्तान्तने पसंद कर्युं छे. मुख्यतः तेमां बारे मासना विशिष्ट वर्णन साथे नायिकाविरह आलेखायो छे. सामान्यतः अन्त मिलनथी आवे छे. सं. १६४९मां श्रीउदयरत्ने 'नेमिनाथ तेरमासा' लख्या छे.

प्रस्तुत कृति अेना स्वरूपलक्षणोनी रीते जुदी पडे छे. अहीं नायिकानो विरह अने अन्ते मिलन वर्णवाया नथी, पण प्रत्येक महिने श्रीमुरीबाई संयमना मार्गे केवी रीते आगळ वधे छे तेना विकासना सोपान आलेखाया छे. महिनाओनुं विशिष्टता साथेनुं प्रकृतिवर्णन अहीं गेरहाजर छे.

अेक श्रावके साध्वीजीना जीवनने आलेख्युं छे. अेमां दरेक महिने अेमनो तप-जपना मार्गे थतो आध्यात्मिक विकास अन्ते संथारो ग्रहण करवा पर्यन्त पहोंचे छे तेनी वात करी छे. कवि पोते पण जैन धर्ममां श्रद्धा राखनारा छे. पोताना घरनी सामे ज, जीवणभाई शेठ अने झमकु शेठाणीअे 'थानक' (स्थानक) बनाव्युं होवाथी, कविना दिलने अत्यन्त आनन्द उपजे छे. ते समये वखतचंद राजा राज्य करतो हतो तेवी अैतिहासिक माहिती पण अहीं मळे छे. कवि पोते स्थानकवासी जैनमतमां ऊंडी श्रद्धा धरावनारा अने धर्मानुरागी श्रावक होवानुं उपरोक्त माहिती जणावे छे.

प्रस्तुत रचनाना प्रत्येक मासमां कुल ४-४ गाथाओ छे. श्रावण मासथी तेनो प्रारम्भ थाय छे, जेमां मुरीबाईना जन्मस्थळ अने मातपिता तथा बाळपणनी

विगतो मळे छे. मुरीबाई दशा-श्रीमाळी वणिक श्रीरतनशा अने अमृतबाईथी थयेल पुत्री छे. तेओ वढवाणमां रहेता हता. मुरीबाई रूपे अने गुणे अजोड हतां. पिताने प्राणना आधार सम हतां. आज्ञांकित होवाथी माता-पिताने खूब वहालां हतां. बाळपणथी ज पूर्वपुण्यना संस्कारो जागृत थया होय तेम धर्मने पामेलां हतां. धर्ममां अनन्य रुचि हती.

बीजा मास (भादरवा)मां मुरीबाईनी यौवन अवस्थानुं वर्णन छे. कोठारी नानजी साथे लग्न थया. ओरमाया सन्तान होवानी वात छे, जेथी नानजी कोठारी बीजवर होवानुं जणाय छे. संसार मांड्यो छे पण मनमां वैराग्य वसेलो छे. रंगभोगनी वात तेने रुचती नथी. भक्तिमां सदा तल्लीन रहे छे. सदा तप-आयंबिल के उपवास करती रहे छे. साधु-साध्वीने सूझतो आहार वहोरावको गमे छे. अषाढ मासमां जेम मेघ मुशळधार वरसे छे तेम मुरीबाई धर्मकार्योमां - (खोडाढोरने खाण आपवुं, गरीबगुरबांने दान आपवुं, पतिनी संपत्तिनो अनेक जरूरियातोने दान आपी योग्य उपयोग करवो) - व्यस्त रहे छे. घरमां ओरमान सन्तानोने पोतानां करी लीधा छे. अेमनी आंख क्यारेय मानी याद आवी भीनी न थाय ते जुअे छे.

त्रीजा (आसो) मासमां मुरीबाईनो आन्तरिक वैराग्य विशेष दृढ थतो वर्णव्यो छे. सदा उपाश्रये जती रहेती होवाथी, संसारमां अेने हवे कशी आशा जणाती नथी. 'संसार चार दिवसना चांदरडा जेवो छे, कठपूतळीनो खेल छे, अे ज्यां कर्मना मार्या नचावे तेम नाचवानुं छे. सगावहालां घणां छे पण अन्त समये तो कोई साथे आवनार नथी तेथी आ संसार-दावानळमांथी - बळतामांथी - मने बहार काढवी जोईअे' अेवुं मंथन शरू थाय छे. उपाश्रयमां आठे पहोर आवी, सती-साध्वीनां चरणो सेवे छे. बीजी बाजु, मोह-ममता छोडी, धननो छूटे हाथे दान आपवामां, साधर्मिक भक्तिमां, विकलांग प्रत्ये विशेष वहाल दर्शावी, अनेक जीवोने शाता पहोंचाडे छे.

त्रीजा महिनामां संसारना जूठा स्वरूपने ओळखी, मुक्त थवानुं मन्थन चालतुं बताव्युं हतुं. हवे चोथा (कारतक) मासमां अे मार्गे प्रयाण थाय तेवी, करणीमां परिवर्तित थाय छे. सतत अरिहन्त देवनुं ध्यान करे छे. वस्त्रो पहेरवामां सादाई आवी. शणगारनो त्याग कर्यो. विषय-कषाय छोड्या. खावा-

पीवानी अनेक वानगीनो त्याग कर्यो. सेंथो पूरवानुं छोड्युं. पांथी पाडवानुं पण छोड्युं. आंखमां काजऴ लगाववानुं छोडी दीधुं. मधुर कण्ठ हतो छतां हवे मोटे अवाजे गाती नथी, क्यारेय निन्दा-कूथली करती नथी. मोटेथी हसती नथी. सत्संगनो महिमा समजती थई छे, तेथी ज्यां सोबत बराबर न लागे त्यां ते सोबतथी दूर रहे छे.

पांचमा (मागशर) मासमां मुरीबाईनो अध्यात्मभाव अेटलो विकसे छे के आर्या आणंदबाई जेवा गुरु मळे छे अने तेमनी पासे धर्मनो अभ्यास करे छे. बार व्रत अंगीकार करे छे. हवे मुरीबाईने घरना काममां चित्त रहेतुं नथी, वधुने वधु समय ते उपाश्रये आणंदबाई पासे शीखती रहे छे. सामायिक, प्रतिक्रमण अने पोसहनी लेह लागी छे. अस्थिर संसारमां रहेवुं अेने माटे हवे केदखाना जेवुं थई पड्युं छे. संयम मार्गे क्यारे जाउं, क्यारे घेर आवन-जावनना फेरां बंध थशे ? क्यारे मोहनी तांत तोडुं ? - आ ज लेह लागी छे हवे मुरीबाईने !

छठ्ठा (पोष) मासमां मुरीबाई हवे संसारमांथी नीकळवानो मक्कम निरधार करे छे. घरमां सौने स्पष्ट जणावी दे छे के पोताने हवे दीक्षा लेवी छे, आ वातनी आडे कोइअे आववुं नहि. अहीं मुरीबाईना चारित्र्यनी उत्कृष्टता कविअे सरस वर्णवी छे. घरमां सौ प्रथम आ वात सांभळी, ओरमान दीकरो आ वातनो विरोध करे छे. कहे छे - ''शा माटे तमारे दीक्षा लेवी ? लाडकोडथी उछेर्या पछी हवे मने छोडीने जशो ? क्यारेय अमने कडवां वेण कह्यां नथी. माथीये अदकेरो स्नेह तमे आप्यो छे.'' आम कही दीकरो चोधार रडी पडे छे. पीयरनो परिवार पण करगरे छे. पण मुरीबाई सौने संसारनुं दुःख, संसारनुं स्वरूप वर्णवे छे अने सौने पोतानी वात माटे मनावी ले छे.

सातमा (माह) मासमां संयम लेवानी तैयारी दर्शावी छे. पात्रां ने पुस्तको लीधां. खूब ज धन खरच्युं. लींबडीमां आवीने दीक्षानो उत्सव कर्यो. लींबडीना शेठ रघुभाईअे आ उत्सव पोताने शिरे ऊठावी पुण्यकर्म बांध्युं. रतनबाई तेमना गुरु बन्या. दीक्षाना पाठ, नवा ग्रन्थो, जीव-अजीवना भेद, चोराशी लाख योनि वगेरे शीखवाड्या.

आठमा मास (फागण)मां अेमणे लीधेली दीक्षानी वात छे. सं. १८६५ना

वसंत मासनी वद चोथे, श्रीरतनबाईना हाथे दीक्षा थई. रत्नचिन्तामणि सरीखा महाव्रत पामी मुरीबाई खुश छे. संसारसमुद्रमांथी मारा गुरुजीओ डूबतांनी बांय पकडी मने बहार काढी छे अेनो अेमनो सन्तोष छे. अेटले ज कुटुंब कलकले छे, पीयरनो परिवार धूस्के धूस्के रडे छे त्यारे काचना कटका माटे शुं रत्न खोवाय ? अेम समजावी, दरेकने शक्ति प्रमाणे व्रत-पच्चक्खाण उचरावे छे.

नवमा (चैत्र) मासमां तेओ विचारे छे : ''आयखानो कशो भरोसो छे नहि तो तप करीने कर्म टाळवा अे ज अेक उपाय छे.'' आथी अेमणे छठ्ठ अने अठ्ठम तप शरू कर्या. ९६दोषनो त्याग करी, निर्दोष आहार वापरतां. (श्वेतांबर मूर्तिपूजक सम्प्रदायमां आहारना दोष ४२+५ = ४७ गणाय छे. स्थानकवासी सम्प्रदायमां ९६ दोषो गणाव्या छे.) उपवासो वधता जाय छे. १५ उपवास तो असंख्य वार करे छे. मासखमण (महिनाना उपवास) करवाना शरू कर्या. कायाने भाडुं आपवानुं समजी, विगयत्याग करी, लूखुं अन्न वापरता. लीलुं शाक खावानुं यावज्जीव छोड्युं. पोते क्यारेय चेली नहि करे तेवो निरधार करे छे. जेम आंबाना लाकडानो थांभलो मजबूत- टकी शके तेवो नथी होतो तेम आ देह काचा कुम्भ पेठे गमे त्यारे तूटी जवानो छे तेम समजी, तपमां अने वीर प्रभुना गुण गावामां लीन रहे छे.

दसमा (वैशाख) मासमां तप हजु वधु उग्र बनतुं जाय छे. हवे आहारमां मात्र बे ज द्रव्य ले छे. वस्त्रो जूनां पहेरे छे. छाश अने लोट वापरे छे. ९३ दिवस सुधी आ ज आहार रह्यो त्यारे आंखो तगतगवा लागी. जे जोइने शेठ रघुभाईअे अेमने विनती करीने बे रोटली लेवाने समजावी दीधां. आ आहार उपर तप तो चालु ज हता. शरीर हाडपिंजर बनी गयुं. शरीरनी नसोनुं जाळुं देखावा लाग्युं. आम, तप करी, कायामांथी जाणे सर्व कस काढी लीधो.

अगियारमा (जेठ) मासमां हवे मुरीबाईने देहनो जाणे के भार लागे छे ! क्यारे अेने वोसिरावुं ? आथी, तप उग्रतर बनतुं चाल्युं. आठ उपवासने पारणे दस उपवास अेवुं घणा दिवस चाल्युं. परिषहो सह्या - नित्य नवा नवा. सिंह पेठे दीक्षा पाळी. रागद्वेषने तो चकचुर कर्या. सर्पनी कांचळी जेवुं शरीर थई गयुं. मात्र अेमां हवे आत्मा ज अेकलो रह्यो छे, बाकी कायामां कशुं नथी.

संथारो हवे निश्चित हशे अेम जणावी कवि हवे बारमा मास (अषाढ)ने वर्णवे छे.

अषाढ मासे अनशन लई, खमतखामणां करी, देह वोसरावनुं मुरीबाईअे पगलुं भर्युं. रघुभाई तथा मेघबाई शेठाणीअे सती-साध्वीओने ऊलटभेर दान आप्यां. खेतशीभाईनी पुत्री झमकुबाई तेमनी सेवामां रही. १३ दिवसनो संथारो करी सं. १८९०ना अषाढ सुद १४ना शुक्रवारना रोज स्वर्गवास-काळधर्म पाम्या. मुरीबाईनी जीवनकथा अहीं पूरी थाय छे.

तेरमा अधिक मासमां कवि पोतानी अने पोताना समयनी विगतो आपे छे. कविना घरनी पासे स्थानक (उपाश्रय) छे. जीवणभाई शेठ अने झमकुबाई शेठाणीअे करावेल छे. आ स्थानक जोईने कविनुं दिल ठरे छे. साधुजननी सेवा, हृदयमां भक्ति लावीने करवानी ते प्रेरणा आपे छे. मानवनो भाव दुष्कर छे. पुण्यकर्मने कारणे उत्तम अेवो जिनधर्म प्राप्त थयो छे तेनी कवि सराहना करने छे.

आ रचनासमये न्यायप्रिय राजा वखतसिंह राणा राज्य करता हता. अंते तेओ प्रस्तुत रचनानी साल अने कविनाम आपे छे ते मुजब आ रचना सं. १८९२ना मागशर सुद १३ने गुरुवारना रोज करवामां आवी छे. अर्थात् मुरीबाई महासतीना काळधर्म पाम्या बाद बे वर्षमां ज आ रचना थई छे. कविअे पोताने हरखाना दीकरा शिवराज (जे सायलामां रहे छे) तरीके ओळखाव्यो छे.

आम, आ तेरमासा अे परम्परित बारमासी प्रकार करतां थोडुं अलग प्रकारनुं होवाथी, तेमां तत्कालीन समयना राजानी, कविनी माहिती होवाथी, अैतिहासिक मूल्यवत्ता धरावे छे. अहीं परम्परित प्रकृतिवर्णननी ओथ लेवाई नथी, के विरहनो ऊंडो, उत्कृष्ट सूर नथी, छतां श्रीमूरीबाई महासतीना तपोमय जीवननी झरमर कशाय ओप विना अेवी सुन्दर रीते आलेखी छे के श्रीमुरीबाईनी मोक्ष मार्गनी लेह उत्कृष्टपणे दर्शावी शक्या छे. अे रीते आ कृति अनोखी छे.

महासती मुरीबाईना तेर मास

ॐ नमः सिद्धं ।

अथ श्रीमुरीबाई महासतीनां मैना लिखा छे.

(हरीनामना मैनानी देशी)

हुं तो नमुं रे सिद्ध नरंद, मूकी आंबलो रे.
गुण गाउं मुरीबाइ सती, सौ को सांभलो रे.
सती श्रावण सुंदर मास, जेसे जेसे वखांणु रे.
जेनी सांख्य सिद्धांत मोझार, वढवांण जाणुं रे. ॥१॥

तिहां क्रीडा करे नरनार, बेठां गोख जाली रे,
तेमां रहे रतंनसा वणीक, दसो श्रीमाली रे.
तस्य घरुणी अमृतबाई, मधुरुं बोले रे.
तस्य कुंखे उपनां मुरीबाई, नहिं तस्या तोले रे ॥२॥

अमृतजाइ सुता सोय, सुंदरी सारी रे,
जेनां रूप तणो नहि पार, सुर अवतारी रे,
मात पित्या तणुं वचंन, मुलीबाई न लोपे रे.
पित्यानें प्रांण आधार, कदी नव कोपे रे ॥३॥

बालापणमां बाई, कुचाल नवि चाली रे.
मातानें तु(उ)रणीवे, तनया बहु वाली रे.
पूर्व पुंन्य तणे पसाय, पामी धर्म वेलो रे.
भणे हरखासुत सिवराज, मास अे पहेलो रे. ॥४॥१

॥ मास बीजो ॥

सखी भादरवे भरपूर, जोबंन जब आयो रे.
कोठारी नानजी घेर, सगपण करायो रे.
परणी आवी पतीनें घेर, करे बहु भगती रे.
जेनें मन वसीयो वैराग, डगावी न डगती रे. ॥१॥

जेनें रंगभोगनी वात, मंन नथी गमती रे,
अे तो करे उपवास आंबिल, आतम बहु दंमती रे.

नारी पासे निर्मल सील, करंम बहु कापे रे.
साध साधवीने सुझंतां आहार, मुरीबाई आपे रे. ॥२॥
वस्त्र-पात्र पोषे अपार, पाले धर्म गाढो रे.
जिंम वरसे मुसलधार, मेघ आसाढो रे.
खोडा ढोरने खवरावे खांण, अजा बहु उगारे रे.
रांकढीकनें दीये गर्थ, दोष निवारे रे. ॥३॥
गर्थ तणां भर्या भंडार, दांन बहु दीधा रे.
आप्या मांनवि राखी ओझ, मंनुखा लावो लीधा रे.
ओरमाया उपर आंख्य, खुणो नवि भीज्यो रे.
भणे हरखासुत सिवराज, मास अे बीजो रे. ॥४॥ सळंग ८

॥ मास त्रीजो छे ॥

आसोअे आसा तोडि, संसारनी सर्वे रे.
मुरीबाई मन करे विचार, कर्म कुंण करवे रे.
आ तो चार दिवसनां चांदरडा, बाजीगरनी बाजी रे.
संसारना खोटा खेल, थावुं सुं राजी रे ॥१॥
सगासागवा बहु कोय, छे सुखनां बेली रे.
अंत समें आपणुं नहि कोय, जावुं मेली रे.
हवे बलतामांथी काढुं, जे दउं मारे हाथे रे.
ते मारुं निरधार, आवे मारे साथे रे. ॥२॥
मोह ममता मुरीबाई, न राखे लिगार रे.
धर्म-हेते वावर्युं धन, गरथ भंडार रे.
तृसा कर्या घंणा जीव, साता उपजावे रे.
साधर्मीसुं घंणो सनेह, धर्म गुंण भावे रे. ॥३॥
कंगाल तणो जांण्यो, मुरीबाई मालवो रे.
लुला अपंग जे जीव, तेंने पालवो रे.
अपासरे आवे आठे पोर, सेवे सति चरण रे.
भणें हरखासुत सिवराज, मास अे त्रण रे. ॥४॥ सळंग १२

॥ मास चोथो ॥

सखी आव्यो कार्त्तक मास, जे करणी मांडी रे.
मुरीबाईइं विषय कषाय, मेल्या सर्व छांडी रे.
आछो वस्त्र पेरे नहि अंग, सणघार न सजे रे.
अेक मंनें अरिहंत देव, ध्यान धरी भजे रे. ॥१॥

मुख वावरे नहि मुखवास, सोपारी नवि खावे रे.
जेनें गंमें ज्ञांननी गोठ, अंतरमां भावे रे.
करे नहिं अंजन मंजन, सेंथो नवि पूरे रे.
गीत गावें नहिं सरले साद, कंठ मधुर रे. ॥२॥

वलि विकथा केरी वात, कदी नवि करे रे.
जेथी लागें पोतानें पाप, तेथी बहु डरे रे.
दांत देखाडी करे नहिं गुझ, हसी नवि ल्ये ताली रे.
कदी केस तणें अलंकार, पाती नवि ढाली रे. ॥३॥

नारी नीच तणी संगत, कदी नवि करे रे.
जेनां वचंन अमृत समांन, दीठे दिल ठरे रे.
स्त्रीचरित तणो लवलेश, न जाणे लिगार रे.
भणे हरखासुत सिवराज, मास अे च्यार रे. ॥४॥ सळंग १६

॥ मास ५मो ॥

सती मागसरे मोहनी, मुरीबाई उतारी रे.
द्वादश कीधा अंगीकार, थया वृ(व्र)तधारी रे.
आरजाजी आणंदबाइ, सती सुधा वखांणु रे.
सीखवी मुरीबाइने समाग, प्रथम जांणु रे. ॥१॥

करे पोसा नें पडिकमणा, दिनमां दोय वेला रे.
सतीनों करे घणुं संग, रहे नित्य भेला रे.
मुरीबाई न करे घरनों कांम, धर्म लय लागी रे.
विषय-वेल तणा जे जोर, मुक्या सर्वे त्यागी रे. ॥२॥

जेणें जाण्यों अथिर संसार, सुख जांण्यां काचा रे.
भाक्सी सरिखा जाण्यां भोग, मुरीबाई साचा रे.

चित चिंतवण करे अेह, संसार के दी मेलूं रे.
बलतामांथी नीकली बार, संजम के दी खेलूं रे. ॥३॥
घरे आवणनां फेरा, कदी हुं छंडुं रे.
जो तूटे मोहनी तांत, तो कर्मने खंडुं रे.
मारे लेवो संजम भार, नावे केनें आंच रे.
भणे हरखासुत सिवराज, मास अे पांच रे. ॥४॥ सळंग २०

॥ मास छठो ॥

सती पोषे थइ प्रसिद्ध, दिख्या वात काढी रे.
मारे लेवो संजम-भार, मत करो कोई आडी रे.
बोल्यो ओरमायो दीकरो, के सुंण मारी माय रे.
मारी सती सिरोमणी मात, विजोग किम थाय रे. ॥१॥
लाडे कोडे रूडी पेर, उछेर्या अमने रें.
संसार तज्यो स्या माट, घटे नहि तंमने रे.
मारी जननी अंगजायाथी, वधु तमे राख्या रे.
कदि कडवा कोहेला वेण, मनें नहि भाख्या रे. ॥२॥
हाथ जोडीनें करगरे, मांनों मारुं कयुं रे.
तमें ल्यो छो दिक्षानों नांम, नवि जाय रयुं रे.
के छे पीयरनों परिवार, सउ को करगरी रे.
अखि वरसे जलधार, नेत्र भरीयां मंन गली रे. ॥३॥
मुरीबाई संसारनुं दुःख, वरणव्युं वली रे.
उतर्यो सहुनें अंगोअंग, गया मंन गली रे.
आज्ञा लीधी ततकाल, करी झटपट रे.
भणे हरखासुत सिवराज, मास अे छठो रे. ॥४॥ सळंग २४

॥ मास सातमो ॥

महा मैंने मुरीबाई, करी छे सारी रे.
जेनें संजमनी सामग्री, लागे घणुं प्यारी रे.
लीधा पात्रा नें पुस्तक, खरच्यां धन घणा रे.
सहुने मंन उलट भाव, न राखी मणां रे. ॥१॥

आव्या सेर लींबडी मुझार, सती मुरीबाई रे.
कर्यो दिख्या तणो ओछव, सेठ रघुभाई रे.
जिन मत दीपाव्यो जोर, भली भली भांते रे.
सेर लींबडीना साहुकार, वावरे पुंन्य खाते रे ॥२॥
मुरीबाई थया उजमाल, हरख नवि माय रे.
मुनें अदरावो महाव्रत, क्षिण लाखेणी जाय रे.
कर जोडी मुलीबाई कहे, सिर नामी रे.
रतनबाई आपो दिक्षाय, करी मेरबांनी रे. ॥३॥
सीखवे दीक्षा तणा जे पाट, नित्य नवा ग्रन्थ रे.
सीख्या जीव-अजीवनां भेद, जाण्यां सर्व अर्थ रे.
चोरासी लाख जीवा, जोंननी जांणी जात रे.
भणे हरखासुत सिवराज, मास अे सात रे. ॥४॥ सळंग २८

॥ मास आठमो ॥

फागणे फेरा मिटाया, आवणगमणनां रे.
मुरीबाई आदर्या महाव्रत, रतन चिंतामणनां रे.
सवंत अढारसें पांसठ, वसंत मासे रे.
वदि चोथे लीधी दिक्षाय, रतनबाई पासे रे. ॥१॥
कुटंब सहु कलकले, सामों नवि जुवे रे.
पीयरनों परिवार, ध्रुसके रुवे रे.
मुरीबाइ कहे ततकाल, स्या माटे रुवो रे.
तमे काचनां कटका माट, रतन केंम खोवो रे. ॥२॥
भंमतां अनंता काल, मनुष भव आव्यो रे.
कांइ आदरो सत सीयल, लहो धर्म लावो रे.
आदरीया व्रत पचखाण, जेनी जेवी सगती रे.
मुरीबाई आव्या रतंनबाई पास, करे बहु भगती रे. ॥३॥
संसार समुदरमांथी, गुरणीजीये तारी रे.
मारी बुडतांनी झाली बांह, काढी मुनें वारी रे.
संजम खेले खांडाधार, करे पूरण खाटे रे.
भणे हरखासुत सिवराज, मास अे आठ रे. ॥४॥ सळंग ३२

॥ मास नवमो ॥

चईतरे चित जोयुं, मुलीबाई विचारी रे.
आउखानो भरोसो नाहिं, घडि जाय प्यारी रे.
आवसे परदेसी आणां, पाछां नहि वले रे.
मुंने आवेला आ जोग, पछें नहि मले रे. ॥१॥

जो बांधुं तप तरवार, तो शिवसुख मले रे.
जो करुं करणी अघोर, तो कर्म ज टले रे.
करे छठ नें अठम, बेसे आसन वाली रे.
निर्दोषण लावे आहार, छन्नुं दोष टाली रे. ॥२॥

मासखमणा करे मंनगंमता, पंनरनो नहि पार रे.
कर्मनें दीधो दावानल, बाली कीधो छार रे.
विगय मात्र वावरे नाहिं, लुखुं लावे अन्न रे.
काया जाणी भाडारुप, आपें जांणीउ गंन रे. ॥३॥

नीलुं वंजन वरज्युं जावजीव, चेली नव्य खपे रे.
वीर प्रभुजीनां गुण गाय, बेठा मुख जंपे रे.
काचा कुंभ सरिखी जांणी देह, न करो आंबा थुभो रे.
भणे हरखासुत सिवराज, मास अे नोमों रे. ॥४॥ सळंग ३६

॥ मास १०मो ॥

वैसाकें वावरे द्रव्य दोय, त्रीजुं द्रव्य नव्य लीये रे.
सति जुंनां पेरे वस्त्र, छास लोट पीये रे.
त्राणु दिन पीधी वलि प्रास, आंखुं तगतगे रे.
अे सती आगल सुंदरी, बीजी नव्य लागे रे. ॥१॥

सेठ रघुभाई करी वीनती, समझावी दीधा रे.
बे रोटलीनां लीधा आहार, उपरे आकरा तप कीधां रे.
हालंतां खडखडे हाड, पग दोरी समान रे.
नस-जालुं नरवी देखाय, जिह्वा सुकुं पान रे. ॥२॥

आप तणो अवगुण लेवे, परनें सोभा देता रे.
हुं एक जिह्वांइ करी, वर्णव करुं केता रे.

सौनां उपरे समताभाव, नहिं केनें दुखदाई रे.
अजवाल्युं कोठारीनुं कुळ, सती मुरीबाई रे. ॥३॥
वचंन कथंन तणा जे वेण, न धरें कांने रे,
जेनें अडाव्युं मोक्ष्यसुं मंन, करी अेकध्यांने रे.
तप करी कायामांथी, काढी लीधो सर्व कस रे.
भणें हरखासुत सिवराज, मास अे दस रे ॥४॥ सळंग ४०

॥ मास इग्यारमो ॥

जेठे जांणपणुं सतीये, घणुं आण्युं रे.
कदि वोसरावूं मारी देह, बने अेवुं टांणुं रे.
पछे बांधी तपनी टेक, अन्न नवि खावुं रे.
आठनें पारणे दस, अेवुं बहु दिन चलाव्युं रे. ॥१॥
वलि परिसा तणी चोट, नित्य नवी मेले रे.
जो आवे देव दांणव, तेथी नव्य छले रे.
सूरपणे लीधी दिक्षा, सीहपणे पाली रे.
रागद्वेष कर्या चकचुर, कर्म दीधा बाली रे. ॥२॥
लालच नें लपसा लेप, नहिं लगारि रे.
अे साची सती मुरीबाई, जाउं बलिहारी रे.
सुके भुके कर्यो सरीर, नहि रुद्र नें मांस रे.
मांहि रयो वालो वलगी, जीव तणो हंस रे. ॥३॥
सर्पनुं खोखुं जेवुं, अेवी करी काया रे.
तप करी सोस्युं सरीर, नवि राखी माया रे.
हवे करसे संथारो सती, संदेह नैं लगार रे.
भणे हरखासुत सिवराज, मास इग्यार रे. ॥४॥

॥ मास बारमों ॥

सती आसाडे अणसण, आलवी सुता रे.
अनंता भवना काप्या, कर्म जे खुता रे.
नमण खमण मुरीबाई, बहुविध कीधी रे.
खंमत खांमणा खंमावी देह, वोसिरावी दीधी रे. ॥१॥

सेठ रघुभाइ घेर जाणो, मेघबाई सेठांणी रे.
जेणे आप्या सतीयुं नें दांन, उलट भाव आंणी रे.
खेतसीभाई धुया झमकुबाई, करे सुत अर्थ रे.
सतीयुंनी करे सेवा, अंत समें समृद्ध रे ॥२॥

वैराग घोडे थया असवार, सती मुरीबाई रे.
धंन माता अंमृत कुंख, मणीरतंन जाई रे.
सुभ प्रणांमनें सुभ लेसा, अंत समें आवी रे.
गया देवलोक मोझार, कर्म खपावी रे. ॥३॥

अजवांली चौदस दिंन, आथमी बेठो मेर रे.
सुक्रवारे सीधो संथार, चाल्यो दिंन तेर रे.
ने युवानें असाडे, निरवांण पोता निरधार रे.
भणे हरखासुत सिवराज, मास अे बार रे. ॥४॥ सळंग ४८

॥ मास अदिक ॥

अदक मासे अदका करी, सती गुण गावो रे.
तमें करो करणी दिन रात, कर्म खपावो रे.
सतीनुं थयुं सुध कांम, आप विचार करवो रे.
जप तपने सत सीयल, चितमां धरवो रे. ॥१॥

उत्तंम धर्म जिन-मार्ग, मल्यो पुंन्य जोगे रे.
दुकर मानवनो भव, भाख्यो वीतरागे रे.
मारा घर पासे थांनक, दीठे दिल ठरे रे.
राणो वखतसंग भुपाल, अन्या नवि करे रे. ॥२॥

जीवणभाई कराव्यो थांनक, घरे झमकुं सेठाणी रे.
जों गाया अविचल प्रताप, साख समाणी रे.
साधुजननी करो सेवा, भगती लावन रे.
पूरा थया मास तेर, गाथा बावन रे. ॥३॥

संवत अढारसे बाणुंये, जोडी मागसर मास रे.
तिथि तेरस नें गुरुवार, पख अजवास रे.

मुरीबाई तणो महिमाय, चिहुं दिसि गाजे रे.
भणे हरखासुत **सिवराज, सायला**मां विराजे रे. ॥४॥

इति श्री महाशती मुरीबाईनो १३ मास संपूर्णम् ॥
श्रेयोस्तु सुभं भवतु ॥

शब्दार्थ

कडी/पंक्ति		कडी/पंक्ति	
१/१	आंबलो = वट	३५/२	छार = राख
२/३	घरुणी = गृहिणी/स्त्री	३५/४	गंन = गुण
२/४	उपनां = जन्म्या	३६/१	नीलुं = लीलुं
४/३	पसाय = कृपा थकी	३६/१	वंजन = व्यंजन/शाक के चटणी जेवी वानगी
७/३	अजा = बकरी	३६/३	आंबा थुभो = आंबाना थांभला जेवो निःसार
७/४	रांकढीक = गरीबगुरबां	३६/४	नोमों = नवमो
७/४	गर्थ = धन	३७/३	प्रास = प्राश/खावुं/आरोगवुं
८/२	ओझ = उदारता	४०/२	अडाव्युं = लगाड्युं
१०/१	सगासागवा = सगावहाला	४१/२	वोसरावूं = त्यजुं
११/३	साता = शांति/शाता	४२/१	परिसा = परिषह ? = कर्मनी निर्जरा अर्थे स्वेच्छाथी भोगवाता कष्टो
१२/१	मालवो = मालव देशनो राजा	४३/३	रुद्र = रुधिर
१४/४	सरले साद = दीर्घ/प्रलंब अवाजे	४६/३	धुया = पुत्री
१५/४	पाती = पांथी/सेंथो	४७/३	लेसा = लेश्या = अध्यवसाय = भाव परिणाम
१७/४	समाग = समाय/सामयिक ?	४८/२	सीधो = सिद्ध थवुं, सफळ थवुं
१९/१	अथिर = अस्थिर/चंचळ	४८/३	युवानें असाडे = अषाढना मध्य भागे
१९/२	भाक्सी = केदखानुं	४९/१	अदक = अधिक
२१/१	दिख्या = दिक्षा	५०/४	अन्या = अन्याय
२७/२	अदरावो = आदरवुंनुं प्रेरक		
२८/३	जोंन = योनि		
३१/३	सगती = शक्ति		
३२/३	खाटे = लाभ थवो		

प्रकीर्ण स्तवनो

– उपा. भुवनचन्द्र

प्रकीर्ण पत्रोमांथी मळेलां केटलांक स्तवन अहीं रजू कर्यां छे. गोडी-पार्श्वनाथना स्तवनमां कर्तानुं नाम नथी, बाकी बधांमां कर्तानाम छे, अने आ बधा कविओ सुप्रसिद्ध छे. एमनी आ रचनाओ कदाच क्यांक प्रगट थई हशे, तो पण आ पानाओमां तेमनुं मूळ भाषास्वरूप अने जूनो पाठ सचवाई रह्यां छे. ए दृष्टिए ए प्रकाशनयोग्य जणाय छे.

आवी जूनी कृतिओमां जोवा मळती जूनी देशीओ – जूना ढाळ ध्यान खेंचे छे. गमे ते देशीमां कविओनी कलम केवी सरलताथी वही जाय छे, हृदयोर्मिओनुं चित्रण आ कविओ केटली सहजताथी करे छे – ऐनुं दर्शन पण आनन्ददायक छे.

रचनाओमां जूना शब्दरूपो जोवा मळे छे. जेम के, 'पधारो'नुं मूळ रूप 'पाउ धारउ', 'परगजु'नुं असली रूप 'परगरज' वगेरे अहीं यथातथ रह्या छे. परवर्ती नकलोमां आवुं जोवा न मळे.

गोडी-पार्श्वनाथ-स्तवन – स्वामी-सेवक भावने अवलंबीने रचायेल आ स्तवनमां प्रभुने विनन्ति, काकलूदी, उपालम्भ वगेरे बहु मधुर शब्दोमां व्यक्त थया छे. प्रभुस्नेह अने शरणागति आ स्तवनमां घूंटी घूंटीने गवाया छे.

भीलडिया-पार्श्वनाथ-स्तवन – आमां पार्श्वनाथ प्रभुना जीवनप्रसंगोनुं वर्णनमात्र छे. काव्यतत्त्व नहिवत् छे. भीलडी गाम के तीर्थ विषे पण कोई उल्लेख नथी. कवि आ तीर्थनी यात्राए गया होय अने त्यारे तेमणे आ स्तवन रच्युं होय एवी कल्पना थई शके छे.

सम्भवनाथ-स्तवन – आध्यात्मिक दृष्टिए रचायेल आ स्तवनमां विविध जीवभेदोमां जीवोनी भवस्थिति-कायस्थितिनुं शास्त्रीय निरूपण खूबीपूर्वक – काव्यतत्त्वने आंच न आवे एवी रीते – सांकळी लीधुं छे. उपा. देवचन्द्रजी महाराजनां स्तवनोनी याद अपावे एवी रचना छे.

पञ्चतीर्थी-स्तवन – शत्रुंजय, दीओदर, गिरनार, जीराउला, सांचोर

– आ पांच तीर्थोनी आमां भावभरी स्तवना छे. कवि लावण्यसमयने आ तीर्थो प्रत्ये विशेष आकर्षण हशे एवुं जणाई आवे छे.

शीतलनाथ-स्तवन – अमरसरना मन्दिरना मूलनायक श्रीशीतलनाथ भगवानने उद्देशीने रचायुं छे. प्रभुने पाम्यानो आनन्द कविए विविध कल्पनो द्वारा मनोरम रीते चित्रित कर्यो छे.

आ रचनाओनुं लिप्यन्तर **पं.श्रीअंकितभाई** (पालीताणा)ए करी आप्युं छे. हस्तलिखित पत्रो अमारा संग्रहना छे.

श्रीगोडीजी-पार्श्वजिन-स्तवन

॥६०॥

प्रभु सहजइ२ महिर करउ सदा जी, सेवकनी२ सुणि अरदास हो,
परगरज२ जंगम जेह छइ जी, नवि मेहलइ२ तेह निरास हो. अव० १
अवधारो२ अरज मया करी जी, पाउ धारउ२ मुज मन गेह हो,
स्यो चारो२ साहिबनें सेवक तणउ जी, जो देस्यो२ छटकी छेह हो. अव० २
एक निजरिं२ जेह सहुने जूइ जी, किम बदलें२ दिल ते दयाल हो,
दीन देखी२ जे न करी दया जी, किम तेहने२ कहीइ कृपाल हो. अव० ३
भलो भुंडो२ हुं सेवक तुम तणो जी, गुण हीणों२ गुनही अत्यंत हो,
पणि तुम्हनें२ न घटि उवेखवो जी, तुम्हे गिरुआ२ ने गुणवंत हो. अव० ४
साहिब जो२ सेवकनें तजो जी, तो सेवकनुं२ तो स्युं जाइ हो,
कोइ बीजानें२ जई ओलगें जी, पणि प्रभुनी२ लाज लेपाय हो. अव० ५
प्रभु मोटा२ मीटि पालटि जी, तिहारि छोटा२ नु लहि तोल हो,
समभावी२ स्वभावि जेह छइ जी, किम थाइ२ तेहनुं मोल हो. अव० ६
सेवक जे२ कहिवाणउ आपणउ जी, निरवही२ लेवो प्रभु तास हो,
पहिलां ने२ पछि पणि तुम्ह विना जी, कुंण देस्यें२ दिलासो पास हो.अव० ७
चीतारो२ न सकि चीतरी जी, रूप ताहरो२ जगवितरेक हो,
जो न्यारो२ सेवकथी तुं रही जी, पणि हुं तो२ न मेलुं टेक हो. अव० ८

तुझ सरिखउ२ जउ बीजउ हुइ जी, जोता स्युं२ एह जगमांहि हो,
तिहारिं तुझनें२ कुण महिनत करइ जी, जइ वलगु२ तेहनी बांहि हो.अव०९
ताहरी माइ२ एक तुं हि ज जण्यो जी, बीजो कोइ नहि बलवान हो,
इम जाणी२-नइ हुं आवियउ जी, मुज मुजरो२ ल्यो महिरवान हो. अव० १०
जउ मुझनइं२ तुम्हें उवेखस्यो जी, तउ पणि हुं२ न छांडुं तुझ हो,
तुम्हे साथे२ निवड नेहिं करी, अविलंब्यो२ आतम मुझ हो. अव० ११
ताहरि तउ२ सेवक छै घणा जी, पणि ता(मा)हरि२ साहिब तुं एक हो,
भवमांहि२ भमतां भवोभविं जी, तुझ सेवा२ चाहुं सुविवेक हो. अव० १२
निसनेही२ पणुं लही नीरनुं जी, मच्छ जलनि न छाडि तो हि हो,
जल विना२ तेहनें जीवाडवा जी, नही बीजो समरथ कोइ हो. अव० १३
जेह विना२ काज सरें नही जी, सी तेस्युं आखरि रीस हो,
मेहानें२ वली मोटां घरां जी, आस तजीइ न वीस्वावीस हो. अव० १४
ते माटि२ हुं त्रिविधिं करी जी, **पास गोडी** गरीबनिवाज हो,
सेवक छुं उदय सदा लही जी, मनमोहन श्रीमहाराज हो. अव० १५

शब्दकोश

परगरज (१)	परोपकारी, परगजु
मया (२)	दया, कृपा
चारो (३)	उपाय, रस्तो
गुनही (४)	गुनेगार
ओलगे (५)	सेवे, सेवा करे
पालटि (६)	बदलावे
मीटि (६)	मीट ? नजर ?
जगवितरेक (८)	जगतमां तेना जेवुं बीजुं कोई नथी, जगतव्यतिरेक
आखरि (१४)	आकरी ?

श्रीभिलडीआ-पार्श्वजिन-स्तवनम्

॥र्द॥ श्रीसद्गुरुभ्यो नमः ॥॥

सरसति सामिन विनवुं रे, समरी शारद पाय,
अश्वसेन कुल चंदो रे, देवी अ देवी वामा जस माय,
मनमोहन सामी समरीअ रे. ॥१॥
प्राणतथी प्रभू उपना रे, वामादेवी अंग,
सुपनसूचित जिन जनमिआ रे, तनय तनय हु[उ] उछरंग. म०॥२॥
इखावंशइ अवतर्या रे, जिम जगिउ भाण,
मात मनोरथ पूरतो रे, कुअर कुअर अतिसुजाण. म०॥३॥
दिन दिन तेजिं दीपइ तो, रूपकला अभिराम,
योवनवन(य) परणावीओ रे, कुअरि कुअरि प्रभावति ता(ना)म.म०॥४॥
तेसुं विषि सुख भोगवइ रे, पासकुमर जिनराज,
मनह मनरथ पूरतो रे, सारिखि सारि समरो काज. म०॥५॥
एकदिन जिनवर आवंता रे, दीठो नाग बलंत,
पंचागनि साधि सदा रे, मानवी मानवी मलिआ बहुत. म०॥६॥
कमठ हठ तव भाजिवा रे, जिनवर आव्यां ताम,
तापस तपसा सी करी रे, जीव ज जीव बलि इंणि ठाम. म०॥७॥
कमठ कहइ सुणि राजवी रे, नवि जाणउ धरम मरम,
कुअर करि कुहडो लेइ [रे], कापिउं कापिउं बोहड जाम. म०॥८॥
अध बलतो नाग काढिओ रे, कानि दीउं अभिमन्त्र,
मंत्र प्रभावि ते थयउ रे, देव ज देव हुओ धरणेन्द्र. म०॥९॥
कुअर प्रसंसा सहु करि रे, कमठ गलिउं तव मान,
कुअर घरि आवी करी रे, आली छइ आलि वरसी दान. म०॥१०॥
निज अवसर जाणी करी रे, चारीत लि जिन चंग,
तप तपि अति आकरो रे, ध्यानिं ते ध्यानिं रहिआ रंग. म०॥११॥
तापस तिहां थकी चवी रे, मेघमाली थयउ देव,
क्रोध धरी मन चिंतवइ रे, विर ज विर वालू मुझ हेव. म०॥१२॥

अंधकार वेगि करी रे, देव वरसावि मेह,
काउसगथी जिन नवि चलि रे, देहसूं देहसूं न धरइ नेह. म०॥१३॥
नाक लगि उचूं चडिउं रे, नीर तणा हलोल,
तव जिन आकुल अति थआ रे, देव ते देव करि कलोल.म०॥१४॥
अवधिज्ञान इंदो जोअ रे, आसन कंपिउं केम,
निज सामी जाणी करी रे, इंद्र ज इंद्र ज आवइ तेम. म०॥१५॥
कमल करी सोहामणूं रे, बइसारि जिनदेव,
फण धर्यां जिन उपरि रे, नाग ज नाग ज सारि सेव. म०॥१६॥
जिम जिम जल उंचूं चडि रे, तिम तिम कमल चडंत,
इंद्रइं ते तव अटकल्यो रे, कमठइना कमठ तणा करतुत. म०॥१७॥
तव इंदो मारण धसो रे, देव नाठो ततकाल,
जई सामी सरणि रह्यो रे, जीवत जीवत द्याइं दयाल. म०॥१८॥
इंद चिंतइ मि नवि मरि रे, सामी सरणूं लीध,
जिन प्रति सूर विनवि रे, छोडो यो छोडो मुझ अपराध. म०॥१९॥
दोसी खामी सुर आपणो रे, पुहतो निज तणि ठामि,
इंदो जिन प्रयामी करी रे, वेगसूं वेगइं वलिउं जाम. म०॥२०॥
ध्यान धरइ जिनजी भलूं रे, पाली पञ्चाचार,
कठिन करम दूरि थयां रे, केवल केवल पामूं सार. म०॥२१॥
वागी देवनी दु[दु]हि रे, मलिआ सुरनां वृंद,
समोसरण तिहां रचि रे, आविआ आव्यां सुरनां वृंद. म०॥२२॥
धरम देसन जिनजी देह रे, अनुक्रम विहार करंत,
सर्वायु पुरुं करी रे, पुहुता ते पुहता मुगत्य महंत. म०॥२३॥
इम जिनवर गुण गावंतो रे, सफल फल्यो मुझ आज,
सकल पदारथ स पामिअ रे,पामी ते वंछित केरुं राज. म०॥२४॥
भेलडिअ जिन भेटिअुं रे, **वामानंद** नरिंद,
मनह मनोरथ पूरतो रे, तुं छइ जग त्रिंजग केरो इंद. म०॥२५॥
मि जिन गाओ हरखसूं रे, आणी उलट अंग,
जे जिनगुण भावि भणि रे, तुं घरि वाधि दिन दिन रंग. म०॥२६॥

ए सकल सुखकर, तुं जग दुःखहर वंछिअ आसो पूरणो,
इम आवइ सुरवर नमि रंगभरि, परम पातिक चूरणो,
मि उलट आणी स्तव्यो रंगइं, तुं जगजंतु हीतकरू,
जीवसौभाग्य सेवक जंपि, आसा पूरो जिनवरु. म०॥२७॥

शब्दकोश

बोहड (८) ?
भेलडिअ (२५) भीलडिया

श्रीसंभवनाथ-स्तव

॥६०॥

सुखकारक हो, **श्रीसंभवनाथ** किं साथ ग्रह्यो में ताहरो,
सिद्धपुरनो हो, प्रभु सारथवाह किं भव अडवीनो भयहरो. १
हुं भमीओ हो, मोहवस महाराज किं गहन अनादि निगोदमां,
कीधा पुद्गल हो, परावर्त्त अनंत किं महामूढतानिंदमां. २
तिरिगइमां हो, असन्नि एगिंदि किं वेद नपुंसक ने वनां,
आवलिनें हो, असंख्य में भाग किं सम पुग्गलपरावर्त्तनां. ३
सुक्ष्ममां हो, सामान्ये स्वामि किं भू जल जलण पवन वनें,
उत्सर्प्पिणी हो, असंख्याता लोग किं नभप्रदेश समा मिणें. ४
उघें बादर[१] हो, बादरवनमांहि किं अंगुल असंख्यभागें मिता,
अवसर्प्पिणी हो, सुहुम थुल अनंत किं अढी पुग्गलपरिअत्तता. ५
हिवें बादर हो, पुढवीनें नीर किं अनल अनिल पत्तेयतरु,
निगोदमां हो, सुणि तारकदेव किं सित्तरि कोडाकोडि सागरु. ६
विगलेंदी हो, मांहि संख्यात किं सहस वरस जीवन रुल्यो,
पंचिंदी हो, तिरि नर भव आठ किं आठ करम कचरें कल्यो. ७
नारक सुर हो, एक भव अरिहंत किं विण अंतर सांतर पणें,
कहु(हुं) केती हो, जाणो जगदीस किं कर्मकदथ(र्थ)न जीवनें. ८

चउद भेदे हो, चउद राज मझार किं चोरासी लख योनिमां,
भ्रम रसीओ हो, वसीओ बहुवेस किं भवपरिणति तति गहनमां. ९
असुद्धता हो, थई असुद्ध निमित्त किं सुध निमित्तें ते टलें,
ते माटे हो, सर्वज्ञ अमोह किं तुम्ह संगे चेतन हिलें. १०
निजसत्ता हो, भासन रुचिरंग किं **खिमांविजय** गुरुथी लही,
जिनविजयें हो, पारग तुम्ह सेव किं साधन भावइं संग्रही. ११

इति संभवप्रभोः स्तवः ॥

पञ्चतीर्थी स्तवन

आदि ए **आदि** जिणेसरू ए, पुंडर **पुंडरगिरि** सिणगार के,
रायणंरूख समोसर्या ए, पूरव पूरव नवाणूं वार के, आदि ए आदि जिणेसरू ए,
आदि ते आदि जिणंद जाणूं, गुण वखाणूं जेहना,
मनरंग मानव देव दानव, पाय पूजे तेहना,
एक लख चोरासी पूरव पोढा, आयु जेहनो जाणीइं,
सेत्तुंज सामी रिसह पामी, ध्यान धवलो आणीइं. १

दीठो ए दीठो ए **दीओदर** मंडणो ए, मीठो ए मीठो ए अमीय समाण के,
शांति जिणेसर सोलमो ए मोहए सोवन वान के, दीठो ए दीठो ए दीओदरमंडणो ए,
दीओदर मंडण, दुरितखण्डण दीठे दारिद्र चूरए,
सेवता संकट सर्व नासें, पूज्या वंछित पूरए,
सूर करिय माया सरणें आया, पारेवो जिणे राखीओ,
दाता भलेरो दया केरो, दान मारग दाखीओ. २

गिरुओ ए, गढ **गिरनारनो** ए, जस सिर जस सिर **नेमीकुमार** के,
समुद्रविजय राया कुलतिलो ए, राणि शिवादेवी तणो रे मलार के,
गिरुओ ए गढ गिरनारनो ए,
गिरनार गिरुओ डुंगर देखी, हीइं हरखी हे सखी,
नवरंग नवेरी नेमि केरी, करिस पूजा नवलखी,

जिनचित्त मीठी दया दीठी, राणी राजूल परिहरी,
संसार टाली सीयल पाली, नेमी मुगति वधू वरी. ३
जास्यू ए जास्यू ए देव **जीराउलें** ए, करस्यूं ए सफल बे हाथ के,
साथ मिल्यो संघ सामठो ए, पूजवा पूजवा **पारसनाथ** के,
जास्यूं ए देव जीराउलें ए,
जीराउलो जगनाथ जाणी, हिइं आणी वासना,
मन मान मोडी हाथ जोडी, गायस्युं गुण पासना,
ढम ढोल ढमकें घूघर घमकें रंग रूडी वासना,
प्रभु सेव करतां ध्यान धरतां सूखे आवे आसना. ४
साचो ए, जिन **साचोर** नो ए, त्रिभूवन मंडण **वीर** के,
धीरपणे जिण तप तप्यो ए, सोवन सोवन वान सरिर के,
साचो ए जिन साचोरनो ए,
साचो सामी सदा साचो, चोपट मल चिहुं दिश तपें,
प्रभु पाप चूरें आस पूरें, जाप जोगीसर जपें,
ससि सुर मंडल कांने कुंडल, हिइं हार सोहामणो,
जिनराज आज दयाल देखी, उपनो उलट घणो. ५
पंच ए पंच मेरु समान के, पंच ए तीरथ जे स्तवें ए,
स(त)सु घरि तसु घरि नवेय निधान के, तस घरि रंग वधामणां ए,
तिहां घरें तिहां घरें अंगण पवीत्र के, नर नारि करे रे आणंद के,
मुनी **लावण्यसमें** भणें ए,
इम भणें लावण्यसमय भावन्न तस घरें, जय जय कार ए,
इम कहें कवियणसु एगे भवियण पामे भव पार ए. ६

इति श्रीपंचतिर्थिजिनस्तवनं
श्रीखिरपुर मध्ये शांतिनाथप्रशादात् स्वात्मार्थे श्री...

शब्दकोश

नवेरी (३) नवतर, नवीन
आसना (४) आराम ?

श्रीशीतलनाथ-स्तवन

मोरा साहिब हो, श्रीसीतलनाथ की, वीनति सुणि एक मोरडी,
दुख भांजइ हो, तुं दीनदयाल की, वात सुणी मइ तोरडी...मो० १
तिण तोरइ हो, हुं आय उपासिकि, मुझ मनि आसा छइ घणी,
कर जोडी हो, कहुं मन की बात कि, तुं सुणिजे त्रिभुवन धणी...मो० २
हुं भमियउ हो, भवसमुद्र मझार कि, दुख अनंता मइ सह्या,
ते जाणइ हो, तुहि ज जिणराय कि, मइ किम जायइं ते कह्या...मो० ३
भाग जोगइ हो, तोरउ श्रीभगवंत कि, दरसण नयने रे निरखीयउ,
मन मान्यउ हो, मोरइ तुं अरिहंत कि, हीयडउ हेजइ हरखीयउ...मो० ४
एक निश्चय हो, मइ कीधउ आज कि, तुक(झ) बिण देव बीजउ नही,
चिंतामणि हो, जउ पायउ रतन्न तउ, काच ग्रहइ नहि को सही...मो० ५
पञ्चामृत हो, जउ भोजन कीध तउ, खलि खावा मन किम थीयइ,
कंठतांइ हो, जउ अमृत पीध तउ, खारउ जल कहउ कुण पीयइ...मो० ६
मोतीकउ हो, जउ पहिरेवउ हार तउ, चिरमछि कुण पहिरइ हीयइ,
जसु गांठि हो, लाख कोडि गरत्थ कि, व्याज काढी दाम किम लीयइ...मो० ७
घर माहे हो, जउ प्रगट्यउ निधान तउ, देसंतरि कहउ कुण भमइ,
सोना कउ हो, जउ पुरसउ सीध तउ, धातुवाहनइ कुण धमइ...मो० ८
जिण कीधा हो, जवहरव्यापार तउ, मणिहारी मनि किम गमइ,
जिण कीधा हो, सही हाल हुकम्म तउ, ते तुं-कार्यउ किम खमइ...मो० ९
तुं साहिब हो, मेरउ जीवन प्राण किं, हुं प्रभु सेवक ताहरउ,
मोरउ जीवित हो, आज जनम प्रमाण कि, भवदुख भागउ माहरउ...मो० १०
तुझ मूरति हो, देखतां प्राय कि, समोसरण.....,
जिन प्रतिमा हो, जिनसरिखी जाणि कि, मूरिख जे सांसउ करइ... मो० ११
तुम दरसण हो, [मुझ (?)]आणंदपूर कि, जिम जगि चंद-चकोरडा,
तुम दरसण हो, मुझ मनि उछरंग कि, मेह आगमि जिम मोरडा...मो० १२
तुम नामइ हो, मोरां पाप पुलाय कि, जिम दिन ऊगइ चोरडा,
तुम नामइ हो, सुख संपति थाय कि, मनवंछित फलइ मोरडा...मो० १३

हुं मांगु हो, हिव अविहड प्रेम कि, नित नित करुंय निहोरडा,
मुझ देज्यो हो, सामी भव भव सेव कि, चरण न छोडुं तोरडा...मो० १४
कलशः इम **अमरसर**पुर संघसुखकर मात वंदा नंदणो,
सकलाप **सीतलनाथ** सामी सकल जण आणंदणो;
श्रीवच्छ लाछण वर रूप कंचण रूपसुंदर मोहए,
ए तवन कीधउ **समयसुंदर** सुणत जण मोहए...मो० १५

इति श्रीअमरसरमंडण श्रीशीतलनाथ-बृहत्स्तवनं संपूर्णः
समापतं ॥श्री....

शब्दकोश

खलि(६)	खोळ
चिरमछि (७)	कीरमजी (एक जातनुं कापड)
मणिहारी (९)	मणीयारनो धंधो
पुलाय (१३)	नासी जाय
निहोरडा (१४)	आनंद, मोज

टूंकनोंध (अनुपूर्ति) :

मोटी खाखरना देरासरमांनो एक पादुकालेख

- उपा. भुवनचन्द्र

अनु० ५४मां 'नानादेशदेशीभाषामयस्तोत्र'नी भूमिकामां भुजना 'रायविहार'नी चर्चा थई छे. आ देरासरमां रहेला विजयचिन्तामणि-पार्श्वनाथने केन्द्रमां राखी ए रासनी रचना थई छे. रायविहारना मूळनायक तो आदिनाथ भगवान प्रथमथी ज छे. पण त्यां एक बिम्ब विजयचिन्तामणि पार्श्वनाथनुं छे एटली माहिती मोटी खाखरना देरासरना शिलालेखमांथी मळे छे. चिन्तामणि पार्श्वनाथनी विशेष प्रसिद्धि ते समये सारी पेठे हती तेवुं मोटी खाखरना ज एक बीजा लेखथी सिद्ध थाय छे. भ.आदिनाथना पादुका उपरना लेखमां भुजना रायविहारनो अने चिन्तामणि-पार्श्वनाथ तथा ऋषभदेव - एम बे बिम्बनो उल्लेख छे.

'नानादेश०' रासमां मात्र चिन्तामणि-पार्श्वनाथ भ. नो ज उल्लेख छे, साथे चौमुख देरासरनो उल्लेख छे. रायविहार आजे पण विद्यमान छे अने प्रथमथी ज ते चौमुख न हतुं. आथी चौमुख देरासरनी बाबत अनिर्णीत रहे छे.

मोटी खाखरनो रायणपादुका परनो लेख अहीं आप्यो छे. श्रीविवेकहर्षगणी अष्टावधानना साधक हता; कच्छ, जेसलामंडल वगेरे देशोना अधिपति राव भारमल्लजीने प्रतिबोध आपी अमारिघोषणा करावी हती. राव भारमल्ले रायविहार बंधाव्युं जे चिन्तामणि-पार्श्वनाथ तथा श्रीआदिनाथना बिम्बथी अलंकृत हतुं. भारमल्लजीना भायात पंचाणजीना ताबाना खाखरि गाममां सा.वयरसीए शत्रुंजयावतार-मन्दिर बंधाव्युं, तेमां आ पगलांनी प्रतिष्ठा करावी वगेरेनो आमां निर्देश छे. भद्रेश्वरतीर्थमां जीर्णोद्धार पण तेमणे कराव्यो हतो.

रायणपादुका परनो लेख

श्रीआदिनाथपादुके श्रीशत्रुञ्जयावतारसूचके कारिते स्पष्टाष्टावधान-साधकै(क)-श्रीकच्छवागडजेसलामण्डलाद्यनेकदेशाधीशमहाराज-श्रीभारमल्लजी-प्रतिबोधप्रवर्तित-सकलदेशविषयकगवादि[का]भयदान-मुक्ति-भक्ति-प्रसन्नीकृत-श्रीऋषभदेवोपासकसुरविशेषसान्निध्यात् सं. १६५८ वर्षे पोस वदि ६ [उके]सगणभट्टा०- कक्कसूरिसमुपदिष्ट-महाराजश्रीभारमल्लजी-निर्मित-श्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथ-श्रीऋषभदेवाद्यलङ्कृत-श्रीरायविहारप्रासाद-श्रीभद्रेश्वर-जीर्णविहारोद्धारप्रभृति-सुकृतसमर्जित-यशःकर्पूरपूरसू(सु)रभीकृत-श्रीजैनशासन-प्रामाणिकप्रवर-पं.श्रीविवेकहर्षगणिप्रतिबोधित-राजभ्रातृश्रीपंचायणजी-सत्क-श्रीखाखरिग्रामग्रामणी-सा०वयरसीकेन प्रतिष्ठिते च श्रीतपागच्छाधिराज-श्रीविजयसेनसूरिभिः । मुनिउदयहर्षेण लिपीचक्रे ।

जैन देरासर
नानी खाखर (कच्छ)

दर्शन विशे विचारणा

- ले. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

'दर्शन' शब्द त्रण अर्थमां व्यापकपणे प्रचलित छे:[१] १. जोवुं २. अलौकिक वस्तुनो साक्षात्कार ३. निश्चित विचारसरणी (जेम के साङ्ख्यदर्शन). जैन परम्परामां आ उपरान्त बे विशिष्ट सन्दर्भे दर्शन-शब्द प्रयोजाय छे[२] : १. तत्त्व परनी श्रद्धा (-सम्यक्त्व) २. निराकार-उपयोग (-सामान्यग्रहण). अत्रे आमांथी दर्शनना अेक अर्थ निराकार-उपयोग विशे ज विचारवानो उपक्रम छे.[३]

जैन विद्याना अभ्यासीओमां ज्ञान-दर्शननी व्यवस्था अंगे अने तेमां पण खास करीने दर्शनना स्वरूप सम्बन्धे जे समज़ण आजे प्रवर्ते छे, ते आगमिक दर्शननी विभावनाथी घणी भिन्नता धरावे छे. आ भिन्नताने लीधे प्रचलित ज्ञान-दर्शननी व्यवस्था परत्वे आगमिक अने तार्किक -बन्ने दृष्टिअे घणी घणी समस्याओ सर्जाइ शके तेम छे. अत्रे आ समस्याओ अने मूळ दर्शननी विभावनामां रहेला तेमना उकेलो तरफ ध्यान दोरवानो उद्देश छे.

अेक वात खास ध्यानमां राखवानी छे के दर्शन विशे अेक ज स्थाने सांगोपांग निरूपण प्रायः उपलब्ध नथी थतुं; फक्त अेना अंगेना पाठ जुदां जुदां शास्त्रोमां मळे छे. सामान्यतः अभ्यासीओ द्वारा आ पाठोनुं संकलन करीने दर्शन विशे समजवामां अने समजाववामां आवतुं होय छे. आ संकलनमां थयेली त्रुटिने लीधे जूना समयथी ज दर्शननी मूळ विभावना साथेनो सम्बन्ध छूटी

---

१. मूळ 'जोवुं, अवलोकन करवुं' अे अर्थमां प्रयोजातो शब्द कई रीते साक्षात्कार अने विचारसरणी सन्दर्भे प्रयोजातो थयो तेनी रसप्रद चर्चा माटे जुओ भारतीय-तत्त्वविद्या (-पं. सुखलालजी)-पृ. ९-१३

२. आ उपरान्त 'सम्यक्त्वनी विशुद्धि कारक शास्त्र' जेवा अर्थोमां पण औपचारिक रीते 'दर्शन' शब्द जैनपरम्परामां प्रयोजाय छे. जुओ अभिधानराजेन्द्रकोश-भाग-४ - पृ. २४२५ - 'दंसण' शब्द.

३. प्रस्तुत विषय साथे सम्बन्धित घणी वातो आ पूर्वे 'मतिज्ञानना उत्पत्तिक्रमनी विचारणा' अे लेखमां आवी गइ होवाथी, ते वातो अत्रे पुनरावर्तित नथी करी. लेखनुं स्थान-अनुसन्धान-५४-पृ. १५-३८

गयो लागे छे; अने नवी व्यवस्थामां पण अलग-अलग व्यक्तिओ द्वारा थयेलुं संकलन स्वाभाविक रीते थोडीक विविधता धरावे छे. अेटले अत्रे दर्शावाशे ते दर्शनव्यवस्थाथी जूदुं निरूपण पण कशेक उपलब्ध थइ शके छे.[१] पण अत्यारे सौथी वधारे प्रचलित ज्ञान-दर्शननी व्यवस्था तो नीचे मुजब ज छे.

आत्मा सकल विश्वनी तमाम वस्तुओनो सम्पूर्ण बोध करवानी शक्ति धरावे छे, जे केवलज्ञानशक्ति तरीके ओळखाय छे. आत्मा ज्यां सुधी सम्पूर्ण शुद्धि नथी प्राप्त करतो, त्यां सुधी आ शक्ति कर्मने लीधे ढंकायेली रहे छे अने तेथी आत्मा तेनो उपयोग नथी करी शकतो. परन्तु, आ ज्ञानशक्ति अेटली प्रबळ होय छे के जेथी गमे तेवुं सबळ कर्म पण तेने सम्पूर्णतः ढांकी नथी शकतुं. अेटले जेटला अंशे अे शक्ति खुल्ली रही जाय, तेटला अंशे तेनो उपयोग करीने आत्मा बोध करी शके छे. केवलज्ञानशक्तिना आ खुल्ला रहेला अंशना, विषयक्षेत्र,उपयोगनां साधन व.ने लीधे चार प्रकार पडे छे : १. मतिज्ञानशक्ति (-पांच ज्ञानेन्द्रियो अने मन द्वारा बोध करवानी शक्ति) २. श्रुतज्ञानशक्ति (-सांभळीने के वांचीने बोध करवानी शक्ति) ३. अवधिज्ञानशक्ति (-इन्द्रिय अने मनथी निरपेक्षपणे, निश्चित मर्यादामां रहेला मूर्त पदार्थोनो बोध करवानी शक्ति) ४. मनःपर्यवज्ञानशक्ति (-बीजाना मनना विचारोने जाणवानी शक्ति). आ चारमांथी प्रथम बे ज्ञानशक्ति दरेक जीव पासे होय छे अने छेल्ली बे विशिष्ट कारणोथी ज मळी शके छे. अने पांचमी केवलज्ञानशक्ति तो सर्वथा निर्मल जीवने ज उपलब्ध थाय छे.

बीजी तरफ, दरेक ज्ञेय वस्तु बे अंश धरावे छे : १. सामान्य अंश- जेना द्वारा अेक वस्तु बीजी वस्तुओ साथे समानता धरावे छे. २. विशेष अंश- जेना लीधे अेक वस्तु बीजी वस्तुओथी अलग पडे छे. कोई पण वस्तुमां सामान्य अंशो तो घणा होय छे, पण अत्रे ते ज अन्तिम सामान्य अंशने ध्यानमां

१. जेम के 'ज्ञान पूर्वे दर्शन अवश्य होय' अने 'मतिज्ञानती शरुआत व्यंजनावग्रहथी थाय' आ बे नियमोने जोइ अेवुं पण समजाववामां आवे छे के 'दर्शन व्यंजनावग्रहनी पूर्वनो तबक्को छे.' पण व्यंजनावग्रहथी पूर्वे कोई ज्ञानमात्रा सम्भवती न होवाथी, आ वातने अनुचित जाणी अत्रे स्थान नथी आप्युं. ''व्यञ्जनावग्रहप्राक्काले दर्शनपरिकल्पनस्य चाऽत्यन्तानुचितत्वात्, तथा सति तस्येन्द्रियार्थसन्निकर्षादपि निकृष्टत्वेनाऽनुपयोगत्वप्रसङ्गाच्च'' -ज्ञानबिन्दु-पृ. ४६

लेवानो छे के जे सामान्य अंश द्वारा तमाम पदार्थोने अेक दोरे परोवी शकाय छे अने जे 'कंइक छे' अेवी प्रतीतिनो विषय छे. दरेक सत् पदार्थमां सघळां ये विशेषणोथी विमुक्त अेक उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक सत्त्व वर्ततुं होय छे के जे दार्शनिक परिभाषामां 'महासामान्य' तरीके ओळखाय छे; ते ज आ सामान्य अंश छे. अन्य आपेक्षिक सामान्य अंशो ज्ञानदर्शननी विचारणा पूरता विशेष अंशो ज गणाय छे.

आत्मा पोतानी ज्ञानशक्ति द्वारा वस्तुना सामान्य अने विशेष -बन्ने अंशोनो बोध करी शके छे. जो आ ज्ञानशक्तिओ सामान्य अंशनो बोध करवामां वपराय, तो तेमनो ते वपराश (-उपयोग) 'दर्शन' कहेवाय छे[१] अने विशेष अंश माटे थतो ज्ञानशक्तिओनो वपराश 'ज्ञान' कहेवाय छे.[२]

शास्त्रोमां दर्शन 'निराकार उपयोग' तरीके पण ओळखाय छे. जो के कोई पण बोध आकार वगरनो अर्थात् सर्वथा निराकार नथी ज होतो; तो पण दर्शन अेटले निराकार गणाय छे के तमाम दर्शनो समानाकार ज होय छे.[३] वास्तवमां आकार शब्द अहीं वैशिष्ट्य अर्थमां छे. ज्ञानगत आ वैशिष्ट्य तेनी पोतानी चोक्कस अर्थना ग्रहण तरफनी अभिमुखताने लीधे आवे छे;[४] के जेने लीधे अेक ज्ञान बीजा ज्ञानथी जुदुं पडीने ओळखाइ शके छे. फक्त अने फक्त महासामान्यना ग्राहक दर्शनोमां आवी कोइ विशिष्टता छे ज नहीं के जेनाथी बे दर्शन परस्पर छूटां पडी शके, माटे दर्शन निराकार छे अने परस्पर विषयवैशिष्ट्य धरावनार ज्ञान साकार छे. दर्शन अेटले पण निराकार गणाय छे के ते वस्तुने पकडतुं ज नथी, मात्र महासामान्यने ज देखे छे के जे बधी ज वस्तुमां सरखुं

---

१. दृश्यतेऽनेनेति दर्शनं, दृष्टिर्वा दर्शनं, सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यग्रहणात्मको बोधः । ज्ञायते-परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति ज्ञानं, ज्ञप्तिर्वा ज्ञानं, सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेषग्रहणात्मको बोधः -नव्यकर्मग्रन्थ-१-गाथा ३-टीका.

२. जो के दर्शनमां पण गौणपणे विशेषोनो अभ्युपगम होय छे, अने ज्ञानमां पण गौण-पणे सामान्यनो अभ्युपगम होय ज छे.

३. ''अनाकाराणि- सामान्याकारयुक्तत्वे सत्यपि न विद्यते विशिष्टो व्यक्त आकारो येषु तान्यनाकाराणि'' - कर्मग्रन्थटीका

४. ''आकारः प्रतिनियतो ग्रहणपरिणामः' - भगवतीटीका

छे; तेथी दर्शनमां ग्राह्य अर्थने सम्बन्धित आकार रचातो ज नथी, ते निराकार ज रहे छे. अेथी उलटुं, ज्ञान वस्तुने तेना पोतीका स्वरूपे ज पकडे छे तेथी ज्ञानमां ग्राह्य वस्तुनी जोडे एकाकारता आवे छे माटे ज्ञान साकार छे. अत्रे आकारनो अर्थ तद्रूपता छे.[१] आम दर्शनमां विषयवैशिष्ट्य न होवाने लीधे पण ते 'निराकार' गणाय छे, अने वस्तु साथे तद्रूपता आवती न होवाथी पण ते 'निराकार' कहेवाय छे.

दर्शन आ ज कारणथी प्रमाण अने अप्रमाण –उभयकोटिथी पर गणाय छे. कारण के दर्शने तो महासामान्यनुं ज ग्रहण करवानुं छे अने महासामान्य तो बधे सरखुं ज होय छे; तेथी तेना ग्रहणमां साचा-खोटानो प्रश्न ज उपस्थित नथी थतो. परन्तु ज्ञाननी बाबतमां आवुं नथी. ज्ञाने विशेषोने ग्रहण करवाना छे अने गृहीत विशेषो साचा के खोटा होइ शके छे, तेथी अे विशेषोनी सत्यता के असत्यताने लीधे ज्ञान पण प्रमाण के अप्रमाण गणाय छे. जो के सापने साप गणवो ते प्रमाण अने दोरडाने साप तरीके ओळखवो ते अप्रमाण –आवुं विषयग्रहण पर निर्भर लौकिक प्रामाण्याप्रामाण्य अत्रे सम्भवी शके छे; पण वास्तवमां अत्रे जैनदर्शनने सम्मत पारमार्थिक प्रामाण्याप्रामाण्यने आपणे समजवानुं छे.[२] छद्मस्थ जीवने[३] थतो बोध अपूर्ण ज होय छे, कारण के तेनी दृष्टि बहु ज सीमित क्षेत्र अने कालमां प्रवर्ते छे, वळी बहु ज थोडां द्रव्य-पर्याय तेना ज्ञाननो विषय बनी शके छे. सम्पूर्ण बोध तो केवलज्ञानी भगवन्तने ज थइ शके छे. तेओअे छाद्मस्थिकबोध शा माटे ? अने कई रीते ? अपूर्ण होय छे अने तेने सम्पूर्ण कई रीते बनावी शकाय तेनी स्पष्ट समज आपी ज छे. वळी, तत्त्व अने सत्य शुं होय ते पण बहु सूक्ष्मताथी जणाव्युं छे. आ सर्व पर श्रद्धा धरावनारी व्यक्ति अे समज़णने आधारे पोताना अपूर्ण बोधने पण पूर्ण बनावी दे छे. अने अेथी उलटुं श्रद्धाविहोणी व्यक्ति पोताना अपूर्ण बोधने पण पूर्ण मानी ले छे. आथी पारमार्थिक व्यवस्था अनुसार तत्त्वश्रद्धा

---

१. ''न विद्यते ग्राह्यार्थसम्बन्धी आकारो यत्राऽऽसौ अनाकारः'' – जीवसमास-८३-टीका

२. लौकिक अने पारमार्थिक प्रामाण्याप्रामाण्यना विशेष विवरण माटे जुओ- दर्शन और चिन्तन (-पं. सुखलालजी) पृ. ७५-७७

३. जेने केवलज्ञान नथी प्राप्त थयुं ते जीव 'छद्मस्थ' कहेवाय छे.

धरावनार व्यक्तिनुं (–सम्यक्त्वी जीवनुं) ज्ञान 'ज्ञान' कहेवाय छे अने तत्त्वश्रद्धा न धरावनार व्यक्तिनुं (–मिथ्यात्वी जीवनुं) ज्ञान 'अज्ञान' गणाय छे.[१] ज्ञान प्रमाण छे अने अज्ञान अप्रमाण छे.

श्रुतज्ञानशक्तिनो विषय छे वाक्यना अर्थथी जन्य बोध अने मनःपर्यवज्ञानशक्तिनो विषय छे मानसिक विचारो. आथी आ बे ज्ञानशक्तिओ स्वभावथी ज विशेषग्राही ज छे, अने माटे तेमना निराकार उपयोग पण नथी होता. वळी, मनःपर्यवज्ञानशक्ति अने केवलज्ञानशक्ति तत्त्वश्रद्धा वगर प्राप्त ज नथी थती, माटे तेओनो साकार उपयोग कदी पण अज्ञानात्मक नथी होतो. आ उपरान्त, मतिज्ञानशक्तिनो निराकार उपयोग– सामान्यग्रहण जो चक्षु द्वारा थाय तो चक्षुर्दर्शन अने अन्य चार ज्ञानेन्द्रियो के मन द्वारा थाय तो अचक्षुर्दर्शन गणाय छे.

आ समग्र व्यवस्थाने अनुलक्षीने पांच ज्ञानशक्तिना कुल बार उपयोग सर्जाय छे :

मतिज्ञानशक्ति : १. मतिज्ञान २. मत्यज्ञान ३. चक्षुर्दर्शन ४. अचक्षुर्दर्शन

श्रुतज्ञानशक्ति : १. श्रुतज्ञान २. श्रुताज्ञान

अवधिज्ञानशक्ति : १. अवधिज्ञान २. विभङ्गज्ञान[२] ३. अवधिदर्शन

मनःपर्यवज्ञानशक्ति : १. मनःपर्यवज्ञान

केवलज्ञानशक्ति : १. केवलज्ञान २. केवलदर्शन.

सामान्यअंशनुं ग्रहण थया पछी ज विशेषअंशनुं ग्रहण थाय ते सर्व-सम्मत छे. माटे दर्शन प्रवर्ते, पछी ज ज्ञान प्रवर्ते अे नियम पण आपोआप रचाय छे. दर्शन अने ज्ञान बन्ने अन्तर्मुहूर्तकालीन[३] होय छे, कारण के कोई

---

१. मिथ्यात्वी जीवना ज्ञानने अज्ञान गणवानां अन्य कारणो माटे जुओ विशेषावश्यकभाष्य – गाथा ११५ अने तेनी टीका.

२. मिथ्यात्वी जीवनुं अवधिज्ञान 'विभङ्गज्ञान' कहेवाय छे.

३. जैनकालगणना मुजब कालनो अन्तिम निर्विभाज्य भाग 'समय' गणाय छे. आवा ओछामां ओछा ९ समयथी मांडीने वधुमां वधु लगभग ४८ मिनिट जेटलो काल 'अन्तर्मुहूर्त' गणाय छे. मतलब के अन्तर्मुहूर्त अनेक प्रकारनुं होय छे.

पण उपयोग अन्तर्मुहूर्तथी ओछा समयमां थाय पण नहीं अने अन्तर्मुहूर्तथी वधु टके पण नहीं. दर्शनोपयोगना अन्तर्मुहूर्त करतां ज्ञानोपयोगनुं अन्तर्मुहूर्त मोटुं होय छे, कारण के सामान्यना ग्रहण करतां विशेषनुं ग्रहण वधु समय मांगे छे.[१] जो के आ बधा नियम छद्मस्थ जीव माटे ज छे. केवलज्ञानी भगवन्तने ते सदाकाल अेक समय केवलज्ञान अने बीजा समये केवलदर्शन - अेवी धारा प्रवर्ते छे.

ज्ञानना तमाम भेदो साकार अने ज्ञानावारक कर्मना क्षयोपशमथी जन्य होय छे. तथा तमाम दर्शनो निराकार अने दर्शनावारक कर्मना क्षयोपशम साथे निस्बत धरावनारा होय छे.

अेक अेक ज्ञानना असंख्य भेदो पडे छे, छतांय स्थूल-भूमिकाअे पांच ज्ञानना अनुक्रमे २८, १४, ६, २ अने १ - अेम कुल ५१ भेद समजाववामां आवे छे. तेमांथी मतिज्ञानना उत्पत्तिक्रमने अनुलक्षीने रचाता २८ भेद प्रस्तुत चर्चामां उपयोगी होवाथी ते समजवा जरूरी छे. श्रावणमतिज्ञानना ५ भेद छे: १. व्यंजनावग्रह - श्रोत्रनो शब्दात्मक पुद्गलो साथे संयोग, २. अर्थावग्रह - 'कंइक छे' अेवी निराकार प्रतीति ३. ईहा - 'शुं हशे ?' तेनी विचारणा ४. अपाय- 'शब्द छे' अेवो निश्चय ५. धारणा - निश्चयनी स्थिरता. आवा ज ५-५ भेद स्पार्शन, रसन, घ्राणज, चाक्षुष अने मानस मतिज्ञानना थाय छे. कुल ३०. तेमां चक्षु अने मनने विषयबोध माटे विषय साथेना संयोगनी अपेक्षा न होवाथी[२], अर्थावग्रहथी ज ते बे स्थळे प्रक्रिया आरम्भाती होवाथी, ३०मांथी चाक्षुषव्यंजनावग्रह अने मानसव्यंजनावग्रह - अे बे भेद न होय; ए रीते मतिज्ञानना २८ भेद थाय छे. अन्य ज्ञानोना भेदो विशेषावश्यकभाष्य, नन्दीसूत्र जेवा महाग्रन्थोमांथी जाणी शकाय.

उपर दर्शावेली व्यापकपणे प्रचलित ज्ञान-दर्शननी व्यवस्था खूब ज व्यवस्थित, शास्त्राधारित अने सुदृढ छे, ते स्पष्ट देखाय छे. छतां पण तेमांनां केटलाक प्रतिपादन परत्वे केटलाक प्रश्नो अवश्य सर्जाई शके तेम छे. जेम के-

---

१. ''अनाकारोपयोगकालात् साकारोपयोगकालः सङ्ख्येयगुणः प्रतिपत्तव्यः, पर्याय-परिच्छेदकतया चिरकाललगनात्, छद्मस्थानां तथास्वाभाव्यात्'' - प्रज्ञापना- पद २८-टीका.

२. चक्षु अने मन आ कारणे ज 'अप्राप्यकारी' कहेवाय छे.

१. 'कंइक छे' एवा बोधात्मक अर्थावग्रहने अेक बाजु स्पष्टतः निराकार स्वरूप धरावतो अने अव्यक्त सामान्यनो ग्राहक समजाववामां आवे छे,[१] तो बीजी तरफ साकार अने विशेषग्राही मतिज्ञानना भेद तरीके अेनी गणतरी छे. आमां विरोध नथी ?

२. ज्ञाननी उत्पत्ति पूर्वे दर्शननुं होवुं अनिवार्य छे, पण उपर दर्शावेली मतिज्ञाननी उत्पत्ति प्रक्रियामां दर्शनने स्थान ज क्यां छे ?

३. उपरनी बन्ने समस्याओनुं समाधान अे आपवामां आवे छे के व्यंजनावग्रह, अर्थावग्रह अने ईहा –त्रणेय दर्शनना– निराकार उपयोगना ज भेद छे. अने आ त्रण होय तो ज अपाय–धारणात्मक मतिज्ञान थइ शके छे.[२] माटे दर्शननी ज्ञान पूर्वे अनिवार्यता पण आपोआप सचवाइ जाय छे.[३]

आ समाधाननी सामे अे समस्या ऊभी थाय छे के जो आ त्रण भेदो 'दर्शन' छे, तो साक्षात् दर्शनना भेद तरीके अेमनी गणतरी केम कशे नथी देखाती ? बधे ज मतिज्ञानना अवग्रहादि २८ भेद –अेवी अेकसरखी गणतरी शा माटे ? अवग्रहने, सामान्यना ग्रहणमात्रथी, 'दर्शन' गणी लेवानुं होय तो, सामान्यनी मानसिक विचारणा वखते पण फक्त सामान्य ज विषय बनतुं होय छे, तो अे विचारणाने पण 'दर्शन' गणवी ?

४. अेक समाधान अेवुं पण आपवामां आवे छे के 'मतिज्ञानना २८ भेद'नो मतलब अे नथी के मतिज्ञानरूप साकारोपयोगना २८ भेद होय छे, पण अे छे के मतिज्ञानशक्तिना २८ भेद छे. ज्ञानशक्तिना उपयोग तो साकार–निराकार बन्ने होय छे. माटे मतिज्ञानशक्तिना भेदोमां साकार अने निराकार बन्ने उपयोगोना भेदोनी गणतरी छे. तेथी अवग्रहादि, मतिज्ञानशक्तिना दर्शनना भेदो छे अेवुं समजवानुं छे जेमां कोई विरोध नथी.

आ समाधान अेटले गेरवाजबी ठरे छे के जो मतिज्ञानना भेदोनी

१. ''अर्थावग्रहेऽव्यक्तशब्दश्रवणस्यैव सूत्रे निर्देशाद्, अव्यक्तस्य च सामान्यरूपत्वाद्, अनाकारोपयोगरूपस्य चाऽस्य तन्मात्रविषयत्वात्'' – जैनतर्कभाषा

२. नाणमवायधिइओ, दंसणमिट्ठं जहोग्गहेहाओ – वि.भाष्य – ५३६

३. अमुक ठेकाणे अेकला अर्थावग्रहने अथवा अर्थावग्रह–व्यंजनावग्रह अे बेने पण 'दर्शन' तरीके ओळखाववामां आव्या छे.

गणतरी वखते मतिज्ञानशक्तिने ध्यानमां राखवानी होय अने तेथी तेना दर्शनोना भेदोनो पण तेमां समावेश करवानो होय; तो अवधिज्ञान अने केवलज्ञानना भेद पण ते ते ज्ञानशक्तिना ज समजवा जोइए अने तो पछी अवधिज्ञानना भेदोमां अवधिदर्शननो अने केवलज्ञानमां केवलदर्शननो समावेश केम नथी ? अने जो त्यां अे न होय तो मतिज्ञान वखते ज दर्शननो समावेश शा माटे ? नथी लागतुं के अवग्रह-ईहाने वास्तविक दर्शन गणी लेवानी उतावळ आपणे न करवी जोइअे ?

५. छद्मस्थजीवने विशेषांशना ग्रहण पूर्वे सामान्यांशनुं ग्रहण अनिवार्य छे.[१] विशेषांशनुं ग्रहण ज्ञान कहेवाय छे अने सामान्यांशनो बोध दर्शन गणाय छे अे आपणे पूर्वे जोइ गया. हवे नन्दीसूत्रनो मतिज्ञाननुं विषयक्षेत्र दर्शावतो पाठ जुओ : ''दव्वओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वदव्वाइं जाणति न पासति... ।'' अत्रे आगमिक परिभाषा मुजब 'जाणति' अने 'पासति' अनुक्रमे ज्ञान अने दर्शन साथे सम्बन्धित छे. तेथी प्रचलित व्यवस्था मुजब आनो अर्थ थाय : 'मतिज्ञानी सर्वद्रव्योना विशेषांशनुं ग्रहण करे छे, पण सामान्यांशनुं नथी करतो'. आवुं तो कई रीते मानी शकाय ? तो 'पासति' अत्रे 'पश्यत्ता(जोवुं)'ना सन्दर्भमां ज वपरायुं छे एवुं नहि ?

६. श्रुतज्ञान अने मनःपर्यवज्ञानमां तो सामान्यग्रहण ज नथी होतुं; छतांय नन्दीसूत्रगत तेमनां विषयनिरूपणमां पण 'पासति' शब्द आवे छे ! जो के आ 'पासति'ने 'पश्यत्ता'ना सन्दर्भमां व्याख्यायित करवामां आव्युं ज छे[२] अने अे रीते ते निरर्थक पण नथी ज; परन्तु कहेवानुं तात्पर्य अेटलुं ज छे के 'पासति (-दर्शन)' जो मूलतः 'जोवुं' ने बदले सामान्यग्रहण साथे सम्बन्ध धरावतुं होत तो कदापि नन्दीसूत्रमां अेनो आ रीते प्रयोग करवामां न आव्यो होत.

७. दर्शन जो सामान्य अंशनुं ज ग्राहक होय अने ज्ञान विशेष अंशनुं ज, तो केवलज्ञान अने केवलदर्शन -बन्नेमांथी अेक पण सर्वविषयक नहीं बने. जो के सामान्य अने विशेष -बन्ने अन्योन्य संवलित ज होय छे अने

१. ''दर्शनपूर्वं ज्ञानमिति छद्मस्थोपयोगदशायां प्रसिद्धम्'' - ज्ञानबिन्दुगत सन्मतितर्क - २.२२नी टीका.

२. श्रुतज्ञान अने मनःपर्ययज्ञानमां 'पासति' ना विशेष विवरण माटे जुओ पृ.१६८-१७०

तेथी प्रधानपणे सामान्यग्राहक केवलदर्शनमां गौणपणे विशेषोनो बोध छे ज, तेम ज प्राधान्यथी विशेषग्राही केवलज्ञान गौणपणे सामान्यग्राही छे ज, अने एटले ते बन्ने सर्वविषयक बने छे – आवुं समाधान आ समस्यानुं सूचववामां आवे छे; पण प्राधान्यथी सर्वविषयकत्व क्यांय न रहेवानी आपत्ति ऊभी ज रहे छे.

८. दर्शन फक्त सामान्यग्रहणरूप ज होय, अेमां कोई विशेषता आवती ज न होय तो शा माटे चक्षुथी थतुं दर्शन ते चक्षुर्दर्शन अने अन्य ४ ज्ञानेन्द्रियो ने मनथी थतुं दर्शन ते अचक्षुर्दर्शन – आवा विभाग पाडवा पडे ? 'सन्मति'कारना शब्दोमां कहीअे तो चक्षुरिन्द्रियजन्य सामान्य बोधमां, अन्य इन्द्रियोना सामान्य बोधनी अपेक्षाअे अेवी कई विशेषता हती के तेने 'चक्षुर्दर्शन' अेवुं जुदुं शीर्षक आपवुं पडे ?[१]

९. चाक्षुष अने मानस प्रत्यक्षमां व्यंजनावग्रह नथी होतो ते बराबर छे. पण अेनो मतलब अे थोडो करी लेवाय के त्यां मतिज्ञाननी प्रक्रिया सीधी अर्थावग्रहथी ज आरम्भाय छे ? छद्मस्थनुं कोई पण ज्ञान अन्तर्मुहूर्तथी ओछुं न होय तो अेने सीधो ज अेक समयमात्रनो अर्थावग्रह सम्भवे ज कई रीते ? अर्थावग्रह अेटले के विषय अने इन्द्रियनी ग्राह्य अने ग्राहक तरीकेनी स्थापना साथेनो अल्प बोध के जे थवामां श्रोत्रादि इन्द्रियोमां असंख्य असंख्य समयो लागी जाय छे ते चक्षु के मनना उपयोगना प्रथम समये ज थाय ज कई रीते ? आवा आवा अनेक प्रश्नो उद्‌भवे छे, जे सूचवे छे के चाक्षुष अने मानस प्रत्यक्षमां अर्थावग्रहथी पूर्वे अेवी कोई ज्ञानमात्रा मानवी ज जोइअे के जे त्यां व्यंजनावग्रहनी खोट पूरी शके.

१०. दर्शन अंगेनी प्रचलित समजणनो मुख्य आधार छे : 'सामान्य अने विशेष –उभयात्मक वस्तुना सामान्य अंशनुं ग्राहक ते दर्शन' आवी मान्यता.[२] आनी सामे दर्शननुं विषयक्षेत्र दर्शावतो आगमिक पाठ जुओ : ''से किं तं दंसणगुणप्पमाणे ? दंसणगुणप्पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते । तं जहा – चक्खुदंसणगुणप्पमाणे अचक्खुदंसणगुणप्पमाणे ओहिदंसणगुणप्पमाणे केवल–

१. ''एवं सेसिंदियदंसणम्मि नियमेण होइ ण य जुत्तं ।
अह तत्थ नाणमित्तं घेप्पइ चक्खुम्मि वि तहेव ॥'' – सन्मति–२.२४

२. पृष्ठ १४५– टि.१. अभिधानराजेन्द्रकोशमां 'दंसण' शब्दना विवरणमां आ मतलबना घणा पाठो दर्शावाया छे.

दंसणगुणप्पमाणे । चक्खुदंसणं चक्खुदंसणस्स घडपडकमरहाइएसु दव्वेसु । अचक्खुदंसणं अचक्खुदंसणस्स आयभावे । ओहिदंसणं ओहिदंसणस्स सव्वरूविदव्वेहिं, न पुण सव्वपज्जवेहिं । केवलदंसण केवलदंसणस्स सव्वदव्वेहि अ सव्वपज्जवेहि अ । से त्तं दंसणगुणप्पमाणे ॥'' - अनुयोगद्वार ।[१]

स्पष्टतः अत्रे दर्शननुं विषयक्षेत्र सामान्य अंश करतां घणुं विशाळ देखाडायुं छे. अवधिदर्शनना विषय तरीके सर्व रूपी द्रव्योना अमुक पर्यायोनो अने केवलदर्शनना विषय तरीके सर्वद्रव्योना सर्व पर्यायोनो निर्देश खास खास ध्यानपात्र छे. कारण के पर्याय अेटले विशेष, अने प्रचलित व्यवस्था तो दर्शनमां विशेषोनुं ग्रहण स्वीकारती ज नथी.

आ उपरान्त बीजी पण अनेक विसंगतिओ आ परत्वे दर्शावी शकाय; परन्तु आ बधा परथी समजवानुं अेटलुं ज छे के प्रस्तुत ज्ञान-दर्शननी विचारणा परिवर्तनीय छे. ते परिवर्तन विशे अत्रे विचारनुं प्राप्त छे. जो के ते पूर्वे 'दर्शन' अंगे केटलाक अन्य मतो उपलब्ध थाय छे ते जोइ लेवा जोईए –

★ ''लिंग- चिह्नने आश्रयीने थतो बोध ते ज्ञान अने लिंगना आश्रयण वगर थतो बोध ते दर्शन.'' आ मत तत्त्वार्थसूत्र-२.९नी सिद्धसेनीय वृत्तिमां अपरमत तरीके निर्दिष्ट छे. आपणने अग्नि देखातो न होय तो पण धूमाडा जेवा लिंगनी मददथी आपणे तेने जाणी शकीअे; परन्तु अग्निने जोइअे त्यारे अे जोवामां लिंगनी कशी जरूर नथी पडती. आम दर्शन माटे लिंगनी जरूर नथी, पण ज्ञान माटे छे - आवी विचारणा आ मतनी जनक लागे छे. अनुमान सिवायनां तमाम ज्ञानो आ रीते 'दर्शन' थइ जतां होवाथी आ मत अयुक्त ठरे छे.

★ ''वर्तमानकालीन वस्तुनो बोध ते दर्शन अने त्रैकालिक वस्तुनो बोध ते ज्ञान.'' आ मत पण तत्त्वार्थसूत्र-२.९नी सिद्धसेनीय वृत्तिमां ज अपरमत तरीके निर्दिष्ट छे. वस्तु वर्तमानमां होय तो ज तेने जोइ शकाय; बाकी वस्तु भूतकालीन के भविष्यत्कालीन होय तो तेने जाणी शकाय, जोइ न शकाय- आवी विचारणा पर आधारित आ मत लागे छे. त्रिकालविषयक अवधिदर्शन अने केवलदर्शन आ व्याख्या मुजब 'ज्ञान' ज गणाइ जतां होवाथी आ मत पण अयुक्त लागे छे.

१. अभिधानराजेन्द्रकोश-४. पृ. २४२८ पर उल्लिखित.

★ ''आत्मानुं अवलोकन ते दर्शन अने बाह्य अर्थनो प्रकाश ते ज्ञान.'' आ मत दार्शनिकने बदले आध्यात्मिक भावना पर आधारित लागे छे. तेथी प्रस्तुत चर्चामां ते उपयोगी नथी. दर्शन और चिन्तन-पृ. ७२ पर जणाव्या मुजब धवलाटीकामां प्रस्तुत मत व्यावर्णित छे.

★ ''व्यंजनपर्यायनुं ग्राहक ते ज्ञान अने अर्थपर्यायनुं ग्राहक ते दर्शन.'' आ मत नन्दीसूत्रनी हारिभद्रीय वृत्ति परना श्रीश्रीचन्द्रसूरिजीना टिप्पणमां अपरमत तरीके उल्लिखित छे. आ मत विशेषावश्यकभाष्यना दर्शन अंगेना विधानना अन्यथाग्रहणथी जन्म्यो लागे छे. कारण के महाभाष्यमां अपाय-धारणाने ज्ञान अने अवग्रह-ईहाने दर्शन गणवामां आव्यां छे. आमां अपायने ज्ञान गणवा पाछळनुं कारण तेनी मलधारीय टीकामां अे देखाडवामां आव्युं छे के अपायथी ज वस्तुना वचनपर्यायनी (-वस्तुना नामनी) खबर पडे छे माटे ते ज्ञान छे.[१] आमां जे वचनपर्याय शब्द छे तेने आ मतना प्रस्थापके व्यंजनपर्यायनो समानार्थी समजी लीधो लागे छे अने तेथी व्यंजनपर्यायनुं ग्राहक ते ज्ञान अने व्यंजनपर्याय सिवायना अर्थपर्यायोनुं ग्राहक ते दर्शन - अेवुं विधान करवा प्रेराया लागे छे. वास्तवमां वचनपर्याय अने व्यंजनपर्याय -अे बे समानार्थी शब्दो नथी, अपाय-धारणामां व्यंजनपर्यायनुं ज ग्रहण थाय, अर्थपर्यायनुं नहीं -अेवो नियम पण नथी, अने दर्शनमां पण महासामान्यनुं ग्रहण होय छे, अर्थपर्यायोनुं नहीं.

★ ''मनुष्यत्व जेवा सामान्यविशेषोनुं ग्रहण ते दर्शन छे अने तेना पण विशेषो स्त्रीत्व-पुरुषत्व व.नुं ग्रहण ते ज्ञान छे.'' आ मत जीवसमास-गाथा ८३मां वर्णित छे. सामान्यनो 'महासामान्य' जेवो शास्त्रीय अर्थ पकडवाने बदले अनुभवने आधारे मनुष्यत्व जेवा सामान्य-विशेषपरक लोकप्रसिद्ध अर्थनुं ग्रहण आ मान्यतानुं निदान होइ शके.

आम मानवामां अेक प्रश्न अवश्य उपस्थित थाय के सामान्यविशेषोना ग्रहण वखते आकार तो रचावानो ज, त्यारे कंइ महासामान्यना ग्रहणनी जेम बोध अनाकार न ज रही शके; तो पछी दर्शन 'अनाकार' कइ रीते गणाशे ? त्यां आ वातनो खुलासो अेम करवामां आव्यो छे के 'अनाकार'मां नञ्

१. ''अपायधृती वचनपर्यायग्राहकत्वाज्ज्ञानमिष्टे'' - वि.भाष्य-५३६ टीका

अभावनो नहीं पण सामान्यत्वनो सूचक छे. जेम लोकव्यवहारमां गर्भ न धरावनारी कन्याने गर्भविशिष्ट उदरना अभावे 'अनुदरा' कहेवामां आवे छे; तेम विशिष्ट आकारना अभावे दर्शन पण 'अनाकार' कहेवाय छे.

लोकप्रकाश-३.१०५१मां प्रस्तुत दर्शनने 'औपचारिक' गणाववामां आव्युं छे. 'अवग्रहमां सामान्यविशेषोनुं ग्रहण होय छे' अेवी तार्किकोनी प्ररूपणा अने 'अवग्रह अे ज दर्शन छे' अेवी आगमिकोनी प्ररूपणाना सम्मीलनरूपमां पण प्रस्तुत मतने समजी शकाय.

★ श्रीवादिदेवसूरिजी, श्रीहेमचन्द्राचार्य व. जैन तार्किकोअे दर्शन अंगे अेक नवो मत रजू कर्यो छे.[१] आ मत मुजब दर्शननुं सामान्यग्रहणात्मक स्वरूप बदलातुं नथी, पण प्रचलित ज्ञानदर्शननी व्यवस्थामां अवग्रह-ईहाने ज दर्शन गणवानी जे वात छे, तेने बदले आ मतमां दर्शनने अवग्रह-ईहा करता स्वतन्त्र स्थान प्राप्त थाय छे.

आ प्रक्रिया मुजब बोध माटे पांच ज्ञानेन्द्रियो अने मननो पोताना विषय साथे सम्बन्ध स्थपावो जरूरी छे. आ सम्बन्ध स्थपावानी साथे ज 'कंइक छे' अेवा आकारनुं दर्शन प्रगटे छे. आ दर्शन ज ज्ञानमात्रानी वृद्धिथी अन्तर्मूहूर्त जेटला कालमां अवग्रहरूपे परिणमे छे. अवग्रहमां 'रूप छे, रस छे' अेवा सामान्यविशेषोनो बोध थाय छे. पछी विशेषविशेषोना बोध माटे ईहा-अपाय रचाय छे.

आ मतमां, अवग्रह विशेषग्राही बनवाथी तेना निराकारपणानी अने दर्शनने स्वतन्त्र स्थान मळवाथी दर्शननुं ज्ञानोत्पत्तिनी प्रक्रियामां स्थान न होवानी आपत्ति रहेती नथी. परन्तु शास्त्रोमां मतिज्ञानना जे २८ भेद गणाव्या होय छे तेमां ४ भेद व्यंजनावग्रहना होय छे; आ ४ भेद प्रस्तुत प्रक्रियामां मळता नथी, कारण के प्रस्तुत प्रक्रिया छअे प्रत्यक्षमां विषय-इन्द्रिय सम्बन्ध स्वीकारे छे; तेथी अे सम्बन्धने भेद तरीके गणीअे तो छ भेद गणवा पडे जे इष्ट नथी.[२]

१. ''अक्षार्थयोगे दर्शनानन्तरमर्थग्रहणमवग्रहः''- प्रमाणमीमांसा-१.१.२६; ''विषयविषयिसन्निपातानन्तरसमुद्भूतसत्तामात्रगोचरदर्शनाज्जातमाद्यग्रहणमवग्रहः''-प्रमाणनयतत्त्व-१.७

२. ६-६ अवग्रह-ईहा-अपाय-धारणा = २४ + ४ बुद्धि (-औत्पातिकी व.)=२८. आ रीते पण २८ भेद गणीने प्रस्तुत असंगतिनुं निराकरण कशेक जोयुं होवानुं स्मरणमां छे.

वळी, आ प्रक्रिया मुजब व्यंजनावग्रहस्थानीय विषय-इन्द्रिय सम्बन्ध अने अवग्रह वच्चे दर्शनने मूकवुं पडे छे के जे 'व्यंजनावग्रहना अन्तिम समये अर्थावग्रह होय'.[१] आ शास्त्रीय नियमथी विरुद्ध छे.[२]

दर्शन अंगे आ सिवाय बीजी प्ररूपणाओ पण उपलब्ध थइ शके. पण आ प्ररूपणाओ अपूर्ण छे ते सहज समजी शकाय अेवुं छे. अेमनी आ अपूर्णतानुं मुख्य कारण छे आगमिक मूळ दार्शनिक विभावनानी अनभिज्ञता अथवा आगमिक दर्शन अंगेना विधानोनुं अन्यथा अर्थघटन. आगमिक मूळ दर्शनव्यवस्थामां बीजुं बधुं तो प्रचलित व्यवस्था प्रमाणे ज हतुं, पण मुख्य तफावत हतो दर्शनना स्वरूप अने स्थाननो.

* * *

आगमिकयुगमां दर्शन शब्द 'साक्षात्कार'ना सन्दर्भमां प्रयोजातो हतो. आ अर्थ दर्शन शब्दना प्रचलित अर्थ 'जोवुं' पर आधारित छे. आपणे 'जोवुं' क्रियापद जे सन्दर्भे प्रयोजीअे छीअे ते सन्दर्भने ध्यानथी तपासीशुं तो जणाशे के अे क्रियामां बे बाबत अनिवार्यपणे होय छे : १. वस्तुनी आपणी सामे साक्षात् उपस्थिति २. सामे उपस्थित घणी बधी वस्तुओनो सामान्यपणे अस्पष्ट बोध. मतलब के जोती वखते आपणी दृष्टि अेक विशाळ फलक पर पथराती होय छे, अे विशाळ फलकमां आवेली घणीबधी वस्तुओनुं प्रतिबिम्ब आपणी आंखमां झीलातुं होय छे अने अे प्रतिबिम्बमां समाती तमाम वस्तुओनो अेकसरखो अस्पष्ट बोध आपणने थया करतो होय छे. जे बोधने वर्णववो ज होय तो 'कंइक छे' अे रूपे वर्णवी शकाय. आ अस्पष्ट बोधमां कोई चोक्कस वस्तु विषयभूत नथी होती अने अेने लीधे बोधमां विशिष्ट आकार पण नथी रचातो, बोध निराकार ज रहे छे. मतिज्ञानशक्तिनो चक्षु द्वारा थतो घटादि पदार्थोने विषय बनावनारो आवो निराकार उपयोग ज 'चक्षुदर्शन' कहेवाय छे.

अनुभवथी ज जणाशे के बोधनी आ सामान्यग्राहकता बहु ज अल्प

---

१. ''व्यञ्जनावग्रहान्त्यक्षणेऽर्थावग्रहोत्पत्तेरेव भणनात्'' - ज्ञानबिन्दु

२. तार्किकोनी आ प्ररूपणाने शब्दशः न पकडीअे, पण तेना आशयने समजवा प्रयत्न करीअे तो आ प्ररूपणा ज सौथी वधु चोक्साई भरेली शास्त्रीय व्यवस्था सुधी पहोंचाडे छे. ते माटे जुओ पृ. १६६

समय माटे टके छे. अल्पकालीनता तो घणीवार अेटली बधी होय छे के आपणने निराकार स्थितिनो ख्याल पण नथी आवतो. शास्त्रोमां आ ज कारणथी निराकार स्थितिने अव्यक्त कहेवामां आवी छे.[१] निराकार स्थितिनी आ अल्पकालीनता आत्मानी प्रबल ग्रहणशक्तिने आभारी छे. कोई पण वस्तुनो यथासम्भव वधु ने वधु स्पष्ट बोध करवो आत्मानो सहज स्वभाव छे. आ स्वभाववश अे बहु ज झडपथी निराकारबोधनी विषयभूत घणी बधी वस्तुओमांथी कोईकने अपेक्षाकृत प्राधान्य आपी तेना विशेषबोध माटेनी प्रक्रिया आरम्भी दे छे. आ प्रक्रियाना आरम्भनी साथे ज बोध सविषयक- चोक्कस विषय धरावतो बनी जाय छे. अने वस्तुनो अल्प मात्रामां विशेष बोध पण थयो होवाथी बोधनो अर्थने अनुरूप आकार रचाइ जाय छे, अर्थात् बोध साकार बने छे. विशेषबोधनी आ प्रक्रिया जेम जेम आगळ वधती जाय, तेम तेम वधु ने वधु स्पष्ट आकार रचातो जाय छे. आ तमाम साकार अवस्थाओमां जो के चोक्कस वस्तुनुं जोवानुं चालु पण होइ शके छे; तो पण जाणवानी मुख्यता होवाथी आ साकार अवस्थाओ 'ज्ञान' ज गणाय छे. मतिज्ञानशक्तिनो चक्षु द्वारा थतो आ साकार उपयोग ज 'चाक्षुष मतिज्ञान' कहेवाय छे.

उपर जे चक्षु अने घणी बधी वस्तुओना सन्दर्भे निराकार-साकार स्थिति वर्णवी, ते चक्षु अने अेक ज वस्तुना घणा बधा पर्यायोने अंगे पण समजी शकाय.

साकार-निराकार अवस्थानी परावृत्ति स्वभावथी ज अन्तर्मुहूर्ते अन्तर्मुहूर्ते थया करे छे, कारण के एक ज स्थाने अन्तर्मुहूर्तथी वधु समय अवधान टकतुं ज नथी.[२]

आगमिक व्यवस्थामां ज्ञान पूर्वे दर्शन कई रीते अनिवार्य बने छे ते तत्त्वार्थ. २.९नी सिद्धसेनीय वृत्तिना आधारे समजीअे. आ व्यवस्था मुजब पदार्थनो पोताना पर्यायो साथेनो विशिष्ट (specific) निर्देश ज आकार गणाय छे. आ आकार वस्तुने जोवानी प्रथम क्षणे ज नथी रचातो ते अनुभवसिद्ध छे. प्रथम क्षणथी मांडीने अमुक समय सुधी तो घणी बधी वस्तुओ के घणा

१. ''छद्मस्थानामनाकाराद्धाऽल्पत्वादेवाऽव्यक्ता'' - तत्त्वार्थ. सिद्ध.टी. - २.९

२. न चाऽन्तर्मुहूर्तादुपर्येकत्राऽवधानमस्ति वस्तुनि, प्रत्यक्षमेतत्, अनाकाराद्धा साकाराद्धा द्वयपरावृत्तिश्च प्राणिनां स्वभावादुपजायमाना स्वसंवेद्या च - तत्त्वार्थ. सिद्ध.टी. - २.९

बधा पर्यायोनो 'कंइक छे' अेवो अव्यक्त बोध थया करे छे. जेम चारे तरफथी ढंकायेली पालखीमां बेठेली व्यक्तिने बहार कंइक छे अेवो ख्याल आवे छे, पण शुं हशे तेनो ख्याल नथी आवतो; अथवा तो जेम ते ज दिवसना जन्मेला बाळकने वस्तुने जोवा छतां ते शुं हशे तेनो ख्याल नथी आवतो; तेम आ अवस्थामां पण बोध अव्यक्त ज रहे छे पण पहेलेथी ज स्पष्ट बोध नथी थतो. (जेम समय जोवा माटे घडियाळ सामे जोइअे तो पहेलां तो घडियाळ, तेना आंकडा, तेना कांटा, घडियाळ जे दिवाल पर लगाडेली होय ते दिवाल व. अेकसाथे सामान्यपणे देखाय छे अने थोडीवार पछी समयनो ख्याल आवे छे.) आम स्पष्ट बोध थतां पहेलां अस्पष्ट बोधात्मक अवस्था अनिवार्यपणे सर्जाय छे. अने माटे स्पष्टबोधात्मक ज्ञान पूर्वे अस्पष्टबोधात्मक दर्शन अनिवार्य बने छे.

जे फक्त जोयुं होय तेनी स्पष्ट स्मृति लगभग नथी थती, पण जे जोवा साथे जाण्युं पण होय तेनी स्पष्ट स्मृति थइ शके छे. भगवानना दर्शन करीने आव्या पछी 'मूर्तिने माथे मुगट हतो के नहीं ?' अेवुं कोई पूछे तो आपणने कोईक वार जवाब नथी आवडतो; कारण के आपणे मूर्ति सामे जोयुं हतुं, पण ध्यानथी नहीं. आ ध्यानथी जोवुं अे ज साकार अवस्था– ज्ञान. अने ध्यान वगर जोवुं अे ज निराकार अवस्था– दर्शन. दर्शनने आ रीते पण (स्मृतिना अजनकत्वने लीधे) अव्यक्त गणी शकाय.

आ ज रीते मनथी थतो द्रव्य–पर्यायनो साक्षात्कार मानसदर्शन कहेवाय छे. दर्शन शब्दना मूळ अर्थ 'जोवुं'नो आ अर्थविस्तार छे. मानसदर्शन शास्त्रोमां 'अचक्षुर्दर्शन' गणाय छे.[१] चक्षुथी जोवुं ते चक्षुर्दर्शन अने चक्षु वगर जोवुं ते अ–चक्षुर्दर्शन अेवो अत्रे भाव छे.

अन्य ४ ज्ञानेन्द्रियो– श्रोत्र, घ्राण, रसना अने त्वचामां पण अवश्य निराकार स्थिति सर्जाती ज होय छे, जेम के श्रोत्रमां अेक साथे घणी बधी जातना अवाजना पुद्गलो अथडाता ज होय छे अने ते वखते ते तमाम पुद्गलोनो अस्पष्ट बोध थया ज करतो होय छे; परन्तु आ निराकार अवस्था 'दर्शन' नथी गणाती, कारण के तेमां वस्तुनी आपणे सामी उपस्थिति नथी

---

१. अचक्षुर्दर्शनमित्यत्र नञः पर्युदासार्थकत्वादचक्षुर्दर्शनपदेन मानसदर्शनमेव ग्राह्यम्, अप्राप्य-कारित्वेन मनस एव चक्षुःसदृशत्वात् – ज्ञानबिन्दु ।

होती, मतलब के तेमां वस्तुओ जणाय छे खरी, पण तेमनो साक्षात्कार नथी थतो. तेथी आ ४ इन्द्रियो द्वारा थतो निराकार बोध ज्ञाननो ज भेद गणाय छे अने 'व्यंजनावग्रह' तरीके ओळखाय छे. व्यंजन- अर्थ(-विषय) तरीके नहीं स्थापित थयेला पुद्गलोनो अवग्रह- अस्पष्ट बोध -अेवो अत्रे भाव छे. स्वभावथी ज व्यंजनावग्रहमां दर्शन करतां वधु अव्यक्तता होय छे.

वांचीने के सांभळीने, तेना पर विचारणा करीने, थतुं ज्ञान 'श्रुतज्ञान' गणाय छे. आ श्रुतज्ञानमां वस्तुओ 'जणाय' छे, पण 'देखाती' नथी. मतलब के अेमनो बोध थाय छे, पण साक्षात्कार नथी थतो. तेथी ज श्रुतज्ञानशक्तिना ज्ञानात्मक ज उपयोग होय छे, दर्शनात्मक नहीं. अे ज रीते मनःपर्यवज्ञानना विषयभूत पदार्थो- बीजाना मनना विचारो जाणी शकाय छे, जोइ शकाता नथी. तेथी मनःपर्यवज्ञानशक्तिनुं पण दर्शन नथी होतुं.

अवधिज्ञानथी विषयभूत पदार्थो जाणी पण शकाय छे अने जोइ पण शकाय छे, तेथी अवधिज्ञानशक्तिना साकार-निराकार बन्ने उपयोग संभवे छे. साकार उपयोग 'अवधिज्ञान' के 'विभङ्गज्ञान' अने निराकार उपयोग 'अवधिदर्शन' कहेवाय छे.

केवलज्ञानी भगवन्त तो केवलज्ञानशक्तिना बळे तमाम द्रव्य-पर्यायोने जुअे पण छे अने जाणे पण छे. तेमनुं आ जोवुं 'केवलदर्शन' अने जाणवुं 'केवलज्ञान' कहेवाय छे.

अेक वात खास नोंधपात्र छे के शास्त्रोमां दर्शनने सामान्यग्रहणात्मक कह्युं छे.[१] तेनो अर्थ अे ज छे के तेमां घणी बधी वस्तुओ के पर्यायो सामान्यपणे (मतलब के समुदितरूपे, पोतपोतानी स्वतन्त्र ओळखाण साथे नहीं) देखाता होय छे. आ सामान्यग्रहणने वस्तुना सामान्य अंशना ग्रहणरूप समजी शकाय; पण तेथी कंइ 'वस्तुना सामान्य अंशनुं ग्रहण ते दर्शन' अेवी व्याख्या बांधी शकाय नहीं, कारण के दर्शन मूलतः निराकार पश्यत्ता (-जोवुं) साथे जोडायेलुं छे.[२] आ पश्यत्तामां थतुं सामान्यग्रहण वस्तुनी जेम तेना विशेषोने अंगे

१. ''जं सामन्नग्गहणं तं दंसणं'' - नन्दीचूर्णि.

२. ''जह पासइ तह पासउ, पासइ जेणेह दंसणं तं से'' - विशेषणवति । ''येन सामान्यावगमाकारेणाऽर्हन् पश्यति तद् दर्शनमिति ज्ञातव्यम्'' - नन्दी. मलय. टीका

पण होइ शके छे.[१] टूंकमां, वस्तुओनुं के विशेषोनुं स्वरूपतः भान ते 'ज्ञान' के जे वस्तुना साक्षात्कारवाळुं पण होय अने वगरनुं पण होय; अने वस्तुओनुं के विशेषोनुं सामान्यतः भान ते 'दर्शन' के जे अवश्य साक्षात्कारात्मक ज होय छे.

'दर्शन' शब्द मूलतः 'पश्यत्ता' साथे ज संकळायेलो हतो, 'सामान्यांशना ग्रहण' साथे नहीं, तेना घणां प्रमाणो नोंधी शकाय. जेम के–

★ ''छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से परमाणुपोग्गलं जाणइ न पासइ, उदाहु न जाणइ न पासइ ? गोयमा ! अत्थेगइए जाणइ न पासइ, अत्थेगइए न जाणइ न पासइ ।'' टीका – ''इह छद्मस्थो निरतिशयो गृह्यते । तत्र श्रुतज्ञानी उपयुक्तः श्रुतज्ञानेन परमाणुं जानाति, **न तु पश्यति दर्शनाभावाद्**, अपरस्तु न जानाति न पश्यति ।'' (भगवतीजी, १८ शतक, ८ उद्देश)

★ ''से किं तं दंसणगुणप्पमाणे ?....'' (पृष्ठ १५१) दर्शनने पश्यत्ता साथे जोडीअे तो ज तेनुं आटलुं विशाळ विषयक्षेत्र सम्भवे छे.

★ ''अट्ठविहे दंसणे पण्णत्ते । तं जहा– सम्मद्दंसणे, मिच्छदंसणे, सम्मामिच्छदंसणे, चक्खुदंसणे, अचक्खुदंसणे, ओहिदंसणे, केवलदंसणे, सुविणदंसणे ।'' – स्थानांगसूत्र ।

आमां अचक्षुर्दर्शनथी स्वप्नदर्शनने अलग गण्युं छे. सामान्यांशनुं ग्रहण ज जो दर्शन होत, तो स्वप्नना सामान्यग्रहणमां अेवी कई विशेषता होय के जेथी अेने अलग गणवुं पडे ? दर्शननो अर्थ 'जोवुं' लइअे तो ज आ पृथक्करणनो खुलासो थइ शके के अचक्षुर्दर्शनमां देखाता पदार्थो वास्तविक होय छे, ज्यारे स्वप्नदर्शनमां काल्पनिक पदार्थोनो आभास होय छे.[२]

★ ''द्रव्यत आभिनिबोधिकज्ञानी... धर्मास्तिकायादीनि जानाति, न

---

१. ''जं एत्थ णिव्विसेसं, गहो विसेसाण दंसणं होति'' – धर्मसङ्ग्रहणी – १३६४

२. टीकाकार भगवन्त सामान्यांशना ग्रहणने ज दर्शन गणता होवाथी, अचक्षुर्दर्शन अने तेना ज पेटाभेदरूप स्वप्नदर्शनने अलग गणवानुं कारण जाग्रदवस्था अने सुप्तावस्थारूप उपाधि जणावे छे. पण प्रश्न अे छे के स्वरूपथी ज जो भेद पकडातो होय तो शा माटे उपाधिने भेदक बनाववी ? वळी, सुप्तावस्थामां पण स्वप्नदर्शन सिवाय अन्य रीते पण अचक्षुर्दर्शन प्रवर्ते ज छे, तो सुप्तावस्था भेदक उपाधि बने ज कई रीते ?

पश्यति सर्वात्मना धर्मास्तिकायादीन्, शब्दादींस्तु योग्यदेशावस्थितान् पश्यत्यपि ।'' (नन्दीसूत्रना ''दव्वओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वदव्वाइं जाणइ न पासइ'' अे अंशनी हारिभद्रीय टीका) नन्दीसूत्रनी टीकाओमां श्रुतज्ञानना निरूपण वखते 'पासइ' शब्द सामे, श्रुतज्ञानमां दर्शन न होवाथी प्रश्न उठाववामां आवे छे, त्यारे अे स्पष्ट छे के 'पासइ' दर्शन साथे सम्बन्धित छे. हवे आ दर्शन 'सामान्यांशग्रहणात्मक' अभिप्रेत छे के 'पश्यत्तात्मक', तेनो खुलाओ उपरनी टीकाथी थइ जाय छे. मतिज्ञानीने आदेशथी (-सामान्यपणे) पण धर्मास्तिकायने जाणवा माटे, तेना सामान्य अंशनुं ग्रहण आवश्यक छे ज, तेने जोवुं आवश्यक नथी. माटे दर्शननो अर्थ 'जोवुं' ने बदले जो 'सामान्यांशग्रहण' अभिप्रेत होत तो 'जाणइ पासइ' ज कहेवुं पडत. दर्शननो अर्थ 'जोवुं' लइअे तो ज 'जाणइ न पासइ' कही शकाय.

★ सिद्धसेन दिवाकरजीनी वेधक दृष्टि शब्दोने पेले पार जई मूल वस्तुस्वरूपने जोइ शके छे ते सर्वप्रसिद्ध छे. तेओअे आपेली दर्शननी ओळख-

''नाणमपुट्ठे अविसए अ, अत्थम्मि दंसणं होइ ।
मोत्तूण लिंगओ जं, अणागयाईयविसएसु ॥'' सन्मति० २.२५

उपर आपणे जोयुं तेम दर्शन साक्षात्कारात्मक होय छे; तेथी विचारणात्मक ज्ञानो- अनुमान, तर्क, प्रत्यभिज्ञान व. दर्शन नथी. वळी, घ्राणादि ४ इन्द्रियोथी पदार्थ जाणी शकाय छे, जोई शकातो नथी; तेथी आ चार इन्द्रियोथी जन्य ज्ञान पण दर्शन नथी. उपरान्त, चक्षु अने मनमां पण अवग्रहादि तो विशेषज्ञानात्मक होय छे; तेथी ते पण दर्शन नथी. आम, चक्षु अने मनथी थतुं निराकार ईक्षण ज 'दर्शन' कहेवाय छे. दिवाकरजीअे आपेली दर्शननी व्याख्या पण आ बे ज स्थळे दर्शनत्वनुं प्रतिपादन करे छे.

अनुमान द्वारा लिंगनी सहायथी अतीत-अनागत वस्तुने जाणी शकाय छे. दिवाकरजीनी मान्यता प्रमाणे आवुं ज्ञान दर्शन नथी. तेओ 'मोत्तूण...'' आ वाक्यथी उपरनी वात सूचवे छे. उपा. यशोविजयजीअे जणाव्या मुजब अत्रे उपलक्षणथी, स्मृति सिवायनां तमाम परोक्ष ज्ञानो दर्शन नथी गणातां तेम

समजवानुं छे.[१] स्पष्टतः प्रत्यक्ष मतिज्ञानने ज दर्शन गणवानुं आना परथी फलित थाय छे.

प्रत्यक्ष मतिज्ञानमां पण घ्राण, रसना, त्वचा अने श्रोत्र –आ ४ इन्द्रियथी जन्य ज्ञान 'दर्शन' न गणाइ जाय ते सूचववा दिवाकरजी 'अर्थ अस्पृष्ट होवो जोइअे' अेवी शरत मूके छे. आ चार इन्द्रियोनो विषयभूत पदार्थ तो स्पृष्ट ज होय छे, तेथी ते इन्द्रियजन्य ज्ञाननुं पण निराकरण थइ जाय छे.

रही वात चाक्षुष अने मानस प्रत्यक्षनी. आ बे प्रत्यक्षोने 'दर्शन' ज समजवाना छे ? ना, बे प्रत्यक्षमां पण अर्थ ज्यां सुधी विषय नथी बनतो, मतलब के चोक्कस अर्थनी विषय तरीके स्थापना नथी थती, त्यां सुधी ज बोध अनुक्रमे 'चक्षुर्दर्शन' अने 'अचक्षुर्दर्शन' गणाय छे. इन्द्रिय–अर्थ वच्चे ग्राहक–ग्राह्य भाव स्थपाइ जाय, मतलब के अर्थावग्रह थाय अेटले बोध अनुक्रमे 'चाक्षुष मतिज्ञान' अने 'मानस मतिज्ञान' ज गणाय छे, दर्शन नथी गणातो. आ ज वात आ गाथामां 'अर्थ अविषयभूत होवो जोइअे' अे शरत मूकीने सूचवाइ छे.[२]

आम, सिद्धसेन दिवाकरजीनी दर्शनविषयक प्ररूपणा, आगमिक दर्शननी विभावनानुं ज व्यवस्थित निर्वचन छे. अने तेना परथी अे ज समजवानुं छे के दर्शननो मूल अर्थ 'साक्षात्कार' ज छे, 'सामान्यांशनुं ग्रहण' नहीं.

'पश्यत्ता'ना सन्दर्भमां व्यावर्णित दर्शननो पेटाभेद अवधिदर्शन,

---

१. ''इदमुपलक्षणं भावनाजन्यज्ञानातिरिक्त–परोक्षज्ञानमात्रस्य, तस्याऽस्पृष्टाविषयार्थस्याऽपि दर्शनत्वेनाऽव्यवहारात्'' – ज्ञानबिन्दु

२. टीकाकारो अत्रे 'अविसए' नो अर्थ 'इन्द्रियोना अविषयभूत परमाणु व.' करे छे. आवो अर्थ करवामां, परमाणु व. ने विशे प्रवर्ततुं तमाम मानसज्ञान 'अचक्षुर्दर्शन' बने छे. जे स्पष्टतः स्खलना छे. वळी, चक्षुर्दर्शननी व्याख्यामां आ अर्थ लागु पण पडतो नथी. उपरान्त जे पदार्थो मानससाक्षात्कारना विषय बने छे, ते तमाम इन्द्रियोना अविषयभूत ज होय ते जरूरी नथी. 'अविसए'नो अर्थ 'बोधथी ग्राह्य छतां पण चोक्कस विषय तरीके स्थापित नहीं' अेवो करीअे तो ज बराबर संगति थाय छे. विशेषणवति–२२२मां ज्ञानने 'सविषयक' तरीके ओळखाव्युं छे ते पण दर्शनना आवा अविषयकत्वनुं ज सूचक छे. ''जेसिमणिट्ठं दंसणमण्णं णाणा हि जिणवरिंदस्स । तेसिं न पासइ जिणो, सविसयणिययं जओ णाणं ॥''

अवधिज्ञान पूर्वेनी निराकार अवस्था छे, तो केवलदर्शन, केवलज्ञाननी सहवर्ती के परवर्ती निराकार स्थिति छे; पण चक्षुर्दर्शन अने अचक्षुर्दर्शनने मतिज्ञानना उत्पत्तिक्रममां क्यां गोठववां ते प्रश्न छे. सन्मतिटीकाकार अभयदेवसूरिजीनां वचनो आ बाबतमां बहु प्रमाणभूत लागे छे.

''अप्राप्यकारी चक्षु अने मनथी उद्भवता अवग्रहादि मतिज्ञान पूर्वेनी, अस्पृष्ट अने अवभासी ग्राह्यने ग्रहण करनारी, आत्मानी प्रारम्भिक बोधात्मक अवस्था ज अनुक्रमे 'चक्षुर्दर्शन' अने 'अचक्षुर्दर्शन' तरीके ओळखाय छे.'' (सन्मति-२.३०-टीका)

आनो अर्थ अे थयो के चक्षुर्दर्शन अने अचक्षुर्दर्शन अनुक्रमे चाक्षुष अने मानस प्रत्यक्षमां व्यंजनावग्रहना स्थाने गोठवाय छे, मतलब के जे स्थान घ्राणजादि प्रत्यक्षमां व्यंजनावग्रहनुं छे, ते स्थान चाक्षुष अने मानस प्रत्यक्षमां चक्षुर्दर्शन अने अचक्षुर्दर्शननुं छे. पूर्वे प्रचलित व्यवस्था परत्वे दर्शावेली समस्या नं. ९नुं समाधान आनाथी सरस रीते थइ जाय छे.

परन्तु उपा. श्रीयशोविजयजी ज्ञानबिन्दुमां जणावे छे के टीकाकारनुं आ कथन सिद्धसेन दिवाकरना आशयने अनुरूप नथी. तेओ खूब ज कडक शब्दोमां टीकाकारनां वचनोनुं खण्डन करतां जणावे छे के - ''टीकाकारनुं कथन अर्धजरतीय न्यायने अनुसरे छे. कारण के, 'छद्मस्थ जीवने ज्ञानोपयोग पूर्वे दर्शनोपयोग होय' आवी प्राचीन व्यवस्था पर ज जो निर्भर रहेवुं होय तो चाक्षुष अने मानस प्रत्यक्षमां ज ज्ञान पूर्वे दर्शननो अभ्युपगम शा माटे ? श्रावण व. प्रत्यक्षमां केम नहीं ? हवे जो श्रावण व. प्रत्यक्षमां पण अवग्रह पहेलां दर्शन स्वीकारशो, तो त्यां दर्शन संभवशे क्यारे ? व्यंजनावग्रहथी पूर्वे तो कोई ज्ञानमात्रा ज नथी होती, तेथी तेनी पूर्वे तो दर्शन मानी ज न शकाय. व्यंजनावग्रहथी पछी पण न मानी शकाय, कारण के शास्त्रोमां व्यंजनावग्रहनी अन्तिम क्षणे अर्थावग्रहनी ज उत्पत्ति कही छे के जे ज्ञान छे. आम, श्रावणादि ४ प्रत्यक्षमां ज्ञानोपयोग पूर्वे दर्शनोपयोग मानी शकातो नथी; अने तेथी चाक्षुष-मानसमां पण तेनी कल्पना करवी वाजबी नथी. वास्तवमां सिद्धसेन दिवाकरजीना नव्य मतमां दर्शन कदापि ज्ञानथी भिन्नकालीन होतुं ज नथी, बल्के ज्ञान-दर्शन वच्चे अभेद ज छे.''

उपाध्याय भगवन्ते करेली आ समग्र चर्चा वस्तुतः सिद्धसेन दिवाकरजीना अने अभयदेवसूरिजीना दर्शन अंगेना विचारोना अन्यथाग्रहणने आभारी छे. पहेली वात तो अे के प्राचीन मूल नियम 'ज्ञान पूर्वे दर्शन होय' अे नहोतो, पण 'साकारोपयोग पूर्वे अनाकारोपयोग होय' अेवो हतो.[१] आ अनाकारोपयोग जेम चाक्षुष अने मानसमां दर्शनरूप होय छे, तेम घ्राणजादि चारमां व्यंजनावग्रहरूप होय छे. हवे, आ चार स्थळे जो व्यंजनावग्रहरूप अनाकारवस्था पहेलेथी ज स्वीकृत छे, तो शा माटे त्यां अलगथी दर्शननी कल्पना करवी पडे ? 'व्यंजनावग्रह ज्यां नथी होतो, त्यां निराकार अवस्थानुं शुं ?' साचो प्रश्न तो आ छे अने अेनुं समाधान टीकाकारनां प्रस्तुत वचनोमां छे.

प्रश्न अे रहे छे के 'ज्ञान पूर्वे तेना कारणरूप दर्शन होय' आवो नियम पण घणे ठेकाणे जोवा मळे छे, तो ते सम्बन्धे शुं समजवुं ? आनुं समाधान अे ज छे के 'दर्शन' अने 'व्यंजनावग्रह' तरीके ओळखाती निराकार अवस्थाओ वच्चे वास्तवमां झाझो तफावत नथी. दर्शनमां ग्राह्य वस्तु साथे संयोग नथी होतो, फक्त तेनो साक्षात्कार होय छे, ज्यारे व्यंजनावग्रहमां ग्राह्य वस्तुनो साक्षात्कार नहीं, पण सीधो संयोग ज होय छे. आटलो ज फेर छे. बाकी सामान्यग्रहण, विषयनो अनिश्चय, संस्कारनुं अजनकत्व व. बन्नेमां सरखुं ज छे. आ कारणे व्यंजनावग्रहमां 'दर्शन' शब्दनो उपचार थइ शके छे. अने अे रीते व्यंजनावग्रह औपचारिक दर्शन बन्या पछी, छअे प्रत्यक्षमां अर्थावग्रहात्मक ज्ञान पूर्वे दर्शन गोठवाइ जवाथी 'ज्ञान पूर्वे दर्शन होय ज' अेवो नियम बनावी शकाय छे. निराकार व्यंजनावग्रह ज्ञाननो ज भेद होवा छतां 'ज्ञान साकार ज होय छे' अने अचक्षुर्दर्शन अेटले मानसदर्शन ज होवा छतां 'अचक्षुर्दर्शन अेटले घ्राणादि ४ इन्द्रियो अने मनथी थतो निराकार बोध' आवी प्ररूपणाओ व्यंजनावग्रहने औपचारिक दर्शन गण्या पछीनी छे. व्यंजनावग्रहने पहेलेथी ज 'दर्शन' अेटले नथी गणवामां आवतो के व्यंजनावग्रह, दर्शनना मूल अर्थ 'पश्यत्ता(–जोवुं)'नी अन्तर्गत नथी आवतो, ज्ञानना अर्थ 'जाणवुं'नी अन्तर्गत आवे छे. पण, जो 'पश्यत्ता' ने बहु व्यापक दृष्टिअे जोइअे तो अे व्यंजनावग्रहने पण पोतानामां समावी ले छे अने त्यारे अे 'दर्शन' गणाय छे.

---

१. पृष्ठ १५६, टि. २

बीजुं, उपाध्यायजी जणावे छे तेम नव्यमतमां ज्ञान-दर्शननो अभेद छे ज नहीं. ज्ञान-दर्शनमां जे भेद आगमिक साहित्यमां निरूपायो छे, तेने ज दिवाकरजीओ वधु स्पष्ट करी आव्यो छे. प्रस्तुत गाथागत 'नाणं....दंसणं होइ' आवा विधान परथी सिद्धसेन दिवाकरजीना मतमां ज्ञानदर्शननो अभेद समजी लेवामां आवे छे, पण ते बराबर नथी. 'नाण' शब्द अत्रे 'बोध' अर्थमां ज छे, अने बोधविशेष ज दर्शन छे अेवो आ विधाननो भाव छे. आ बोधविशेष कयो ते आपणे पहेलां आ गाथाना विवरणमां जोइ गया छीअे. वळी, सिद्धसेन भगवन्ते ज छाद्मस्थिक ज्ञान-दर्शननो भेद स्पष्टपणे ''मणपज्जवणाणंतो णाणस्स दरिसणस्स य विसेसो'' (सन्मति-२.३)मां प्ररूप्यो छे. टूंकमां, उपाध्यायजी भगवन्ते करेलुं टीकाकारनुं खण्डन वाजबी लागतुं नथी.

हवे आपणे अर्थावग्रहने अंगे थोडोक विचार करीशुं. दर्शन अने व्यंजनावग्रहमां बोधमात्रा स्वीकृत छे ज. आ बोध 'कंइक छे' अेवा अस्पष्ट आभासवाळो अने अव्यक्त होय छे. आ बन्ने पछीनो ज्ञानतबक्को 'अर्थावग्रह' गणाय छे. आ अर्थावग्रह व्यंजनावग्रहस्थानीय दर्शन अने व्यंजनावग्रह करतां वधु विकसित ज्ञानमात्रा धरावतो होय छे अे सर्वसम्मत छे, पण आ विकसित ज्ञानमात्रा केटली ते चर्चानो विषय छे. आगमिको अर्थावग्रहने पण महासामान्यनो ज ग्राहक गणे छे,[१] ज्यारे तार्किको 'रूप छे, रस छे' जेवा प्राथमिक विशेषोनुं ग्रहण अर्थावग्रहमां स्वीकारे छे.[२] आमां प्रथम प्ररूपणामां त्रण असंगति आवे छे : १. महासामान्यनुं ग्रहण निराकारोपयोगमां ज थाय, ज्यारे अर्थावग्रह तो साकार गणाय छे. २. 'कंइक छे' अे बोधने अर्थावग्रहनो विषय गणीअे तो अेनाथी निकृष्ट ज्ञानमात्रा ज नथी संभवती के जेने व्यंजनावग्रह के दर्शनना विषय तरीके गोठवी शकाय. ३. नन्दीसूत्रगत ''तेणे 'आ शब्द छे' अेवो अवग्रह कर्यो'' आवी प्ररूपणाओथी जुदा पडवानुं थाय छे. तार्किकोनी 'शब्द छे' अेवी सामान्यविशेषनी ग्रहणात्मक साकार अवस्थाने अवग्रह गणवानी मान्यतामां आ असंगतिओ नथी रहेती.

---

१. ''इय सामण्णग्गहणाणंतरमीहा'' - वि. भाष्य - २८९, अने पृ. १४९, टि. १

२. प्रमाणमीमांसा - १.१.२७ टीका, प्रमाणनयतत्त्वालोक - १.७, तत्त्वार्थराजवार्त्तिक - १.१५

तार्किकोनी वात बीजी रीते पण स्वीकार्य छे. अर्थावग्रहमां चोक्कस पदार्थनी 'अर्थ- विषय' तरीके स्थापना थाय छे अने तेनो अल्प बोध थाय छे - अे तो सर्वप्रसिद्ध छे. पण ध्यानपात्र वात अे पण छे के तेमां ग्राहक इन्द्रिय पण नक्की थाय छे. जेम के अेक साथे आंख सामे वस्तु होय, जीभ पर कोईक वानगी मूकेली होय, नाकमां कशीक गन्ध प्रवेशती होय, कानमां अवाज़ अथडातो होय अने शरीर साथे कशाकनो स्पर्श थतो होय तेम बने. आ बधी निराकार अवस्थाओ छे. तेमांथी अत्यारे कई इन्द्रियना विषयग्रहणने प्राधान्य आपवुं छे ते अर्थावग्रहमां नक्की थाय छे. हवे अेक वात नक्की छे के चक्षुथी ग्राह्य रूप ज होय अने श्रोत्रथी ग्राह्य शब्द ज होय. तेथी अर्थावग्रहमां इन्द्रियना निश्चय साथे विषयनो 'रूप छे, शब्द छे व.' निश्चय पण थइ ज जाय छे. अने आ निश्चय इन्द्रियथी थतो सामान्यमां सामान्य निश्चय होवाथी सामान्यग्रहण ज गणाय छे. पछी 'आ रूप कोनुं हशे ? आ शब्द कयो हशे ?' आवी विचारणा (-ईहा) प्रवर्ते छे अने बोधप्रक्रिया आगळ वधे छे. नन्दीसूत्रमां आ ज वात प्ररूपाइ छे : ''अव्वत्तं सद्दं सुणेज्जा'' - अव्यक्तशब्द श्रवण - 'व्यंजनावग्रह' □ ''तेणं सद्देत्ति उग्गहिए'' - 'शब्द छे' अेवुं ग्रहण - 'अर्थावग्रह' □ ''न उण जाणइ के वेस सद्दे त्ति, तओ से ईहं पविसइ'' - 'ईहा'. आम तार्किकोनी प्ररूपणा वधु सुदृढ छे.

अेक प्रश्न हजु ऊभो रहे छे के जो अर्थावग्रह अने ईहा साकार मतिज्ञानोपयोगना ज भेद छे, तो अेमने घणे ठेकाणे[१] अनाकार दर्शनोपयोगना भेद तरीके शा माटे ओळखाववामां आव्या हशे ? आनुं समाधान अेम सूझे छे के दार्शनिकक्षेत्रमां 'साकार' शब्द जे ओछामां ओछी व्यक्तितानी अपेक्षा राखे छे, तेटली व्यक्तता पण अर्थावग्रह-ईहामां होती नथी. जैनेतर दर्शनो 'आ मनुष्य छे' अेवा बोधने ज साकार गणे छे, जे अर्थावग्रह-ईहा पछीनी ज अवस्था छे. बनी शके के आ कारणथी ज अर्थावग्रह-ईहाने निराकार 'दर्शन' गणवामां आव्या होय. पण अे भूलवुं न जोइअे के वास्तवमां ज्ञानना भेदोने आ रीते दर्शन गणवा ते औपचारिक कथन ज छे. तत्त्वार्थ-सिद्धसेनीयवृत्तिमां मुख्य अने

१. ''पासइ त्ति पश्यति अवग्रहेहापेक्षयाऽवबुध्यते, अवग्रहेहयोर्दर्शनत्वात्'' - अभयदेवसूरिजी-भगवतीटीका

औपचारिक दर्शनो वच्चेनो भेद बहु स्पष्ट रीते देखाडवामां आव्यो छे- ''औपचारिकनयश्च ज्ञानप्रकारमेव दर्शनमिच्छति, शुद्धनयः पुनरनाकारमेव सङ्गिरते दर्शनम्'' (२.९) - औपचारिक नयथी ज्ञानना भेदो ज दर्शन छे, ज्यारे शुद्धनय अनाकार अवस्थाने ज दर्शन गणे छे.

विषय अने इन्द्रियना जोडाणथी उद्भवती निराकार अवस्थाओना व्यंजनावग्रह अने दर्शन अेवा भेद न पाडीअे, पण तमाम निराकार अवस्थाओने दर्शन ज गणीअे, तो 'छ अे छ प्रत्यक्षमां विषय-इन्द्रिय सम्बन्ध स्थपाया पछी अने अवग्रहथी पूर्वे दर्शन होय छे' अेवी तार्किक प्ररूपणा (पृ. १५४) साथे पण प्रस्तुत व्यवस्था बराबर संगत थई जाय छे. अने मतिज्ञानना २८ भेद, ४ दर्शन, व्यंजनावग्रहनो अन्तिम समय अे ज अर्थावग्रह व. तमाम आगमिक प्ररूपणाओ पण प्रस्तुत व्यवस्थामां बन्धबेसती आवे छे. पहेलां प्रचलित ज्ञान-दर्शननी व्यवस्था परत्वे वर्णवी तेमांनी कोई समस्या पण प्रस्तुत व्यवस्थामां आवती नथी ते खास ध्यानार्ह छे.

* * *

प्रस्तुत समग्र चर्चानो निष्कर्ष अे ज छे के १. 'दर्शन सामान्यग्रहणात्मक होय छे' अेनो मतलब अे नथी के दर्शनमां वस्तुना सामान्य अंशनुं ज ग्रहण होय छे, पण अे छे के दर्शनमां- साक्षात्कारमां अेकसाथे घणी बधी वस्तुओ अने विशेषोनो सामान्यतः अेकसरखो बोध थाय छे. मतलब के दर्शन शब्द 'जोवुं, साक्षात्कार करवो' साथे संकळायेलो छे, 'सामान्यअंशना ग्रहण' साथे नहीं. दर्शननी ओळखाण आपता 'सामान्यग्रहण' शब्दना अन्यथा अर्थग्रहणथी दर्शननुं स्वरूप बदलाइ जवा पाम्युं छे. २. चक्षुर्दर्शन अने अचक्षुर्दर्शन अनुक्रमे चाक्षुष अने मानस प्रत्यक्षमां व्यंजनावग्रहना स्थाने गोठवाय छे. ज्यारे अवधिदर्शन, अवधिज्ञान पूर्वेनी निराकारस्थिति छे. केवलज्ञानी भगवन्तने थतो तमाम द्रव्य-पर्यायोनो साक्षात्कार ज केवलदर्शन छे.[१] ३. 'ज्ञानथी पूर्वे दर्शन होय ज छे'

१. ''चक्षुर्ज्ञानात् पूर्वं, प्रकाशरूपेण विषयसन्दर्शि ।
यच्चैतन्यं प्रसरति, तच्चक्षुर्दर्शनं नाम ॥
शेषेन्द्रियावबोधात्, पूर्वं तद्विषयदर्शि यज्ज्योतिः ।
निर्गच्छति तदचक्षु-र्दर्शनसंज्ञं स्वचैतन्यम् ॥

आवो नियम अने 'घ्राणादि ४ इन्द्रियोथी थतो सामान्य बोध ते पण अचक्षुर्दर्शन' आवी प्ररूपणा निराकार दर्शनथी तुल्य व्यंजनावग्रहने औपचारिक दर्शन गणीने समजवानी छे.

* * *

हवे आपणे प्रस्तुत ज्ञान-दर्शननी चर्चा साथे ज संकळायेला केटलाक अन्य प्रश्नो पर थोडो विचार करीओ :

★ अचक्षुर्दर्शननुं विषयक्षेत्र शुं ?

अनुयोगद्वारमां आ माटे पाठ छे : ''अचक्खुदंसणं अचक्खुदंसणस्स आयभावे ।'' आमां अचक्षुर्दर्शनना विषयभूत पदार्थो तरीके आत्मभावोने जणाव्या छे. स्पष्ट छे के अचक्षुर्दर्शनथी अत्रे 'मानसदर्शन'ने ज पकडवानुं छे के जेना द्वारा आत्मानो, तेनी लागणीओनो, तेना विचारोनो अने तेवा ज बीजा आत्मिकभावोनो साक्षात्कार करी शकाय छे.

टीकाकार अत्रे अचक्षुर्दर्शनथी घ्राण, श्रोत्र, रसना, त्वचा अने मनथी थता सामान्यबोधने पकडे छे अने तेथी 'आयभावे'नो अर्थ करे छे शब्दात्मक, गन्धात्मक व. पुद्गलो के जे उपरोक्त सामान्यबोधना विषय छे. 'घ्राणादि ४ इन्द्रियोमां पुद्गलो संयुक्त थया पछी ज बोध थइ शके छे अने संयुक्त पुद्गलो 'आत्मभूत' गणाय अने तेथी आवा आत्मभूत पुद्गलो - आत्मभावो अचक्षुर्दर्शननो विषय छे' अेवुं तेओनुं मन्तव्य जणाय छे. आमां घणी क्लिष्ट कल्पना करवी पडे छे.

तत्त्वार्थसूत्रना गन्धहस्तिमहाभाष्यमां (२.९) इन्द्रिय-निरपेक्ष बोध के जेने अत्यारे आपणे Sixth Sense तरीके ओळखीअे छीअे तेने पण अचक्षुर्दर्शन

अवधिज्ञानात् पूर्वं, रूपिपदार्थावभासि यज्ज्योतिः ।
प्रविनिर्याति स्वस्मा-न्नामाऽवधिदर्शनं तत् स्यात् ॥
केवलदर्शनबोधौ, समस्तवस्तुप्रकाशिनौ युगपत् ।
दिनकृत्प्रकाशतापव-दावरणाभावतो नित्यम् ॥''

आराधनासारना आ श्लोको अत्रे दर्शननी जे व्यवस्था वर्णवी तेनी साथे पूर्णतः संवादी छे.

गणाववामां आव्यो छे.[१] त्यां दृष्टान्त साथे आ वात समजाववामां आवी छे के आपणी पाछळथी साप चाल्यो जतो होय तो अचानक आपणने भयनी आशंका थाय छे अने आपणे त्यांथी खसी जइअे छीअे. आ सापना अस्तित्वने कोई इन्द्रियथी तो जाणी शकाय तेम हतुं ज नहीं. आपणे मानसिक व्यापारथी ज अे बोध कर्यो छे, माटे अे अ-चक्षुर्दर्शन ज छे. प्रचलित ज्ञान-दर्शननी व्यवस्थामां Sixth Senseनो विचार कदाच आ एक ज ठेकाणे हशे.

★ ''दव्वओ णं सुयनाणी उवउत्तो सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ'' (नन्दीसूत्र)-आमां श्रुतज्ञानमां दर्शन न होवा छतां 'पासइ' केम कह्युं ?

सौ प्रथम तो 'पासइ' अत्रे पश्यत्ता साथे सम्बन्धित छे. आ पश्यत्ताने 'अचक्षुर्दर्शन' रूप समजवी अेवो अेक मत छे के जेनुं खण्डन वि.भाष्य-५५४मां करवामां आव्युं छे. सैद्धान्तिक मत प्रमाणे अत्रे 'श्रुतज्ञान-साकारपश्यत्ता' समजवी जोइअे अेवुं स्पष्टीकरण वि.भाष्य-५५५मां करवामां आव्युं छे.

पन्नवणाजी-पद ३०मां वर्णित आ निराकार-साकार पश्यत्ता शुं छे ते समजवानो प्रयत्न करीअे. कुल १२ उपयोगमांथी मतिज्ञान, मत्यज्ञान अने अचक्षुर्दर्शन -अे त्रण उपयोगनी पश्यत्ता होती नथी अने बाकीना नव उपयोगमां पश्यत्ता होय छे. आम 'उपयोग' शब्द बोधमात्र माटे वपराय छे, ज्यारे 'पश्यत्ता' शब्द अे ज उपयोग माटे नियत छे के जे उपयोगमां अे उपयोगनी विषयभूत वस्तुनो साक्षात्कार- पुरतः उपस्थिति साथेनुं अवलोकन संकळायेलुं होय छे. आ रीते उपयोग अने पश्यत्ता समानकालीन होय छे अने उपयोगनी साकारता-निराकारताने अनुलक्षीने पश्यत्ता पण साकार-निराकार गणाय छे. मतिज्ञान के मत्यज्ञानमां महदंशे वस्तुनो साक्षात्कार होतो नथी, तेथी अे बे जग्याअे आंशिक पश्यत्ता होवा छतां समग्र मतिज्ञान के मत्यज्ञानने अनुलक्षीने पश्यत्तानो निषेध छे. अे ज रीते अचक्षुर्दर्शनमां पण आत्मिक भावोना साक्षात्कार वखते तेमनी पुरतः उपस्थिति नथी होती, मतलब के ते भावोने अपेक्षीने 'पश्यत्ता' नथी प्रवर्तती, तेथी अचक्षुर्दर्शनने अनुलक्षीने पण

---

१. ''इन्द्रियनिरपेक्षमेव तत् कस्यचिद् भवेद् यतः पृष्ठत उपसर्पन्तं सर्पं बुद्ध्यैवेन्द्रियव्यापार-निरपेक्षं पश्यतीति ॥''

पश्यत्तानो निषेध छे.

श्रुतज्ञानथी आपणे जे पदार्थने जेवा स्वरूपे जाणीअे तेवा स्वरूपे तेने काल्पनिक रीते मननी सामे उपस्थित पण करी शकीअे. आ साक्षात्कार श्रुतज्ञानना बळे थाय छे, माटे ते वखते श्रुतज्ञानोपयोग पण प्रवर्तमान ज होय छे. वळी आ साक्षात्कार निश्चित वस्तु-विषयने अनुलक्षीने थाय छे, तेथी ते साकार होय छे. आ साक्षात्कार ज श्रुतज्ञानसाकारपश्यत्ता तरीके ओळखाय छे. 'श्रुतज्ञानी भगवन्त अनुत्तरविमानने यथार्थ स्वरूपे चीतरी शके छे. जो अनुत्तर विमानने तेओअे जोयुं ज ना होय तो तेओ तेने चीतरी कई रीते शके ? माटे मानवुं ज जोइअे के तेओ श्रुतज्ञानना बळे अनुत्तरविमानने जोइ शके छे अने तेमनुं आ जोवुं श्रुतज्ञानसाकारपश्यत्ताना बळे ज शक्य छे' अेवो तर्क प्रस्तुत सन्दर्भे हारिभद्रीय टीकामां अपायो छे.

अे ज रीते अवधिज्ञानी के केवलज्ञानी महात्मा ज्यारे ज्ञानना बळे ते ते पदार्थने जाणे छे त्यारे ते ते पदार्थनो साक्षात्कार पण प्रवर्ततो ज होय छे. आ साक्षात्कार ज ते ते ज्ञाननी साकार-पश्यत्ता कहेवाय छे. दर्शनो तो स्वयं निराकार-पश्यत्तारूप ज होय छे.

★ विभङ्गज्ञानीने अवधिदर्शन केम न होय ?

आम तो विभङ्गज्ञान अे अवधिज्ञाननो ज प्रकार छे अने ते साकार होवाथी तेनाथी पूर्वे अवधिदर्शनात्मक निराकारोपयोग मानवो ज पडे. छतां वृद्धसम्प्रदाय विभङ्गज्ञानीना निराकारोपयोगने पण, चक्षुर्दर्शन गणवाना पक्षमां ज छे.[१] आनुं कारण अे होइ शके के चक्षुर्दर्शन अने अवधिदर्शनमां अेक पायानो तफावत छे. चक्षुर्दर्शनमां स्वयं उपस्थित वस्तुनो ज साक्षात्कार होय छे, ज्यारे अवधिदर्शनमां वस्तु ज्ञानशक्तिना बळे उपस्थित थती होय छे. हवे मिथ्यात्वी जीवनी ज्ञानशक्ति तो मलिन ज होवाथी अने तेथी तेना बळे उपस्थित वस्तु पण अयथार्थ ज होवानी. तेथी आवी अयथार्थ वस्तुनो साक्षात्कार अवधिदर्शन न गणाय अेवी समज़ण आवा वृद्धसम्प्रदाय पाछळ होइ शके. प्रश्न अे छे

---

१. अवधिदर्शनं तु सम्यग्दृष्टेरेव, न मिथ्यादृष्टेः, चक्षुर्दर्शनमेव किल तस्येति पारमर्षी श्रुतिः - तत्त्वार्थ-गन्धहस्ति० २.९

के अयथार्थ तो अयथार्थ, वस्तु साक्षात्कार तो छे ने ? तेने क्यां समावको ? वृद्धसम्प्रदाय आ विभङ्गदर्शनने चक्षुर्दर्शन ज गणे छे, तो वि. भाष्य-८१८ मां उल्लिखित मत प्रमाणे विभङ्गदर्शन अवधिदर्शननो ज अेक प्रकार छे. भगवतीजीमां तो मिथ्यात्वीने पण साक्षात् अवधिदर्शन ज प्रतिपादित करवामां आव्युं छे.[१]

★ मनःपर्यवज्ञानमां दर्शन न होवा छतां, नन्दीसूत्रगत मनःपर्यवना निरूपणमां ''तत्थ दव्वओ णं उज्जुमती अणंते अणंतपदेसिए खंधे जाणति पासति'' अे वाक्यखण्डमां 'पासति' केम कह्युं ?

नन्दीसूत्रना टीकाकारो आनो खुलासो आम आपे छे : ''मनःपर्यवज्ञानी, संज्ञी जीवे मन पणे परिणमावेला अनन्ता अनन्तप्रदेशोवाळा स्कन्धोने अने तद्गत वर्णादि भावोने साक्षात् जोइ शके छे, तेथी 'जाणति' कह्युं छे. चिन्तित अर्थ जो के साक्षात् जोइ शकातो नथी, कारण के चिन्तित अर्थ तो अमूर्त पण होय अने छद्मस्थ जीव तो अमूर्तने जोइ शके नहीं. तेथी अनुमानथी ज चिन्तित अर्थने जुअे छे तेम जणाववा 'पासति' कह्युं छे.''[२]

हवे आ 'पासति' कया दर्शनात्मक होइ शके ते विशे विविध मत छे. अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन के मनःपर्यवदर्शनथी, आ अनुमानित चिन्तितार्थनो साक्षात्कार स्वीकारता मतोनो निरास वि. भाष्य-८१५ थी ८२१मां जोवा मळे छे. वि.भाष्यकार पोते आ साक्षात्कारने 'मनःपर्यवज्ञान-साकारपश्यत्ता' गणे छे.

आमां चिन्तित अर्थ अनुमानथी जणाय छे अे टीकाकारोनी वात अने आ अनुमित अर्थनो साक्षात्कार मनःपर्यवज्ञाननी साकार-पश्यत्ताना बळे थाय छे अे भाष्यकारनी वात चोक्कस बराबर छे; परन्तु समस्या अे छे के श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान के केवलज्ञानना निरूपणमां जेम 'जाणति'नो विषयभूत पदार्थ ज 'पासति' नो विषय समजवामां आवे छे, तेम अत्रे अनन्त मनःस्कन्धो के जे

---

१. ''ओहिदंसणअणागारोवउत्ता णं भंते ! किं नाणी अन्नाणी ? गोयमा नाणी वि अन्नाणी वि..जे अन्नाणी ते नियमा मइअन्नाणी सुयअन्नाणी विभङ्गनाणी त्ति'' - षडशीति-गाथा २१- टीकामां उद्धृत

२. ''मणितमत्थं पुण पच्चक्खं ण पेक्खति, जेण मणालंबणं मुत्तममुत्तं वा, सो य छउमत्थो तं अणुमाणतो पेक्खति त्ति अतो पासणता भणिता'' - नन्दीचूर्णि

'जाणति'ना विषयभूत छे, तेनी साथे ज 'पासति'ने केम सांकळवामां नथी आवतुं ? अर्थात् 'मनःस्कन्धोने जाणे छे' अेम 'मनःस्कन्धोने जुअे छे' अेवो अर्थ केम नथी करवामां आवतो ? 'बाह्य अर्थ'नो उल्लेख करनारो कोई ज शब्द मूलसूत्रमां न होवा छतां 'पासति'ना व्याख्यान वखते अेनुं ग्रहण कई रीते वाजबी गणाय ? वास्तवमां आवो अर्थ करवो उचित लागे छे : ''मनः-पर्यवज्ञानी मनपणे परिणत अनन्त स्कन्धोने सामान्यथी जुअे छे अने विशेषथी तद्गत वर्णादि भावोने जाणे छे.''

वस्तुतः मनःपर्यवथी ग्राह्य, मनोवर्गणाना स्कन्धोमां रहेली विशिष्ट छापो छे के जे चोक्कस विचारने लीधे अेमां अंकित थयेली होय छे. अवधिज्ञानी अवधिदर्शनना बळे मनःस्कन्धोने जोइ शके छे अने अवधिज्ञानना बळे तेने विशेषपणे जाणी पण शके छे. छतांय वस्तुना सर्व पर्यायोने अवधिज्ञान नथी पकडी शकतुं अे तेनी मर्यादा छे अने आ मर्यादाने लीधे मनःस्कन्धगत अे विशिष्टताओने पण अवधिज्ञान नथी पकडी शकतुं के जेनाथी अे विशिष्टता जेने लीधे आवी छे ते विचारोने जाणी शकाय.[१] मनः-पर्यवज्ञान आ विशिष्टताओने जाणी शके छे अने अेना बळे अनुमान करीने बीजाना मनना विचारोने अने अे विचारोना विषयभूत पदार्थोने जाणी शके छे. आ पदार्थोनुं ज्ञान थाय अेटले आ ज्ञानना आधारे तेमनो पण मानसिक साक्षात्कार करी शकाय छे. आ साक्षात्कार मनःपर्यवज्ञानना आलम्बने थयो होवाथी मनःपर्यवसाकारपश्यत्ता तरीके ओळखाय छे. सम्पूर्ण प्रक्रिया आम थशे : मनः स्कन्धोनुं सामान्यतः दर्शन (अवधिदर्शन) ▯ चोक्कस मनःस्कन्धोगत वैशिष्ट्यनुं ग्रहण (मनःपर्यवज्ञान) ▯ वैशिष्ट्यना आधारे विचारो अने तेना विषयभूत पदार्थोनुं अनुमान ▯ अनुमित अर्थोनो मानसिक साक्षात्कार (मनः-पर्यवज्ञान-साकारपश्यत्ता).

आमां मनःपर्यवज्ञाननी पूर्वे अवधिदर्शन अेटले मानवुं पडे छे के छद्मस्थजीवमात्र माटे ज्ञानोपयोग पूर्वे दर्शनोपयोग अनिवार्य छे, मनःपर्यवज्ञानी

१. जो के निर्मलतम अवधिज्ञानथी आंशिक रीते मनःस्कन्धोगत विशिष्टताओ पण जाणी शकाय छे. जेम के अनुत्तरविमानवासी देवो केवली भगवन्तोना मनः परिणामने जाणी शकता होय छे.

अेमां अपवादभूत नथी. अेटले मन:पर्यवज्ञानना उपयोग समये सौप्रथम मन:स्कन्धो ज सामान्यपणे देखाय छे (-अवधिदर्शन) अने त्यारबाद चोक्कस मन:स्कन्धोनुं विशेषथी ज्ञान थाय छे (-मन:पर्यवज्ञान). आम मन:स्कन्धविषयक ज्ञान अने दर्शन बन्ने प्रवर्ते छे अने ते ज वात 'खंधे जाणइ पासइ' कहीने सूचवाइ होय एवुं लागे छे.

हवे अहीं अेक महत्त्वनी समस्या सर्जाइ शके तेम छे के जो मन:-पर्यवज्ञान पूर्वे अवधिदर्शन अनिवार्य होय तो भगवतीजी-आशीविषोद्देशकमां मन:पर्यवज्ञानीने अवधिदर्शन न पण होय अेम शा माटे कह्युं छे ?

आनुं समाधान अेम जणाय छे के प्रस्तुत कथन अेवा मन:पर्यवज्ञानीने अनुलक्षीने छे के जेमने मति-श्रुत पछी अवधिज्ञानने बदले सीधुं ज मन:पर्यव प्राप्त थयुं होय. आवा महात्माने अवधिज्ञानावरणनो क्षयोपशम न होवाथी अवधिदर्शन पण नथी होतुं. पण अेनो अर्थ अे नथी के तेओने मन:स्कन्धो सामान्यरूपे न देखाय. मन:पर्यवज्ञानथी मन:स्कन्धोने विशेषरूपे जाणतां पहेलां तेमनुं सामान्यदर्शन अनिवार्य छे, अने आ सामान्यदर्शन अवधिदर्शनना अभावमां तेवी विशिष्ट कोटिना अचक्षुर्दर्शनथी सम्पन्न थाय छे तेम मानवुं पडे. अेक वात तो नक्की छे के मन:पर्यवज्ञाननी प्राप्ति माटे विशिष्ट लब्धिओथी सम्पन्न होवुं अनिवार्य छे अने आवी विशिष्ट लब्धिओ धरावता महात्मानां मति-श्रुत ज्ञान तेम ज चक्षु-अचक्षु दर्शन पण विशिष्ट कोटिनां ज होय छे. तेथी ते महात्मा तेवा विशिष्ट कोटिना अचक्षुर्दर्शनना बळे मन:स्कन्धोने पण जोइ ज शके. जो के उपलब्ध कथासाहित्यमां अेवो अेक पण दाखलो नथी मळतो के जेमां अवधिज्ञान वगर मन:पर्यव प्राप्त थयुं होय. तेथी अेम जणाय छे के आवी परिस्थिति भाग्ये ज सर्जाती हशे अने तेथी व्यापकताने अनुलक्षीने मन:-पर्यवज्ञानीने अवधिदर्शनोपयोग अनिवार्य गणवामां आवतो हशे. निष्कर्ष अे ज छे के मन:पर्यवज्ञानीने पण मन:स्कन्धोनुं सामान्यदर्शन अनिवार्य छे. पछी अे दर्शन अवधिदर्शनना बळे थाय के श्रुतकेवली जेम विशिष्ट श्रुतज्ञानना बळे सर्व वस्तुने जाणी शके छे तेम विशिष्ट अचक्षुर्दर्शनना बळे थाय.

दर्शन अंगेनी आ समग्र चर्चा शास्त्रोना सहारे ज थइ होवा छतां महदंशे

मानसिक विचारणात्मक छे अने तेथी ज आमां त्रुटिओ होवानी पूरेपूरी सम्भावना छे. आ त्रुटिओ तरफ ध्यान दोरनार अभ्यासीनो हुं अवश्य ऋणी रहीश. आमा पूर्व महर्षिओना आशयथी कोईक विपरीत प्ररूपणा थई होय के तेओनां वचनोनुं अन्यथा अर्थघटन थयुं होय तो ते बदल मिच्छामि दुक्कडं.

* * *

विहंगावलोकन

– उपा. भुवनचन्द्र

अनु० ५५मां आ. शीलचन्द्रसूरि द्वारा सम्पादित सातेक कृतिओ प्रकाशन पामी छे. प्रत्येक कृति तेनी रचनानी दृष्टिए अथवा तेना विषयनी दृष्टिए ध्यानार्ह छे. श्रमणोनी सर्जकता केवी फलद्रूप हती अने तेमनो विद्याव्यासङ्ग केवा अवनवा रूपे सर्जकतामां परिणमतो हतो ए वात आ अंकनी कृतिओनुं वैविध्य जोतां स्पष्ट थाय छे. विद्वानोने अने विद्यार्थी वर्गने रुचिकर थाय एवी आ सामग्री छे.

नन्दीश्वर स्तोत्रनी २४मी गाथामां 'पुणो वि(?)' छे त्यां 'वि' लहियानी भूलथी आव्यो जणाय छे.

पेथडशाहे निर्मित करेलां चैत्योनी सूचि धरावतुं स्तोत्र एक महत्त्वनी उपलब्धि छे. यातायातनी विषमताना ए युगमां पण पेथडशाहनो व्यवहार अडधा भारतमां विस्तरेलो हतो – एवुं आ सूचि कही जाय छे. एक रिसर्च पेपर तैयार थाय एटलुं काम आ स्तोत्रमां छे. सूचिमां निर्दिष्ट नगरनामो परथी हालनां नामो शोधवा माटे खासो परिश्रम करवो पडे. ते ते नगरोना इतिहास अने त्यांनां मन्दिरोना इतिहास तपासवानी जरूर छे.

श्लो. १५मां बीजा चरणमां केटलाक अक्षरो वधु छे. आ शब्दो कोई विद्वाने टिप्पण तरीके नोंध्या हशे जे पाछळथी लहियाना हाथे मूळ श्लोकमां दाखल थई गया हशे एवुं लागे छे. 'जिन' तथा 'श्री नाभि' ए शब्दो काढी नांखता श्लोकनो पाठ बराबर मळी रहे छे.

'पार्श्वनाथसहस्रनामस्तोत्र' तथा 'शीलोदाहृतिकल्पवल्ली' – आ बन्ने रचनाओ विस्तृत अने नोंधपात्र छे. शीलो०ना २०मा श्लोकमां 'रवेर्धर्माः' छपायुं छे त्यां 'रवेर्घर्माः' जोइए. श्लो.२१मां 'स किल वनहुताशात्' एम वांचवाथी अर्थ बेसी जाय छे. श्लो. ३०मां 'उग्रव्याघ्राः' होवुं जोइए.

'भोजनविच्छित्ति'मां पृ. ५४ (नीचेथी सातमी पंक्ति) 'तिम जानइं' छे, त्यां 'तिमजा नइं' एम वांचवुं. पृ. ५५ (उपरथी तेरमी पंक्ति) 'पड सुधीनी'

छे, त्यां 'पडसुधीनी' एम भेगुं वांचवुं जोइए. पृ. ५७ (प्रथम पंक्ति) – 'तुरत गलइं ।' अहीं वाक्य पूरुं थतुं नथी. 'तुरत गलइ उत्तरइं' (तरत गळे ऊतरे) एवुं वाक्य छे.

मुनिश्री त्रैलोक्यमण्डनविजयजीनी अभ्यासनोंधो अभ्यासपूर्ण छे. श्री नान्दी जेवा विद्वाने हेमचन्द्राचार्यनी कृति – 'काव्यानुशासन'मां अपूर्णता होवानो दावो कर्यो छे, परन्तु वस्तुतः तेवुं नथी – आ वात मुनिश्रीए पर्याप्त चर्चा-विश्लेषण करीने स्पष्ट कर्युं छे. मुनिश्रीनो आ प्रयास तेमना खंतीला परिशीलननी नीपज छे. एवी ज रीते, सन्मतितर्कनी एक गाथाना तात्पर्य विशे तेमणे करेली विचारणा तेनी गम्भीरता थकी उत्कृष्ट कक्षानी बनी छे.

श्री मणिभाई प्रजापतिनो सूचिपत्रविषयक अभ्यासलेख हस्तलिखित ग्रन्थसंग्रहोना सूचिपत्रोना इतिहास, पद्धति अने आवश्यकता विशे सुन्दर माहिती पूरी पाडी जाय छे. आजे प्रकाशित थतां सूचिपत्रो अंगे श्री प्रजापति नोंधे छे : ''आ सूचिपत्रो अने १९४७ पूर्वेना सूचिपत्रो वच्चे मुख्य तफावत ए जोवा मळे छे के केटलाक अपवादो बाद करतां विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनानो अभाव तथा महत्त्वनी हस्तप्रतो के अप्रकाशित कृतिओ विशे क्वचित् ज उल्लेखो जोवा मळे छे.'' आ विधान भारतना बृहद् विद्याजगतने जेटलुं लागू पडे छे, एटलुं ज जैन वर्तुळोने पण लागू पडे छे. अभ्यास अने संशोधन – बन्ने विषयोमां छीछरापणुं आव्युं छे. संशोधन पूर्वे संलग्न विषयोनो अभ्यास जोईए अने अभ्यास पछी वर्षो सुधी परिशीलन करवुं पडे. संशोधन-सम्पादननी एक मान्य रीत अने परिपाटी होय छे जेनी सूझ-समज प्रशिष्ट सम्पादकोना सम्पादित ग्रन्थोना परिशीलनथी अने एवा सम्पादकोना हाथ नीचे काम करवाथी केळवाय छे. आजना संशोधक-सम्पादको पासे एटली धीरज नथी. आपणे इच्छीए के श्रमणवर्गमां आ शिस्त आवे अने विद्या प्रत्ये समर्पितता प्रगटे.

जैन देरासर
नानी खाखर-३७०४३५
जि. कच्छ, गुजरात

नवां प्रकाशनो

१. शब्दप्रभेदः, कर्ता **:** महेश्वरकवि, टीकाकार **:** उपाध्याय ज्ञानविमल-गणि; सं. आ. श्रीचन्द्रसूरि, श्री विनयसागर; प्रका. रान्देर रोड जैन संघ, सूरत; ई. २०१०, सं. २०६७

अजैन विद्वानोनी रचनाओ पर टीका के विवरण लखवां अने ते रीते ग्रन्थोनी उपयोगिता तथा उपादेयता वधारवी, ए जैन विद्वान् मुनिओनो मनगमतो विषय रह्यो छे. कालिदास, भारवि, माघ जेवा महाकविओनां रचेल काव्यो, नाटको, मम्मट अने भोजना रचेला साहित्यशास्त्रो - आ बधांनुं अध्ययन सेंकडो वर्षोथी जैन मुनिओ करतां आव्या छे, अने प्रसंगे प्रसंगे ते ग्रन्थो पर टीकानी रचना पण करतां आव्या छे.

१२मा शतकमां थयेला, प्रकाण्ड विद्वान् कवि महेश्वरे 'शब्दप्रभेद' नामे शब्दकोषग्रन्थ-पद्यबद्ध रच्यो छे. कवि पोतानी कृतिने 'शब्दभेदप्रकाश' तरीके ओळखावे छे. काव्यरचना करनार कविओने, समानता धरावता शब्दोमां पण मात्राकृत, वर्णकृत के अर्थकृत भिन्नता होय तेनो परिचय मळी रहे तेवा हेतुसर आ कोषनी रचना थई छे. कोष ४ प्रकरणोमां वहेंचायो छे. अहीं प्रत्येक प्रकरणने 'निर्देश' एवुं नाम आपवामां आव्युं छे.

आ लघु कोष उपर उपाध्याय श्रीज्ञानविमलगणीए ३७०० श्लोक प्रमाण विस्तृत टीका रची छे, जे कोष अने तद्गत शब्दोनी व्युत्पत्ति समजवा माटे एकदम उपयुक्त साधन बनी रहे तेम छे.

सम्पादकोए कोष, कोषकार तथा टीकाकारनो विस्तृत परिचय करावती विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना लखी छे, तेमज अनेक अनेक परिशिष्टो आपीने ग्रन्थनी उपादेयता खूब वधारी आपी छे. सम्पादननो एक मजानो आदर्श तेमणे पूरो पाड्यो छे. आजकाल आपणे त्यां सम्पादनो तथा प्रकाशनोनुं प्रमाण बहु वध्युं छे, परन्तु तेमां जे प्रकारनुं काम थवुं जोईए ते थतुं-देखातुं नथी. एवे वखते प्रस्तुत कोष-प्रकाशन एक सरस आदर्श प्रस्थापी आपे छे. प्रस्तावना, परिशिष्टो, पादटीपो - आ बधुं तो प्राचीन ग्रन्थोने समजवानी चावी छे. ते न होय तेवां प्रकाशनो खास उपादेय नथी थतां.

३२ परिशिष्टो उपरांत एक परिशिष्टमां मूळ 'शब्दप्रभेद'नो पाठ जो आप्यो होत तो ते वधु उपयुक्त थात.

२. प्रबोधचिन्तामणिः; कर्ता **:** आ० जयशेखरसूरि; सं. मुनि हितवर्धनविजय; प्र० कुसुम-अमृत ट्रस्ट-वापी; सं. २०६७

जैन धर्म प्रसारक सभा-भावनगर द्वारा सं. १९६९ मां प्रकाशित ग्रन्थनुं पुनर्मुद्रण. उपमितिभवप्रपञ्चाकथानी पद्धतिथी रचायेलो पद्यबद्ध आ ग्रन्थ औपदेशिक ग्रन्थ छे.

सम्पादकजीए प्रस्तावनामां मूळ ग्रन्थकारनी तेमज प्रतिओ लखनार लेखकोनी अमुक भूलो पोते शोधी काढीने सुधारी होवानो दावो कर्यो छे. पोतानी जातने पण्डित अने श्रेष्ठ समजनारी व्यक्ति जे डहापण डहोळे ते केवुं होय तेनो आमां नादर नमूनो आपणने प्राप्त थाय छे.

अंचलगच्छना प्रथम पुरुष श्रीआर्यरक्षितसूरि छे. ते गच्छ पोताना ते प्रथम गच्छपतिने युगप्रधान माने छे. परन्तु पूर्वधर आर्यरक्षित महाराज ते आ गच्छना आदिपुरुष होवानो दावो ते गच्छे कदापि क्यांये कर्यो नथी. आटलुं सादुं सत्य समज्या विना ज सम्पादके आ विषये ते गच्छनी अजुगती टीका करीने पोतानुं अनावश्यक ज्ञान(!) प्रदर्शित कर्युं छे. सम्पादके पोतानी प्रस्तावनामां टिप्पणोनी जे सूचि आपी छे, तेमां ग्रन्थकारनी क्षतिओ सुधारवानो उद्यम तेमणे कर्यो छे. ते तमाम स्थानो जोईए तो एमां ग्रन्थकारनी एक पण क्षति के भूल छे ज नहि; सम्पादकनुं तद्विषयक अज्ञान ज तेमने ते ते स्थानने भूल मानवा प्रेरे छे. हा, एक-बे स्थाने भूल लागे, पण ते लहिया थकी थयेली भूल होवानुं स्पष्ट समजी शकाय तेम छे. लहियानी भूलने ग्रन्थकारनी भूल समजवामां आपणी सम्पादन-अयोग्यता ज पुरवार थई जाय छे. एक ज दाखलो जुओ **:** पृ. २१२, श्लोक ३७५. आमां **'सना'** शब्द कर्ताए प्रयोज्यो छे. **'सना'** ए नित्य (सदा) अर्थनो अव्यय छे ए तो सर्वविदित छे. पण पण्डितमानी सम्पादकने कोशविषयक जाणकारी मेळववी जरूरी नहि लागी होय, एटले तेमने त्यां टिप्पणी करी दीधी के ''अत्र **'सदा' इति शुद्धीकार्यम् ।**''

ग्रन्थकार एक आचार्य छे, गच्छपति छे. तेमने आ हदे अज्ञ मानीने

आवी अणघड नोंधो लखवी, एमां पूर्वाचार्यनी आशातना तो थाय ज, साथे पोताना अछाजता अभिनिवेशनुं पण वरवुं प्रदर्शन थतुं होय छे.

सम्पादके दर्शावेली तमाम पादटीपो 'अयोग्य' होवानुं, व्याकरणने तथा छन्द अने कोषने जाणनार कोई पण विद्यार्थी/अभ्यासी साबित करी आपी शके तेम छे. अस्तु.

'हेमचन्द्राचार्यट्रस्ट'ना आदि प्रेरक पूज्य आ. श्री विजयसूर्योदयसूरीश्वरजी महाराजने अंजली

अनुसन्धाननो आ ५६मो अंक पूज्यपाद गुरुभगवन्त आचार्य श्रीविजयसूर्योदयसूरीश्वरजी महाराजनी पुण्यस्मृतिने समर्पित छे.

'अनुसन्धान' अने तेनुं प्रकाशन करनारी संस्था (हेमचन्द्राचार्य ट्रस्ट) ए बन्ने वस्तुतः ते पूज्य आचार्यश्रीनी ज कृपानां परिणाम छे, ए वात आ तके भूल्या विना याद करवी जोईए.

वि.सं. २०४५मां श्रीहेमचन्द्राचार्यनी नवमी शताब्दीनी उजवणीनो अवसर आववानो हतो, त्यारे तेमणे आगोतरी विचारणा करी, अने आयोजनो माटे संकल्प कर्यो. परिणामे हेमचन्द्राचार्य ट्रस्टनी एवी रीते रचना थई के ते २०४५मां तो कार्यरत पण थई गयुं. आ ट्रस्ट चोक्कस वर्तुळ तेमज विचारसरणिमां बंधाई जई सीमित-संकुचित न बने, पण तेनुं फलक विशाल होवुं जोईए, एवी विभावनाने एमणे उदार हृदये स्वीकृति आपेली, अने ट्रस्टना उद्देशोनुं फलक व्यापक बनाववानी वातने आशीर्वाद आपेला. तेने लीधे ज आ ट्रस्ट धर्म-सम्प्रदाय के ज्ञाति-जातिना भेदभावोथी अलिप्त रहीने अनेकविध, दाखलारूप विद्या-प्रवृत्तिओ करी शक्युं छे. ट्रस्टना उपक्रमे चालती विविध मूल्यवान प्रवृत्तिओ परत्वे तेओश्रीने सन्तोष तो हतो ज, पण ते बधांमां तेओनो सक्रिय, प्रेरणात्मक तेमज मार्गदर्शनात्मक फाळो पण हमेशां रहेतो.

छेल्ले छेल्ले, गया वर्षना चातुर्मास दरमियान, ट्रस्टना आश्रये 'हेम-समारोह' योजायो, अने ते प्रसंगे त्रण विद्वान् साक्षरोने चन्द्रक पण आपवामां आव्यो, ते बधो कार्यक्रम तेओनी निश्रामां ज थयो हतो. ए प्रसंगथी तेओ खूब प्रसन्न हता.

अनुसन्धाननो नवो अंक आवे एटले तेनी पहेली प्रत तेओना हाथमां पहोंचाडवामां आवती. ते जोईने खूब सन्तोष अनुभवता. तेमणे स्थापेल संस्थाना आश्रये थती आवी ज्ञान-प्रवृत्ति हमेशां तेमने प्रसन्नकर ज बनी छे.

आवा उपकारी, मार्गदर्शक अने प्रेरक गुरुभगवन्त आपणी वच्चेथी कायम माटे चाल्या गया ए वात बहुज आघातजनक, खेदकारक अने दु:खद बनी छे. आम तो आवा तेजस्वी, ज्ञानी, चारित्रवंत अने प्रभावशाली आचार्यमहाराजनी विदाय समग्र संघ अने समाज – सर्वने माटे दु:खदायी बनी गई छे, परन्तु तेम छतां, अनुसन्धान साथे तेमज हेमचन्द्राचार्य ट्रस्ट साथे संकळायेला सहु माटे तेमनी विदाय एक प्रेरणामूर्तिनी विदाय होई अत्यन्त वसमी थई पडी छे.

★

पूज्य गुरुभगवन्तनुं वतन पंचमहाल जिल्लानुं शहेर गोधरा. जन्म नजीकमां आवेला मोसाळना गाम बांडीबारमां : सं. १९९०ना वैशाख शुदि ६ ना दिने. पिता शाह कान्तिलाल वाडीलाल तथा माता शान्ताबेन, परिवार साथे अमदावाद जई वसेला. परिवारमां ४ भाई, ३ बहेनो.

पिताना नाना भाई शान्तिलाले पोतानी १८ वर्षनी वये दीक्षा लीधेली, ते मुनि शुभङ्करविजयजीनी तेमज वत्सल परमगुरु आचार्य श्रीविजयविज्ञानसूरि महाराजनी प्रेरणा मळतां बाळक बिपिनभाईने चारित्र लेवाना भाव थया. परिवारनी अनुमतिथी बे-एक वर्ष महाराजश्री साथे रह्या : विहार तेमज अभ्यास कर्यो. १३ वर्षे तेमने दीक्षा प्राप्त थई, परोली तीर्थ (पंचमहाल)मां, सं. २००३ना मागशर शुदि १४ना दिवसे. काका महाराजना शिष्य तरीके मुनि सूर्योदयविजयजी एवा नामे ते जाहेर थया.

दीक्षा पछी लगभग पंदरेक वर्षो सुधी पोताना गुरुजनोना सांनिध्यमां रहीने, व्याकरण, प्राचीन तेमज नव्य न्याय, षड् दर्शनो, जैन सिद्धान्तना ग्रन्थो, जैन न्याय, छन्द तेमज काव्यशास्त्र तथा साहित्य, इत्यादिनुं सघन अध्ययन कर्युं. संस्कृतमां पद्यबद्ध पत्रलेखन करता. आगळ जतां ज्योतिष शास्त्रनुं पण ऊंडुं अध्ययन कर्युं. तेमना आपेलां मुहूर्तो उत्तम अने सफल बनता. आ विषयमां तेओ परम श्रद्धेय गणाता.

अेमने आ. शीलचन्द्रसूरि, आ. भद्रसेनसूरि, आ. नन्दिघोषसूरि आदि शिष्यो तथा प्रशिष्योनो गणनापात्र परिवार हतो. तेओनी प्रेरणा तथा मार्गदर्शन

हेठळ, तगडी-प.पू. आचार्य श्रीविजयनन्दनसूरीश्वरजीनी समाधि-भूमि उपर नन्दनवन तीर्थनुं निर्माण थयुं छे. अमदावादमां पालडी विस्तारमां शासनसम्राट आ. श्रीविजयनेमिसूरीश्वरजीना नामे जैन स्वाध्याय मन्दिरनुं सर्जन थयुं छे. आनी विशेषता ए छे के आ भवनमां भव्य ग्रन्थालय तो छे ज, साथे ज, 'प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी' नामनी विश्वख्यात संस्थानुं पण मुख्य केन्द्र अहीं समावायुं छे. सद्‌गत पं. दलसुख मालवणिया तथा डॉ. हरिवल्लभ भायाणीना अनुरोधने आदरपूर्वक स्वीकारीने आ संस्थानी स्थिरताने लक्ष्यमां राखीने तेओए आ स्वाध्यायमन्दिर बनावडावीने प्राकृतविद्याना विश्व उपर मोटो उपकार कर्यो छे, एम कहेवामां अतिशयोक्ति नथी.

एमने सं. २०३०मां आचार्यपदवी गुरुभगवन्तोए प्रदान करी हती. सं. २०६२-६३मां तेमना शिरे संघाडाना वडील तरीकेनी जवाबदारी आवी, जे तेओए योग्य रीते निभावी.

★

छेल्लां त्रणेक वर्षोथी तेमनुं स्वास्थ्य प्रतिकूल रहेवा मांड्युं हतुं. त्रणेक वखत स्वास्थ्यनी स्थिति गम्भीर थई गई हती. छेल्ले महुवा-ऊना-कदम्बगिरि क्षेत्रोमां तेओना हस्ते यशस्वी धर्मकार्यो थयां, अने पछी तबियत बगडतां पहेलां महुवामां अने पछी अमदावादमां होस्पिटलमां दाखल करवा पडेला. आ गाळामां तेमनुं वर्तन तथा तेमनी वातो परथी समजातुं के पोतानो अन्तसमय नजीकमां होवानो तेओने ख्याल आवी गयो छे.

उपाश्रये लाव्या बाद तबियत सानुकूळ थवा लागतां आशा बंधाई हती के हवे थोडा ज वखतमां तेओश्री स्वस्थता प्राप्त करी लेशे. परन्तु बुझातो दीवो वधु झळके तेना जेवुं ज बन्युं, अने छेल्ला बे-त्रण दिवसमां तबियते गम्भीर वळांक लेतां वैशाख शुदि १ नी वहेली परोढे तेओश्रीए आपणी वच्चेथी चिरविदाय लई लीधी.

आवा ज्ञानी अने प्रभावक गुरुनी-मार्गदर्शकनी खोट सदाय लागवानी - एमां बेमत नथी. एमनो तपोमय आत्मा ज्यां होय त्यां शान्ति प्राप्त करे तेवी प्रार्थना करवी ए ज हवे शेष कर्तव्य रहे छे.